जाने अनजाने

रामेश्वर टांटिया

अपनी बात

ॐ

सब मनुष्य एक से नही होते घटनाएँ भी एक सी नही। प्रत्येक के पीछे अपना एक कारण होता है। जाने अनजाने बहुत से पात्र, चरित्र या घटनाओं से जीवन मे सम्पर्क होते है और छूट जाते है। जरा गहराई से देखने-समझने पर इनसे प्रेरणा मिलती है।

कुछ घुमक्कडी स्वभाव और कुछ जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण जीवन में इन्ही जाने अनजानो मे, मैने अपने को और अपनों का खोजा, पाया और खोया भी। भाव, भाषा की नाप तौल जानता नही। फिर भी अपनी इन्ही कुछ देखी-सुनी घटनाएँ और ससमरणो को लिखता रहा हूँ। पत्र पत्रिकाओ के माध्यम से बहुतो को इनमे अपनापन मिला। पाठको और मित्रो के प्रोत्साहन से लिखने का क्रम टूटा नही।

आदर्श अथवा प्रेरणादायक व्यक्ति केवल अभिजातिवर्ग या धनिको में ही नही होते बल्कि सव साधारण में भी बहुतायत से पाये जाते है। जाने-अनजाने में एसे चरित्र और पात्र चन्दरी बुआ हमीद खाँ भाटी एव कविराज व्रजमोहन मिलेंगे।

जिन्दगी के सफर मे इसी तरह के जो रत्न मिलते गये उन्हे मानस की झोली में भरता गया। माँ भारती के अक्षय कोष में इन्हें रखकर यदि अपना दायित्व निभा पाया तो अपने को धन्य समझूगा।

—लेखक

कथा क्रम

एक विचित्र अनुभूति

जयपुरसे आते हुए सुबह ७ मईको आगरा पहुँचा। लोहामण्डीमे रिक्शा लिया और सिकन्दरासे दो मील दूर अपने साहित्यिक मित्र रावीजीके निवास स्थान कैलाशके लिये चल पडा। कैलाशसे करीब आधा मील इधरका स्थान कुछ दूर तक जगल-झाडियोंसे भरा, सूनसान और वीरान है। अचानक ऐसा लगा कि मुझ पर कोई हल्की सी चीज आकर गिरी। चारो तरफ देखा, कुछ भी नहीं था न कोई आदमी। रिक्शा अपनी चाल चला जा रहा था। थोडी दूर आगे जाने पर वैसी ही चीज फिर गिरी जान पडी। इस बार सतर्कतासे खोज-बीन की किन्तु कपडो पर या रिक्शेमे, कहीं भी कुछ न मिला।

कैलाश की श्यामकुटी मे रावीजी के घर इसके पूर्व कई बार जा चुका हूँ। परन्तु इस बार न जाने क्यों मनमे एक हिचक सी हुई। अकेले ऊपर जानेके बजाय मैंने रिक्शेवाले से कहा "चलो देख लें रावीजी है या नहीं।"

जब हम दोनो ऊपर पहुचे तो देखा कि सारा मकान सून-सान पडा है। न रावीजीके लोग थे और न सदा वहाँ रहने वाले ब्रह्मचारी जी। कइ बार आवाज देकर उन्ही पैरो हम दोनों वापस आ गये। पास-पडोससे पता चला कि

यह मकान छोड कर सिकन्दरासे आगे गीता मन्दिरमें चले गये है। मैं उसी रिक्शे पर गीता मन्दिर आ गया।

रावीजी अपने जमे-जमाये स्थान कैलाशको छोड़कर यहाँ क्या आ गये, इसके बारेमें उन्होंने जो जानकारी दी, वह आजके बुद्धिवादी वर्गके लिये शायद अग्राह्य होगी। परन्तु उन जैसे भले और प्रामाणिक व्यक्तिकी बात पर अविश्वास भी नहीं किया जा सकता।

घटना अद्भुत सी है। १८ और १६ अप्रैल १६७२ दो दिनोंके लिये वे दिल्ली गये। २० को वापस कैलाश आने पर उन्हें बताया गया कि कई बार मकानमें पत्थरोंके छोटे-बड़ टुकड़ गिरे और तरह-तरहकी आवाजें भी सुनाई पड़ीं। उन्होंने इन बातों पर विश्वास नहीं किया। उसी शाम उनके यहाँका दस-बारह वर्षका एक बच्चा स्कूलसे वापस आया। शक्ल बदली सी और आँखोंमें अजीब सी चमक थी। थोडी देर बाद धड़कती हुई आवाजमें कहने लगा, "आइन्दा इस बच्चे को अकेले इस रास्ते पर न भेजियेगा, आज तो मैंने इसकी रक्षा कर दी।"

रावीजीने प्रकम्पमान बालकसे पूछा, "आप कौन हैं?" उसने उत्तर दिया "मैं श्यामलाल हूं, मैंने ही यह मकान बनवाया था। बहुत वर्षों तक इसमें सन्यासीके रूपमें रहा। जीवन में कुछ ऐसी गल्तियाँ हो गयीं कि मुझे प्रेतयोनि में रहना पड़ रहा है। अब यहाँ कुछ ऐसी भयानक प्रेतात्माएँ आकर रहने लगी हैं जो नहीं चाहतीं कि आप लोग यहाँ रहें।"

थोडी देर बाद बच्चा अपनी स्वाभाविक अवस्थामें आ गया। जब उससे पूछा गया तो वह स्वयं चकित हो गया। उसे पहले की बात याद न थी।

संयोगसे रावीजीके साथ उनके साहित्यिक मित्र श्री आनन्द जैन भी दिल्ली से कैलाश आये थे। उन्होंने हँसते हुए कहा कि यह सब ढोंग है, मैं एक-दो दिनमें ही आपके भूतों को भगा दूँगा। विज्ञानके इस युगमें इन बातोंको कोई विश्वास नहीं करेगा। इतनेमें ही सोडावाटरकी एक बोतल आकर उनके बीच गिरी। शीशेके टुकड़े चारों तरफ बिखर गये पर किसीको चोट नहीं आयी। फिर ईंटका टुकड़ा भी गिरा। सबोंने बहुतेरी जाँच-पड़ताल की पर फेंकने वाला न मिला, न उसका कोई निशान ही।

उसी रात वह बच्चा जोर-जोरसे रोकर कहने लगा, "साफा बाँधे एक आदमी मुझे ऊपर बुला रहा है।' बच्चेकी माँ वहीं थी, उसने गोदीसे उसे चिपका लिया। थोड़ी देर बाद बच्चे ने कहा "माँ, मुझे साधु बाबा बुला रहे हैं।' इस बार वह डरा सा नहीं था। खुद ही खुशी-खुशी ऊपर छतपर चला गया।

वापस आकर उसने बताया कि बाबाजीका सिर घुटा हुआ था, भगवा वस्त्र पहने थे, पैरोंमें खड़ाऊँ। मुझसे कह रहे थे कि मेरी जो यह लोहेकी खाट है, उसका सिरहाना दूसरी ओर कर दो। तुम लोग यहाँसे अब चले जाओ। पासके

कैलाश मन्दिरमें गोसाईंजी आ गये थे। उन्होंने बताया कि श्यामलालजी इसी वेशमें रहते थे। संन्यासी होनेके बाद उन्होंने कुछ अक्षम्य अपराध किये थे।

दूसरे दिन लड़का फिर प्रभावमें आ गया। उससे बात करनेके सिलसिलेमें रावीजीने कहा, "महाराज यदि आप हमारे हितैषी हैं तो हम लोगोंके साथ चाय पीजिये।" प्रेतात्माके बताये अनुसार एक कप चाय कमरेके भीतर रख दी गयी। दो मिनट बाद चायका प्याला खाली मिला। उन्होंने भोजनका भी निमन्त्रण स्वीकार किया। हमने एक थालीमें भोजन सजाकर रखा और कमरा बन्द कर दिया। थोड़ी देर बाद देखा कि थालीसे दोनों फुलके और दाल समाप्त हो चुके थे, चावल ज्योंके त्यों रखे थे। इतनेमें ही एक साबित ईंट आकर गिरी। आनन्दजी भी अब कुछ सहमे। उन्होंने उपस्थित सब लोगों से एक कागज पर हस्ताक्षर कराया और उसे ईंट पर बाँध दिया और कहा कि हम चाहते हैं कि यह ईंट सामने की खिड़की पर चली जाय। छोटा सा कमरा था, कोई अन्दर था नहीं। उसे अच्छी तरह बन्द कर दिया गया। कुछ देर बाद खोलने पर देखा गया कि ईंट खिड़की पर रखी है और हस्ताक्षर का पर्चा खुला हुआ है। बच्चे पर उस समय तक प्रभाव था। रावीजी ने कहा कि यदि आप हमें पाँच दिन की मोहलत दें तो हम जैसे भी हो, चले जायेंगे। जवाब मिला, 'पाँच दिन तक आप पर कोई बाधा नहीं आयेगी। आराम से रहिये।

२५ अप्रैलको जब वे वहाँसे अपना सामान बाँधकर चलने को तयार हुए तो किताबोंसे भरी एक बडी सन्दूक के लिये सोचा कि फिर कभी ले जायेंगे। मगर देखनेमें आया कि वह दरवाजे तक अपने आप खिसक आयी। इशारा स्पष्ट था, आखिर उसे भी लेकर आ गये।

रावीजीकी भतीजी प्रभाजीकी सन्दूकमें एक डायरी थी, उसमें लिखा हुआ मिला, "आदरणीय रावीजी, जैन बहुत तर्क-वितर्क करता है, इसे समझा दीजिये। और भी बहुत सी बातें थीं। मैंने वह डायरी देखी। भाषा और लिखावट साधारण थी। वह सन्दूक भी मैंने रावीजीके नये स्थान पर देखी।

इन बातोंकी खबर पाकर श्यामलालजीके पुत्र आये। वे आगरेमें डाक्टर हैं। उन्होंने बताया कि उनकी पत्नी भी तीन-चार दिन पहले जोर-जोरसे कहने लगी थी कि जल्द ही श्याम-कुटीका नाश हो जायेगा।

सारी बातें सुनकर मुझे अपने ऊपर गिरी अदृश्य वस्तुकी याद आयी। मनमें एक सिहरन सी हुई।

श्यामकुटीमें रावीजी बहुत वर्षों रहे। उस निर्जन स्थान को खाली करवानेकी किसी को गरज भीनहीं थी क्योंकि न तो वहां किराया ही आ सकता था, और न किसीके रहनेका प्रश्न था। आस-पासमें वे बहुत ही सेवा-भावी और मिलनसार माने जाते हैं। उनसे कोई वैर-भाव भी रखने वाला नहीं है।

इस घटनाको उन्होंने अपने 'नये विज्ञापन'के मई अंकमें सक्षेप में प्रकाशित किया। वैसे भी पास-पड़ोसमें यह काफी चर्चाका विषय बनी हुई है। कुछ मित्रोंकी राय है कि टोलीमें वहाँ जाकर रातमें रहा जाय।

मैं स्वयं भूत-प्रेतोंमें विश्वास नहीं करता। हो सकता है मुझे जो अनुभव हुआ, वह मनका भ्रम हो। परन्तु जिस विस्तार से रावीजी, उनकी भतीजी तथा बच्चेने बात बतायी उन पर अविश्वासका कारण नहीं बनता। उस बालकको भी देखा, बहुत ही निरीह, सीधा-सादा है। मैंने श्री आनन्द जनको पत्र लिखा और उनके उत्तरसे मेरी धारणा की पुष्टि होती है।

बहुत दिनों पहले मैंने वी० डी० ऋषि और लेडबीटरकी पुस्तकें इस सम्बन्धमें पढ़ी थीं। कुछ घटनाएं भी सुन रखी थीं। परन्तु इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ना चाहूँगा।

उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का नया प्रयोग

आजसे तीन वर्ष पहले जब देशके चौदह बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था तो इनमें जमा लगभग तीन हजार करोड़ रुपयोंकी पूँजी सरकारी नियन्त्रणमें स्वत ही आ गयी। परन्तु मूलत उन बैंकोंके जो भागीदार (शेयर होल्डर) थे, उनको इक्कीस करोड़ रुपयेके करीब चुकता पूँजी और रिजर्व का जोड़कर मिल गया। इससे जो लाखों छोटे-बड़े भागीदार थे, वे एक प्रकारसे सन्तुष्ट हो गये। हाँ, इन सस्थाओं की पचासों वर्षकी साख (गुडविल) के लिये कोई मुआवजा नहीं दिया गया था। पिछले वर्ष साधारण बीमा कम्पनियों का जब राष्ट्रीयकरण हुआ तब लोगोंके मनमें यह विश्वास था कि पहले की तरह ही मूल धन और सुरक्षित कोष (रिजर्व फण्ड) का जोड़कर भागीदारों को रुपया मिल जायेगा। परन्तु इस बार सरकारने यह मुआवजा पिछली बारकी तरह (जो उचित और आवश्यक था) न देकर केवल लाभांशके अनुपात से दिया। नतीजा यह हुआ कि अपेक्षित कीमतोंसे लगभग आधी ही हिस्सेदारोंको मिलेगी।

गत फरवरीके विधान सभाओंके चुनावोंके दौरान वित्त मन्त्री श्री चह्वाणने गुजरातमें अपने भाषणमें कहा था कि आवश्यक वस्तुओंके कारखानोंका सरकार राष्ट्रीयकरण कर

लेगी। इसके पूर्व इस सम्बन्धमें संसदमें एकाधिकरणको तोड़ने के लिये ७५वीं धारामें संशोधन भी किया जा चुका था। पिछले दिनों जिस प्रकारसे कार्किंग कोयलाकी खाना और इण्डियन कापर कम्पनीको सरकारी तत्वावधानमें बिना मुआवजा तय किये ले लिया गया, उससे उद्योगपतियोंमें चिन्ता होनी स्वाभाविक ही थी। अब, नयी दिल्लीमें विश्वस्त सूत्रोंसे पता चला है कि कुछ अर्थ विशेषज्ञों एवं कम्पनी-कानूनके जानकारों ने सरकारको ऐसी सलाह दी है जिससे कि बहुत थोड़े रुपया में एक नये तरीकेसे उद्योगोंका राष्ट्रीयकरण हो जाय। इसके लिये एक समिति भी बन गयी है जिसके सदस्य हैं वित्त सचिव श्री आई० वी० पटेल, उद्योग सचिव श्री जी० वी० लाल एवं कम्पनी-कानून सचिव श्री आर० प्रसाद। यह समिति पूरी जाँच और जानकारी करके सरकारको सलाह देगी कि बिना मुआवजा दिये किस प्रकारसे बड़े और नामी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हो जाय। वैसे, बीमा निगम यूनिट ट्रस्ट और धर्मार्थ ट्रस्टोंके हिस्सोंकी प्राप्तीसे सरकारका बहुत सी कम्पनियों पर इस समय भी अधिकार हो सकता है परन्तु इसमें इस बातका डर है कि मैनेजिंग एजेन्सी खतम होनेके बावजूद उद्योगोंके वर्तमान संचालक नाना प्रकारके संकट लगा सकते हैं। इसलिये उक्त समितिका पहला काम यह होगा कि बड़े-बड़े उद्योगपतियोंको बुलाकर इस बातके लिये तैयार करें कि वे अपने हिस्से सरकारको बेच दें। इस प्रकार

से केवल तीन-पैंतीस प्रतिशत हिस्से खरीद कर ही विभिन्न उद्योगों पर सरकारी नियन्त्रण हो जायगा। अध्यक्ष और प्रबन्ध निर्देशक सरकारी हो जायेंगे, सचालक-मण्डलमें भले ही वर्तमान सचालकों में से कुछको रहने दिया जाय।

यह भी सम्भव है कि अधिकांश वर्तमान अधिकारियों और तकनीकी विशेषज्ञोंको पूर्ववत अपने-अपने पदों पर बहाल रखा जाय। परन्तु इसमें यह अडचन आ सकती है कि उनका अधिकतम मासिक वेतन वर्तमान दृष्टिकोणके अनुसार साढ़े तीन हजारसे अधिक न हो जब कि उनमेंसे कइयोंको इस समय पाँच-सात हजार तक मिलते हैं। यहाँ तक सुना गया है कि कुछ बडे उद्योगपतियोंको बुलाकर इस सन्दर्भमें बात-चीत शुरू कर दी गयी है। ऐसा अनुमान है कि यदि वर्तमान सचालक स्वेच्छा पूर्वक अपने हिस्से बेचना नहीं चाहेंगे तो आगामी सितम्बर अक्टूबरसे ससदीय सत्रमें वाच समिति की रिपोर्ट पर जब विचार होगा, उस समय ७७वीं धारामें भी बडा परिवर्तन करके सरकार अपने हाथमें यह अधिकार ले लेगी कि किसी भी प्रतिष्ठानके हिस्से जो सचालकोंके पास हो उसे सरकार बाजार भावमें खरीद ले। कहा जाता है कि सर्वप्रथम एल्यूमीनियम, लोहे और चीनीके उद्योग लिये जायगे। ऐसा लगता है कि अपने आपमें नये ढगसे राष्ट्रीय-करणकी दिशामें यह एक बहुत बडा निर्णय होगा।

देखना यह है कि इन कारखानों की इस समय जमी

प्रगति होती जा रही है और भागीदारोंको भी जो अच्छा लाभांश मिल रहा है वह सरकारी नियन्त्रणमें जानेके बाद रह सकेगी या नहीं। वर्तमान सरकारी क्षेत्रके अधिकांश कारखानोंकी हालत तो शोचनीय है और वे घाटेमें चल रहे हैं।

आज टाटा, बिड़ला, भरतराम और कस्तूरभाई जैसे सुदक्ष सचालकोंके तत्वावधानमें नये होने वाले उद्योगोंके हिस्से जिस तत्परता से बिक जाते हैं, उसमें भी शायद कमी आ जायेगी क्योंकि खरीददारों को यह भरोसा नहीं रहेगा कि ये कारखाने उन्हींकी देख-रेख में रह पायेंगे या नहीं।

इण्डियन कापरके हिस्सोंका भाव पहले चार रुपयेका था। अब सरकारी नियन्त्रणके बाद उसका भाव २५ प्रतिशत घट गया है। हो सकता है कि जो उद्योग सरकार अपने नियन्त्रणमें लेगी, उनके सचालकोंको वर्तमान कीमत से उससे कुछ अधिक मिल जाये किन्तु शेष बचे लाखों छोटे-बड़े भागीदारोंको तो भविष्यमें शायद ही वर्तमान लाभांश मिल पायेगा।

गुनाहों का बादशाह

महमूद गजनवी, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दालीकी याद आते ही नेकसूरोंकी हत्या, बेकसोंकी अस्मतदारी, मन्दिरोंकी ध्वंस लीला, गाँव, कस्बों, नगरोंकी आगजनी आदि की दर्दनाक तस्वीर सामने आ जाती है।

तमूरकी तरह ये सब सिर्फ लूटके लिए भारत आये और अपना मकसद पूरा कर चले गये, पर इस लेखके नायक औरंगजेबको यहीं पैदा और दफ्न होना था।

सन् १६१८में दोहद (गुजरात) में जन्म हुआ। पिता शाहजादा खुरम वहाँका सूबेदार था। १६२७में वह शाहजहाँके नामसे तख्तनशीन हुआ। औरंगजेब भी तबसे आगरामें रहने लगा। वहीं उर्दू, फारसी और अरबीकी शिक्षा पाई। बादशाह बड़े शाहजादे दारा शिकोह और शाहजादी जहानआरा से विशेष स्नेह करता था, इसलिए शुरूसे ही औरंगजेब कुछ अलग-थलग सा रहकर कुरान शरीफ, मुहम्मद साहब की जीवनी और शेख जैनुद्दीनकी कृतियोंके अध्ययनमें तल्लीन रहने लगा। युवराज दारा शिकोह अधिकतर मौज-शौक व काव्य संगीतमें मस्त रहता। शायरों, सूफी फकीरों तथा हिन्दू संतोंकी सगत करता।

सत्रह वर्षकी अवस्था मे औरंगजेबको तीन सेनाओं का अधिपति बनाकर बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करनेके लिए भेजा गया। थोड़े ही समयमे उसने ओरछा पर अधिकार कर लिया। अनेक मन्दिर तोड़ और अपार धन सम्पत्ति लेकर वापस लौटा। मुसलमान दरबारी प्रसन्न व प्रभावित हुए। औरंगजेब की मजहबी कट्टरताको बल मिला। आगे जाकर इसीके अनुसार अपना आचरण व व्यवहार ढालता गया। हिन्दू विद्वेष के बल पर वह गाजी बननेका स्वप्न देखने लगा।

१६५२ मे एक बड़ी फौजके साथ उसे दक्षिणका सूबेदार बनाकर भेजा गया। ६ वर्षकी अवधिमे उसने वहाकी शासन व्यवस्था और आमदनी की स्थिति सुदृढ़ कर ली। आगरेके दरबारमे धाक जम गई। वहा उससे सहानुभूति रखनेवाले पहले ही से थे, जो जरूरी सूचनाए भेजते रहते थे। इनमे बादशाहकी छोटी शाहजादी रोशन आरा प्रमुख थी।

बादशाहने शाहजादा दारा शिकोहको तख्त नशीन करने का एलान कर दिया। वैसे भी वली अहद होनेके नाते लम्बे अरसेसे वह बादशाहके नाम पर शासन-सचालन करता आ रहा था। अकस्मात् १६५७ मे बादशाहकी बीमारीकी खबर फैली तो तख्तके लिये चारो शाहजादे बेताब हो उठे। बंगाल मे शाहशुजा, दक्षिणसे औरंगजेब और गुजरातसे मुरादने अपनी पूरी फौजके साथ आगराकी ओर कूच कर दिया।

३६ वर्षके औरंगजेबको पिछले २३ वर्षोंके शासन व युद्ध सचालनका अनुभव था। अपने व्यक्तित्व पर दीन इस्लामका मुलम्मा चढ़ा चुका था, छल-नीतिमे प्रवीण था ही। मीर जुम्ला और शाइस्ता खाँ जैसे प्रमुख प्रभावशाली व्यक्तियोंको उसने बड़ी आसानीसे अपनी ओर मिला लिया।

मुगल खान्दानमे शाही तख्तके लिए खूरेजी वरासतमे चली आ रही थी, पर पहले और अबकी स्थितिमे फर्क था। बादशाह अभी मौजूद है, वली अहद का ऐलान हो चुका है, शाही फरमान लम्बे अरसे से उसके दस्तखतसे निकल रहे है। औरंगजेबने सोचा, वक्त नये तरीकेका तकाजा कर रहा है। उसने अपने छोटे भाई मुरादको मोहरा बनाया, कहने लगा-हिन्दू परस्त काफिर दारा को शिकस्त देकर सल्तनतको एक सच्चे बहादुर और इस्लाम पर यकीन रखनेवाले मजबूत हाथोंमे सौंप देना ही मेरा फर्ज है। यह तभी मुमकिन है जब आप जैसा कौल फेलका पक्का जावाज ईमान-परस्त तख्त-नशीन हो। उसके बादमे जिन्दगीके बाकी दिन मक्का शरीफमें सुकूनसे गुजार सकूँगा। उसने मुरादको बादशाह बनानेकी कसम खाई। उसे जहाँपनाह बादशाह हुजूर कहने लगा, दस्तबस्ता कोर्निश करने लगा। बेवकूफ मुराद जालमे फँस गया, तख्तकी सूरत देखनेके पहले ही खुदको हिन्दुस्तानका शाहंशाह समझ बैठा।

धौलपुरके पास धरमतके मैदानमे शाहजादोंकी व

शाही फौजमें जा मिला। शाही फौजका सेनापति कासिम खाँ पहले ही से औरंगजेबसे मिला हुआ था। इस वक्त पर इस्लामी रंगमें रंगे मुसलमान सिपहसालारोंने धोखा दिया। महाराज जसवंत सिंह अपने बहुतसे राजपूत योद्धाओंको गँवाकर घायलावस्थामें किसी प्रकार जोधपुर वापस पहुँचे।

डेढ़ महीने बाद सूमागढ़का निर्णायक युद्ध हुआ। इसमें बादशाह स्वयं जाना चाहता था, पर औरंगजेबसे मिले हुए दरबारियोंने दारासे कहा—यदि बादशाह सलामत खुद तशरीफ ले जायेंगे तो फतहका सेहरा आपको नहीं, उन्हींको मिलेगा। इस पर उसने बादशाह से अर्जकी कि जबतक बन्दा जिन्दा है, जहाँपनाहको तकलीफ करनेकी जरूरत नहीं। दारा एक विशाल सुसज्जित फौज लेकर मैदाने जंगमें उतरा। औरंगजेबके पास इसकी आधी भी नहीं थी। इस बार भी सिपहसालार खलीलुल्ला खाँ दुश्मनोंसे मिला हुआ था। उसने दाराको घोड़े पर चढ़कर युद्ध सचालन करनेकी सलाह दी। सफेद हाथी का हौदा खाली देखकर शाही फौजने समझा कि दारा भाग गया। बूँदी नरेश छत्रसाल जैसे वीर सेनानी तथा इतनी बड़ी सेना होते हुए भी शाही फौज हार गयी। दूसरे दिन औरंगजेबने बादशाहको पत्र लिखा कि दारा काफिरोंसे मिलकर गद्दी हथियाना चाहता था, इसीलिए मुझे जंगके लिए मजबूर होना पड़ा। अब मैं आपके हुजूरमें हाजिर होकर खिदमत पेश करना चाहता हूँ।

ने तीन दिनोंमें आगरा शहरकी व्यवस्था कर अपने बड़े बेटे मुहम्मद सुलतानको किलेका घेरा डालनेके लिए भेज दिया। घेरा कसता गया, रसद व पानी बन्द हो गया। आठ जून को किला उसके कब्जेमें आ गया। जो भी पहरेदार खोजे तथा हरमकी ड्यूटी पर तैनात सशस्त्र तातारी औरत मिलीं, सभीको मौतके घाट उतार दिया और इस प्रकार अपने समय का सर्वाधिक सम्पन्न वैभवशाली वृद्ध बीमार बादशाह अपने ही युवक पौत्र द्वारा बन्दी बना लिया गया।

प्रमुख दरबारियोंको धन व पदका लालच देकर केवल पन्द्रह दिनोंमें औरंगजेबने पूरे तौरसे अपने पैर जमा लिये। बादशाह तो कैद हो गया, मगर बेवकूफ बादशाह हुजूर मुराद की मुराद अभी बाकी थी, उसे ठिकाने लगाना था।

फतहकी खुशीमें जश्न मनाया गया। हुजूरे आलम 'बादशाह' को मय पिलाई गई। शराबके नशेमें धुत्त बेहोश मुरादको क्या पता कि क्या हो रहा है। आँखें खुलने पर उसने अपनेको शाही तख्त पर नहीं, शाही कैदखानेमें पाया। साढ़े तीन वर्ष तक ग्वालियरके किलेमें भाँति-भाँतिकी कठोर यंत्रणायें दिये जाने पर भी जब उस अभागेके प्राण न निकले तो औरंगजेबने दो गुलामोंको भेजकर उसे दुनियाकी कैद से रिहा कर दिया।

आगरा से भागकर दारा सपरिवार दो महीने तक पनाह की खोजमें भटकता फिरा। ...

एक पादरी मुसलमान बन गया था, कुछ दिन में वह फिर इसाई हो गया, उसे भी मृत्यु दण्ड दे दिया गया। बोहरे सम्प्रदाय के धर्मगुरु सयद कुतुबुद्दीन को उनके ७०० अनुयायियों सहित अहमदाबाद में सरेआम कत्ल कर दिया गया।

दादा 'जहाँगीर' था तो अरगजेबने भी अपना उपनाम 'आलमगीर' रक्खा। आलमगीर होने के लिए सारा आलम नहीं तो कम से कम सारा हिन्दुस्तान तो साथ होना ही चाहिए। इसके लिए उसे अनेक युद्ध करने थे, क्योंकि हिन्दुस्तान के बहुतसे हिस्से मुगल सल्तनतमें नहीं थे। लड़ाइयाम लम्बे खर्च लिए लम्बी रकम चाहिए, इसलिए अपने बुजर्गों द्वारा रद्द किया जजिया कर हर हिन्दू बच्चे, बूढ़े-जवान पर फिर लागू कर दिया। अक्सर कड़ाईसे जजिया वसूल करते, लोग खूनका घूँट पीकर रह जाते। खजानेमें बेशुमार दौलत जमा होने लगी। जो नहीं दे पाते, मारे डरके मुसलमान बन जाते। इस्लाम का प्रचार-प्रसार जोर-शोरसे शुरू हो गया। आलमगीर जिन्दा पीर का गगनभेदी घोष गूँजने लगा।

औरंगजेब का मजहबी जोश इतनेसे सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसे मन्दिरोंमें सदियोंसे सचित सोना, चाँदी, हीरा, जवाहरात, रत्न, धन आदि अखर रहा था। उसने प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिरोंको निशाना बनाया। इधर मन्दिर टूटते, उधर हिन्दूओंके दिल टूटते और शाही खजाने पर धन की अजस्र वर्षा होने लगती। अहमदाबादके प्रसिद्ध चिंतामणि मन्दिरमें गऊ गोश्त भराया

फिर उसे मस्जिद बनवा दिया। मथुराके केशवराय मन्दिरकी ध्वजा काफी दूरसे दिखाई पडती थी, औरंगजेब भला इसे कैसे सह पाता, इसे तोडवा कर मस्जिद निर्मित करा दी—यद्यपि ऊँची जातिके लोग तो डरके मारे कुछ नहीं बोले परन्तु कृषक वर्ग व हरिजनों का खून खौल उठा। उन्होंने पूरी शक्तिसे विद्रोह किया, अधिकांश मौतके घाट उतार दिये गये। सतनामी सन्तों की नृशस हत्या कर दी गई। काशीके विश्वनाथ मन्दिरकी भाँति अनेक प्राचीन प्रसिद्ध मन्दिरोंके भग्नावशेष आज भी अपनी करुण गाथा सुना रहे हैं। सन १६६० में उसने सुदूर दक्षिणके मन्दिरोंको तोडने का आदेश दिया। इन ध्वस्त मन्दिरोंकी सूची बनायी जाय तो एक छोटी-मोटी पुस्तक तैयार हो जाय।

अन्य धर्मावलम्बियोंके धार्मिक उत्सव, मेले, पर्व, त्यौहार गुनाह करार दे दिये गये, मन्दिरोंमें शंख-घण्टे बजने बन्द कर दिये गये। हिन्दुओंने बहुत गुहार पुकारकी, पर सब बेकार गई। शिवाजीने जजिया उठा लेनेके लिए पत्र लिखा, किन्तु औरंगजेब भला इसे क्यों छोडता।

आमेर सदासे मुगल साम्राज्य का सहायक रहा। इसी वफादारीके आधार पर वहाँके राजा जयसिंह उच्च मुगल सेनाध्यक्ष थे। औरंगजेबने वहाँके सभी मन्दिर ध्वस्त कराकर सिद्ध कर दिया कि मजहबी दीवानगीमें वह किसीकी वफादारी का लिहाज नहीं करता। पंजाबमें गुरु तेग बहादुर और गोविन्द

सिंहके नेतृत्वमें सिक्खोंने इस अपमान व अत्याचारके विरुद्ध विद्रोह किया, जिसे सैन्य बलसे कुचल दिया गया। सन् १६७५में दिल्लीमें गुरु तेगबहादुर का सिर काट दिया गया। आज वहाँ पर शीशगंज गुरुद्वारा है। गुरुगोविन्द सिंहके दो बेटोंको दीवारमें चुना दिया गया।

सन १६८०में औरंगजेब अजमेर आया हुआ था। महाराज जयसिंह व दुर्गादास राठौरकी सलाहसे शाहजादा अकबरने स्वयंको बादशाह घोषित कर दिया। औरंगजेब ऐसे खेलका माहिर खेलाडी था। उसने शाहजादेके सेनापति तहव्वर खाको लालच देकर अपने खेमेमें आमंत्रित किया और कत्ल कर दिया। यहाँ उसने एक और कमालकी चाल चली। अकबरके नाम एक पत्र लिखा—शाबाश मेरे बेटे, राजपूतोंका खूब बेवकूफ बनाया, तुमने उनकी सारी साजिश नाकाम कर दी और सल्तनते मुगलियाको बहुत बड़े खतरेसे बचा लिया। ऐसी व्यवस्था भी कर दी कि पत्र शाहजादेको नहीं, दुर्गादासको मिले। चाल कारगर हुई। राजपूतोंने अकबरका साथ छोड दिया। निराश व दुखी शाहजादा मारवाडकी ओर भाग गया। जब दुर्गादासको असलियतका पता चला तो बड़ा पछतावा हुआ, पर वक्त हाथसे निकल चुका था। अकबर किसी प्रकार सुदूर दक्षिणमें शम्भाजीकी शरणमें जा पहुंचा। औरंगजेबने उसके बेटी अहल, बड़ी बेटी और दामादको किलेमें कैद कर दिया।

उत्तरसे निश्चिन्त होकर उसका ध्यान शिवाजी तथा मराठोंकी बढ़ती शक्तिकी ओर गया। अपने विश्वस्त सेनापति शाइस्ता खाँको बहुत बड़ी सेनाके साथ दक्षिणका सूबेदार बनाकर भेजा। चार वर्ष तक लड़नेके पश्चात भी अन्तमें वह पराजित हुआ तो औरङ्गजेब झौखला उठा और अपने सर्वाधिक सुयोग्य सेनापति जयपुर नरेश जयसिंहको एक सुसज्जित सेनाके साथ शिवाजीको पकड़नेके लिए भेजा। यद्यपि जयसिंह उत्तम सेनापति था परन्तु वह हिन्दू था इसलिए अपने विश्वासपात्र सिपहसालार दिलेर खाको खबरदारी के लिए साथ लगा दिया। मराठे बड़ी बहादुरीसे लड़े, पर इतनी विशाल सेनाके आगे अधिक समय तक टिक न सके। धीरे-धीरे किले उनके हाथसे निकलते गये। पुरन्दरका प्रसिद्ध गढ़ भी उन्हें छोड़ना पड़ा।

हिन्दुत्वकी रक्षाके लिए भारतका केवल एक सपूत शिवाजी जानपर खेल रहा है, यह अनुभव कर जयसिंह हृदयसे उनका आदर करते थे। इसी कारण उन्होंने मई १६६५में पुरन्दरमें शिवाजीसे एक सम्मानपूर्ण सन्धि कर ली और उन्हें पुत्रशम्भाजीके साथ आगरा जाकर औरंगजेबसे भेंट करनेके लिए राजी कर लिया। अपने कुल-देवता गोविन्ददेवकी शपथ खाकर वहाँ उनके साथ प्रतिष्ठा पूर्ण व्यवहारके लिए जिम्मा लिया, इसके लिए स्पष्ट निर्देश देकर अपने पुत्र रामसिंहको साथ कर दिया।

औरंगजेबने शिवाजीको हर प्रकारसे अपमानित किया,

पिता-पुत्रको कैद कर लिया, किस प्रकार शिवाजी पुत्र सहित कैदसे निकल भागे, ये सारी बात इतिहास प्रसिद्ध है।

महाराष्ट्र आनेके बाद शिवाजी दिखावेमे औरंगजेबसे मेल रखते हुए गुप्त रूपसे बडी सावधानीसे शक्ति अर्जित करने लगे। १६७०में शाही फौजो पर छापे भी मारने लगे। शाहजादा मुअज्जम सामना न कर सका। शिवाजीने अपने अनेक किले वापस जीत लिये और सुरतको दूसरी बार लूटा। आठ वर्ष तक युद्धमें बादशाहके अनेक अनुभवी सेनापति पराजित हुए तब उसने अपने सबसे बड़े दो सेनापति महाबत खाँ व दाऊद खाँको भेजा। कई बारकी हार-जीतके बाद आखिर छोटी सी मराठी सेनाका टिकना कठिन हो गया। भूपाल गढका किला उसके हाथसे निकल गया। इस युद्धमें हजारों मराठे वीर-गतिको प्राप्त हुए। जो बच, वे कैद कर लिये गये और उनके हाथ पैर काट दिये गये। स्त्रियोंके साथ अमानुषिक अत्याचार किये गये।

१६८२ के बाद औरंगजेब प्रायः दक्षिणमें ही रहने लगा। गोलकुण्डाके सेनापतिको रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया और उस अजेय किलेको सर कर लिया। इसी प्रकार बीजापुरको भी वहाँके वजीरों व अधिकारियोंको घूस देकर मुगल साम्राज्यमें मिला लिया। इस तरह धीरे-धीरे सारे दक्षिणको अपने कब्जेमें कर लिया।

गालकुण्डाका सुलतान बादू हसन निहायत नेक व अमन पसद इन्सान था, हिन्दुओकी धार्मिक भावनाका आदर करता था। शाहजादा शाह आलमके दिलमे इनके प्रति हमदर्दी थी। इसी अपराधमे औरगजेबने अपने इस शाहजादेको उसके चारो पुत्रो समेत बुलाकर कैद कर लिया और उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली।

सन् १६८९मे शम्भाजीको उसके २५ विश्वस्त साथियो सहित पकडकर दिल्ली लाया गया, १५ दिन तक कठोर यत्रणाये देकर मरवा दिया गया।

औरगजेबका अत्याचार चरम सीमा पर था, पर मराठे वीर इससे हताश नहीं हुए, दुगुने उत्साहसे बद्ध परिकर हुए, वे सगठित होकर मुगल साम्राज्यके कस्बे व शहर लूटने लगे। ७५ वर्षके बूढे बीमार बादशाहकी कमर झुक गई थी। परिवारमे कलह, सतान अयोग्य, इसलिए इतनी बडी हुकूमतके बावजूद वह दुखी व परेशान रहता था। मराठा छापामारोकी चोटोसे सेनाके सिपाही, हाथी, घोडे, ऊँट काफी सख्याम मरने लगे। लगातार युद्धके कारण खजाना खाली हो गया, अफसर इस्लामके नाम पर जोर-जुल्म करते। हर ओर आह-कराहका आलम, अराजकता, विद्रोह—१५ वर्षोंमे हालत खस्ता हो गई। ९० वर्षके आलमगीरके अतिम दिन घोर विषाद पूर्ण रहे।

शाहजादे बुढापेकी ओर कदम रख रहे थे, पर उनकी

गेय्यशी जवानी पर थी। वे और उनके बेटे बादशाहतका ख्वाब देखते। पोते अपने पिता व पितामहकी तथा पुत्र अपने पिताकी मौतकी दुआ माँगते। हर ओरसे निराश बादशाहको सन १७०६की फरवरीमें बेहोशीके दौरे आने लगे, ८५ दिनकी बीमारीके बाद २० फरवरीको उसने सदाके लिए आँखें मूँद लीं।

अन्तिम समयमें अपने दो पुत्रोंके नाम जो पत्र लिखे, उनसे उसके असीम मनस्तापका आभास मिलता है। ऐसा लगता है कि मनुष्य चाहे छल-कपटसे जीवनमें बड़ीसे बड़ी उपलब्धि प्राप्त कर ले, परन्तु अन्त समयमें उसके पाप सिर पर चढ़कर बोलते हैं।

औरंगाबादके निकट ही उसके गुरुकी कब्रके पास उसे दफनाया गया। सन १९७८ में मुझे यह कब्र देखनेका अवसर मिला। देखते ही उसकी घोर नृशंसताके चित्र आँखोंके सामने आने जाने लगे। मन स्थिति कुछ अजीब-सी हो गई जान पड़ा जैसे कोई कानमें कह रहा है—न गया साथ तख्त, न ताज, न राज, बस क्फन दो गज जमीनके अन्दर मिट्टीमें मिला पड़ा है। औरंगजेब—आलमगीर, आलमका नहीं, गुनाहोंका बादशाह।

शरणागत की रक्षा

राजस्थानका उत्तर-पूर्वी हिस्सा पजाबसे मिला हुआ है। वहाँ पर देशके विभाजनके समय काफी सख्यामे मुसलमान परिवार थे। हिन्दू-मुसलमानोमे आपसमे भाई-चारा था, एक-दूसरेके सुख-दुख, विवाह-शादी और त्योहारमे बड जतन और प्रेमसे हिस्सा लेते थे।

हिन्दुओकी होलीमे मुसलमान डफो पर धमाल गाते थे और मुसलमानोके ताजियोंमे मर्सिये सुनकर हिन्दुओकी आँखो मे आँसू आ जाते थे। वे भी नये-नये कपड पहनकर ताजियोके जुलूसमे शामिल होते थे, क्योंकि रोग निवारणके लिए उन्हे ताजियोके नीचेसे निकालते थे। मुझे याद है हमारे पडोसी मुसलमान बच्चे हमे यह कहकर चिढाते थे कि देखो हमारे ताजिया पर कितना सुन्दर गोटा-किनारी लगा है जब कि तुम्हारे देवता हनुमानजीका मुँह बन्दर सा है और गणेशजीका हाथी सा। हम जब दादाजीसे उनकी शिकायत करते तो वे हमे भुलानेके लिए उन्हें झूठमूठ डॉट देते थे।

हमारे घरके पीछेकी तरफ घासी लीलगरका छोटा सा घर था। हम उन्हें बराबर घासी भया कहकर पुकारते थे। वे सब भी दादीजीको माजी कहते। उनके यहाँ जँवाइ आता तो

शादीमें दरी-गिद्दा तथा निपारके पलग भेंट देती। उस समय यद्यपि तरोंकी छुआछूत थी पर मनोंमें प्यार था।

सन १९४७के शुरूकी बात है, देश विभाजनकी घटनाका अन्तिम चरण था। अंग्रेजी सरकारने भारत और पाकिस्तान दो अलग-अलग मुल्क बनाकर शासन सौंपनेका मसौदा बना लिया था।

पश्चिमी पंजाबसे बड़ी संख्यामें हिन्दू भागकर आ रहे थे तथा पूर्वी पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेशसे मुसलमान लाहौर और सिंधकी तरफ जा रहे थे।

इसका कुछ असर राजस्थानके गाँवों-कस्बोंके वासिन्दों पर पड़ रहा था। कलकत्तेका भीषण दंगा हो चुका था। मुख्य मंत्री सुहरावर्दीकी सीधी कार्यवाही (डाइरेक्ट एक्शन) के कारण सैकड़ों हिन्दुओंका कत्लेआम हो चुका था, वे सब खबरें भी वहाँसे आये हुए लोग बढ़ा चढ़ाकर सुनाते रहते थे।

आखिर १५ अगस्त १९४७ को देशके दो टुकड़े हो गये। उसके थोड़े दिनों बाद पश्चिम पंजाब में बड़े पैमाने पर जिहाद हुआ। वहाँसे जो ट्रेन अमृतसर-जालंधर आती, उसमें सैकड़ों घायल हिन्दू रहते। युवती स्त्रियोंको लाहौरमें जबरन उतार लिया जाता। ये सब समाचार अतिरंजित होकर दिल्ली, हरियाणा और राजस्थान तक फैले।

राजस्थान और पंजाबकी सीमा पर पाटण नामका एक

कस्बा है। उस समय वहाँकी जनसख्या थी करीब १००००, जिनमे तीन चौथाई हिन्दू और एक चौथाई मुसलमान थे। मुसलमानोमे अधिकाश गरीब थे, लखारे, रगरेज, लोहार, कुजरे तथा अन्य मजदूरी करने वाले। उनकी आजीविका हिन्दू महाजनो पर निर्भर थी।

पाकिस्तानी मुसलमानोके अत्याचारोसे पीडित कुछ हिन्दू शरणार्थी उस गाँवमे सिंध और पजाबसे आये। उनके अधिकाश स्वजनोको वहाँ मौतके घाट उतार दिया गया था—बाकी बचे हुए किसी प्रकार दीन-हीन दशामे पहुँचे। उनके मनमे प्रतिहिंसाकी ज्वाला धधक रही थी।

उनमेसे किसी युवकने एक मुसलमान लडकीका जबरन शील भग कर दिया। इस प्रकारकी घटना राजस्थानके गाँवोके लिए नयी थी। गाँवकी बहिन-बेटीको धनवान और गरीब सब बहिन-बेटी समझते थे।

लडकीके घर वालोने पचाके सामने गुहारकी। युवक और उसके सम्बन्धी जोश और क्रोधमे थे। उनका कहना था कि उनकी बहिन-बेटियोके साथ पाकिस्तानी गुण्डोने इससे भी कहीं अधिक अत्याचार किये है। उनकी छातियें काट डालीं, उन्हें नगा करके जुलूसमे घुमाया गया आदि।

लडकीके भाइयोने मौका देखकर सिंधी युवकको घायल कर दिया। सारे गाँवमे खबर फैल गयी कि वह मर गया है।

ग्णव थीं, परन्तु उन सबके रहने-खानेकी व्यवस्था अपने घरमे ही की। उस समय अछूत और मुसलमानोंसे छूआछूत बरती जाती थी, परन्तु सकटके समय यह सब बात भुला दी गयीं।

दगा शान्त होने पर उन्हे एक रातमे अपने विश्वस्त आदमियो और सवारियोंके साथ पासके पुलिस थानेमे पहुचा दिया गया। वहाँसे वे शायद किसी प्रकार पाकिस्तान पहुच गये।

यह खबर जब गावके लोगोको मिली तो उनमेसे बहुतसे श्यामलालजीसे नाराज हुए, बुरा-भला भी कहने लगे। परन्तु उन सबका उलाहना सुनकर उनका एक ही जवाब था कि जो कुछ मैंने किया माँजीकी आज्ञासे किया है। उनकी यह मान्यता है कि एकके कसूरसे दूसरोको दण्ड क्या दिया जाय। अगर पाकिस्तानी गुण्डोने हिन्दुओ पर जुल्म किये तो उसके लिए गरीब रहीमके अबोध बच्चोंकी हत्या करनेसे क्या इसका बदला चुक जायगा ?

इस गाँवमे १९५९मे एक बार जाने का मुझे मौका मिला। मुसलमानोके घर या तो टूटे-फूटे और उजाड पडे थे या शरणार्थियो द्वारा दखल कर लिये गये थे। वहीं मैंने रहीमाकी कहानी सुनी थी।

सयोगकी बात कि १९६४मे विश्वयात्रा करता हुआ म पाकिस्तानसे कराँची पहुँचा। वहाँके रिजर्व बैंकके दफ्तरमे गया हुआ था। मैंने देखा एक बूढ़ा मुसलमान मेरेसे बात करना चाहता है। एक कोनेमे ले जाकर धीरेसे सहमते हुए

कहने लगा कि बातचीतसे लगता है आप राजस्थानी हैं। फलाँ जिलेके गावमें मेरी बेटी है। सुना है उसके एक बच्चा भी हुआ है, परन्तु अभी तक अपने नातीको नहीं देख पाया हूँ। बेटी—दामादको देखे भी १७ वर्ष हो गये। मेरे हाथमें बीस रुपये थमाते हुए कहने लगा कि बड़ी मेहरबानी होगी, अगर आप इन रुपयोंसे बच्चेके कुर्ते-टोपी और थोड़ी सी मिठाई वहाँ भिजवा देंगे। जितनी तनख्वाह मिलती है उसमें खर्च चलना भी मुश्किल है, नहीं तो बेटीको भी कुछ भेजना चाहता था। मैंने देखा उसकी आँखें गीली हो आयी हैं। मैंने बताया कि वह गाँव मेरे सीकर जिलेमें ही है—चीजें तो भिजवा ही दूँगा, कभी मौका मिला तो तुम्हारी बेटीसे मिलकर राजीखुशीकी खबर भी दे दूँगा। देखा बूढ़ेको मेरी बात सुनकर बहुत सान्त्वना मिली है।

वृद्धसे बात करते हुए मुझे ८ वर्ष पहलेकी रहीमाकी बात याद आ गयी। वह भी शायद इसी प्रकार अपने गाँव और घरसे दूर किसी पाकिस्तानके कस्बेमें नौकरी करता होगा। उसे भी इसी प्रकार अपनी जन्मभूमि और छोटसे घरकी याद आ जाती होगी।

— ० —

जियो जी टोडरमल वीर

लगभग चार सौ वर्ष पहले की बात है। प्रतापी सम्राट अकबर का शासन था। उसके मन्त्रिमंडल में नौ मन्त्री थे जिन्हें 'नवरत्न' कहा जाता था। उनमें टोडरमल का विशेष आदरपूर्ण स्थान था। वे वित्त और माल जैसे महत्वपूर्ण विभागों को सम्हालते थे। राज्य के काम से उन्हें प्रायः ही पंजाब, सिंध और काश्मीर की यात्राएँ करनी पडती।

आगरा से २०० मील दूर राजस्थान की सीमा पर नारनौल एक कस्बा है, वहाँ अग्रवाल समाज का एक प्रतिष्ठित और धनी परिवार था। टोडरमल का इस परिवार से मैत्री का सम्बन्ध था। वे आते जाते उनके यहाँ एक-दो दिन आराम करने के लिये ठहर जाते थे।

एक बार, दो तीन वर्ष तक वे नारनौल नहीं आये। इस बीच में उस परिवार पर संकट के बादल छा गये। सेठ का असमय में देहान्त हो गया, जो धन सम्पत्ति थी वह मुनीमों की बदइन्तजामी और बेइमानी से समाप्त हो गयी। घर में रह गयी, विधवा सेठानी और १५ वर्ष का किशोर पुत्र।

उन दिनों बहुत छोटी उम्र में ही बच्चों के सगाई विवाह हो जाते थे। पुत्र की सगाई सेठजी के रहते ही पास

आयेंगे। हम लोग बारात लेकर फलाँ दिन पहुँच रहे हैं, आप सारी तैयारी रखियेगा।

पत्र पढ़कर उन लोगों ने मूँग गिने जिनकी संख्या करीब ७ हजार थी। वे मन ही मन हँस रहे थे कि अधिक दुख से सेठानी शायद विक्षिप्त हो गयी है। इतने बारातियों के लिए जितने हाथी घोड़े ऊट और रथ चाहिए—उन सबकी व्यवस्था तो शायद नगर सेठ भी नहीं कर सकते। रास्ते में इन सबके खान पीने और आरामके लिए भी लाखों रुपये चाहिये। खैर, उन्होंने कासिद के साथ उत्तर दे दिया कि हम आपकी बात मंजूर है। बारातियों की खातिर तव्वजह के लिए आप बेफिक्र रहें। हम शुभ दिन की प्रतीक्षा में है।

इधर, टोडरमल ने आगरा आकर अपने मित्रों और साथियों से सलाह की। बादशाह से भी अर्ज की कि हुजूर मेरे भानजे की बारात जायगी, इसलिए शाही दरबार से पचास हाथी पांच सौ घोड़े और एक हजार रथ और ऊंट चाहिए। इस मौके पर शाही बाजे और तोपें भी बारात के साथ जान की इजाजत बख्शी जाये।

बड़े ठाट बाट से सरदार और आला अफसरों का बारात के लिए न्यौता दिया गया। रास्ते में भोजन वगैरह की व्यवस्था के लिए पहले से ही सैंकड़ों आदमी सरंजाम के लिए भेज दिये गये। नारनौल पहुँचकर राजा टोडरमल ने लाखों रुपयों का भात भरा। बहिन (वर की माता) के लिए मानिया

जडी चुनरी और वर वधू के लिए कीमती गहनो कपडो का अम्बार लगा दिया। वर पक्ष के लोगो के लिए यथायोग्य भेंट और सिरापाव।

सार कस्बे मे चर्चा फल गयी कि नरसी मेहता के मुनीम सॉवरिया सेठ जैसा भात सेठजी ने यहाँ आया है।

नारनौल से जो बारात रवाना हुई, वैसी इसके पहले देखी सुनी नहीं गयी थी, घोडे, रथ, ऊँट पालकी और सुखपाला की लम्बी कतार मीलो तक जा रही थी। करीब दो हजार तो बाराती थे और उनके साथ एक हजार नौकर, सईस, महावत और रसोइये आदि। इनके सिवाय बाजे वाले गाने वाले और नर्तकियों की भी एक बडी तादाद थी।

कन्या पक्ष वालो ने जब सुना बारात मे जयपुर महाराज मानसिंह अथमन्त्री टोडरमल, खानखाना (प्रधानमन्त्री) अब्दुल रहीम और राजा बीरबल आदि देश के बडे से बडे लोग आ रहे हैं। साथ मे हाथी घोडे रथ और ऊँटो का एक बडा काफिला है तो वे घबरा गये—यद्यपि वे नगर सेठ थे, करोडपति थे परन्तु फिर भी इतनी बडी बारात की व्यवस्था करनी उनके वश की बात नहीं थी।

अगवानी के लिए कन्या का पिता कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियो को साथ लेकर गया। टोडरमल के पैरो मे पगडी रखकर कहने लगा कि हमने अपनी तरफ से बहुत भूल की, जो बहाना बनाकर सम्बन्ध तोडना चाहते थे परन्तु अब हमारी इज्जत आपके

हाथ है। इतनी बड़ी बारात ठहराने का न तो हमारे गाँवमें स्थान है और न हम इन सबके लिए भोजन और चारे-पानी की व्यवस्था ही कर सकते हैं। सैकड़ो वर्षों से हमारे परिवार को नगर-सेठ की पदवी है आपकी दया से आस पास के गाँवों मे इज्जत भी है। परन्तु जहाँ हमारे अनेक स्वजन मित्र है, वहाँ इर्ष्यालु दुश्मनोंकी सख्या भी कम नहीं है। उन्हें हमारी बेइज्जती से जग हँसाई करने का मौका मिल जायगा। कन्यादान मेरे परिवार का भाई कर देगा। मैं जिल्लत और बेइज्जती देखनेसे पहले गाँव छोड कर सदा के लिए चला जाना चाहता हूँ।

राजा टोडरमल ने उसे उठाकर गले से लगाते हुए कहा—"जो कुछ हुआ उसे भूल जाइये, अब तो आप हमार सम्बन्धी है। आपकी मान बडाइ मे ही हमारी शोभा है। आप चिन्ता न करें किसी को भी पता नहीं चलेगा। सारी व्यवस्था हम-लोगों की तरफ से है। आप केवल ढुकाव के समय शरबत पान से बारातियों की अच्छी तरह खातिरदारी कर दीजियेगा।"

बारात की सजावट और आतिशबाजी देखने के लिए आस पास के गाँवो से हजारों स्त्री पुरुष और बच्चे आये थे। उन सबके लिए यह एक अभूतपूर्व दृश्य था। मातिया की भूल पहने हाथी और घाडे झूम रहे थे। चार-पाँच तरह के शाही बाजे थे। आगरा की प्रसिद्ध नर्तकियों का नाच-गाना हो रहा था और तरह तरह की आतिशबाजियों की रोशनी से आसमान

चमक रहा था। सारे विवाह कार्य आनन्द पूर्वक समाप्त हुए। वधू को विदा कराकर जब वे नारनौल पहुँचे और द्वाराचार हुआ तो वर पक्ष की महिलाओं ने जो गीत गाया वह था—

'अैतो जीत्याजी, जीत्या म्हारा टोडरमल वीर
केशरियो बनडी जीत्यो म्हारे बीरेजी के पाण।"

आज उस बात को ४०० वर्ष हो गये, परन्तु अभी तक वहू की अगवानी के समय राजस्थान में उस उदारमना भाई टोडरमल की पुण्य स्मृति में यही गीत गाया जाता है।

सम्बन्ध बराबरी का

महाभारत में कथा है कि एक दिन बालक अश्वत्थामा दूध के लिये मचल गया। उन दिनों दूध बहुत सस्ता था किन्तु गरीब माँ के लिये वह भी सम्भव न था। आँसू भरी आँखों से आटे का घोल पिलाकर बहलाने का प्रयत्न किया किन्तु उसे चुप न करा सकी।

द्रोणाचार्य घर लौटे। देखा, बालक रो रहा है। कारण का पता चला तो स्तब्ध रह गये। अपने ऊपर ग्लानि हुई। दारिद्रय से मुक्ति के लिये वे आकुल हो उठे।

सहपाठी मित्र महाराज द्रुपद के यहाँ पहुँचे। उन्हें गुरुकुल की बातें याद दिलायीं। द्रुपद ने कहा ब्राह्मण! चाहो तो कुछ भिक्षा मिल सकती है। बचपन के किसी समय के परिचय को मित्रता का रूप देकर मेरी भावुकता को उभारने का प्रयत्न मत करो। सम्बन्ध और मैत्री तो बराबरी की होती है।

अपमानित द्रोण के मन में बात चुभ गयी। उन्होंने उसी क्षण एक निर्णय लिया और वहीं से सीधे हस्तिनापुर चले गये। धनुर्विद्या के अप्रतिम आचार्य थे ही। कौरव [illegible] पाण्डव कुमारों को शिक्षा देने के लिये राज्य ने उन्हें [illegible] कर दिया। द्रोण ने कठोर परिश्रम एक

अस्त्र-शस्त्र सचालन मे थोडे ही समय मे निष्णात कर दिया। अर्जुन, भीम और दुर्योधन जैसे अपने पराक्रमी शिष्यो को देख कर गद्गद हो उठते।

शिक्षा पूरी हुई। दीक्षान्त के अवसर पर जब गुरुदक्षिणा के लिये आचार्य से आग्रह किया गया तो उन्होने द्रुपद पर चढाई करने की दक्षिणा माँगी।

कुमारो ने सहर्ष स्वीकार किया। कौरव सेना के प्रचण्ड आक्रमण और रण-कौशल के सामने द्रुपद टिक न सका। बन्दी बनाकर शिष्यों ने उसे आचार्य के समक्ष प्रस्तुत किया।

"कहो राजन! अब तो मित्रता हो सकती है?" द्रोणाचार्य ने पूछा। खैर, द्रुपद लज्जित थे। क्या जवाब देते? यह बात द्वापर के अन्तिम चरण की है। इन दिनो की एक सच्ची घटना इस सन्दर्भ मे याद आ जाती है।

भिवानी के एक गरीब वैश्य का पुत्र किसी सम्पन्न परिवार मे दफ्तर के रूप मे कलकत्ता आया। बहुत वर्षो बाद उसके पिता माता की इच्छा हुई कि जगन्नाथपुरी की यात्रा की जाय और इसी अवसर पर अपने पुत्र पौत्रो को भी देख लें।

थके हारे एक दिन कलकत्ता पहुँचे। पत्नी को दूसरे यह यात्रियो के साथ धर्मशाला मे ठहरा कर स्वय पुत्र से मिलने के लिये वृद्ध पिता उसकी कोठी पर गया। पुत्र अपनी गद्दी पर बैठा था। उसकी खुशहाली और वैभव देखकर पिता का हृदय गद्गद हो उठा।

मैले कपडे, ऊँची धोती, और बढ़ी दाढ़ी, सकुचाते हुए गद्दी के एक तरफ बैठ गया। मित्रों के साथ पुत्र गप शप करता रहा। न तो उठकर पाँव छुए और न राजी खुशी के समाचार पूछे। किसी एक मित्र के पूछने पर बताया कि हमारे गाँव, के जान पहचान के है।

वृद्ध निर्धन था किन्तु आत्माभिमान के धन से वंचित नहीं। उसके मनमें वैभवके मदमें चूर पुत्रकी बात चुभ गयी। राजस्थान की हवा में पला था अपमान नहीं सहा गया। कह बैठा, सेठजीके देश का तो मैं जान-पहचान का व्यक्ति हूँ परन्तु इनको जन्म देने वालीका पति हूँ। ये धनवान और हम गरीब इसलिये इनका हमारा सम्बन्ध हो कैसा? गल्ती हुई जो यहाँ चला आया। अच्छा हुआ जो इसकी माँ को ये बातें नहीं सुननी पड़ी, उसे धर्मशाला में ही छोड़ आया।"

ऐसी अप्रत्याशित और अप्रिय घटना के बाद बैठक जम नहीं पायी। धीरे-धीरे मित्र खिसक गये। वृद्ध तो पहले ही जा चुका था।

कलकत्ते आने के बाद युवक सेठ ने जन्म देने वाले पिता-माता की कभी खोज-खबर न ली। उसमें गुमान आ गया था। परन्तु मुनीम गुमाश्ता के सामने हुई इस घटना के कारण वह बहुत झेंप गया। घोड़ा गाड़ी में पत्नी को साथ लेकर शाम को धर्मशाला में पहुँचा। पिता माता तब तक पुरी के लिये रवाना हो चुके थे।

कहते है, भाग्य गिरत-फिरत की छाया है। कुछ वर्षो मे उसके सगे छोटे-भाइयों ने बहुत धन कमा लिया जब कि व्यापार मे घाटा होने के कारण उसकी अपनी सम्पत्ति समाप्त हो गयी। गरीबी की बात जब देश पहुँची तो माँ का दिल नहीं माना। जिद करके वृद्ध पति के साथ कलकत्ते के लिये रवाना हो गयी। उस समय तक उसके अपने पुत्रो का यहाँ मकान हो गया था और कारोबार भी बढता जा रहा था।

खबर मिलने पर पत्नी और बच्चो सहित सकुचाता हुआ बडा पुत्र मिलने आया। माँ बाप के पैरों पर गिर पडा और बहुत वर्षो पहले किये गये अपने दुर्व्यवहार के लिये क्षमा माँगने लगा।

'अब तो तुमने मुझे पहचान लिया होगा ?" कहते हुए पिता मुँह फेर कर बैठ गया।

वृद्ध माता एकटक देख रही थी अपने बडे बेटे और बच्चो को। बीस वर्ष पहले बारह वर्ष के बालक का उसके सुख की कामना से अपने सीने से पृथक किया था। पुत्र कुपुत्र भले ही हो जाये माता कुमाता नहीं होती। उसने बेटे को खींच कर छाती से लगा लिया और भरे गले से कहने लगी—'भगवान का दिया तुम्हार भाइयों के पास बहुत है। मूँग मोंठ मे कौन बडा कौन छोटा ? चारो मिलकर कारोबार सम्हालो।"

उसकी आँखें गीली हो आयी थीं दोनो पौत्रो को गोद मे उठा कर जल्दी से कमरे के बाहर हो गयी।

मैले कपडे, ऊँची धोती और बड़ी दाढ़ी, सकुचाते हुए गद्दी के एक तरफ बैठ गया। मित्रों के साथ पुत्र गप शप करता रहा। न तो उठकर पाँव छुए और न राजी खुशी के समाचार पूछे। किसी एक मित्र के पूछने पर बताया कि हमारे गाँव, के जान पहचान के हैं।

वृद्ध निर्धन था किन्तु आत्माभिमान के धन से वंचित नहीं। उसके मनमें वैभवके मदमें चूर पुत्रकी बात चुभ गयी। राजस्थान की हवा मे पला था अपमान नहीं सहा गया। कह बैठा, सेठजीके देश का तो मैं जान-पहचान का व्यक्ति हूँ परन्तु इनको जन्म देने वालीका पति हूँ। ये धनवान और हम गरीब इसलिये इनका हमारा सम्बन्ध हो कैसा ? गलती हुइ जो यहाँ चला आया। अच्छा हुआ जो इसकी माँ को ये बातें नहीं सुननी पडी, उसे धर्मशाला मे ही छोड आया।'

ऐसी अप्रत्याशित और अप्रिय घटना के बाद बैठक जम नहीं पायी। धीरे-धीरे मित्र खिसक गये। वृद्ध तो पहले ही जा चुका था।

कलकत्ते आने के बाद युवक सेठ ने जन्म देने वाले पिता-माता की कभी खोज-खबर न ली। उसमें गुमान आ गया था। परन्तु मुनीम गुमाश्ता के सामने हुइ इस घटना के कारण वह बहुत झेंप गया। घोडा गाडी मे पत्नी को साथ लेकर शाम को धर्मशाला मे पहुँचा। पिता माता तब तक पुरी के लिये रवाना हो चुके थे।

कहते है, भाग्य गिरत-फिरल की छाया है। कुछ वर्षो मे उसके सगे छोटे भाइयो ने बहुत धन कमा लिया जब कि व्यापार मे घाटा होने के कारण उसकी अपनी सम्पत्ति समाप्त हो गयी। गरीबी की बात जब देश पहुँची तो माँ का दिल नहीं माना। जिद करके वृद्ध पति के साथ कलकत्ते के लिये रवाना हो गयी। उस समय तक उसके अपने पुत्रो का यहाँ मकान हो गया था और कारोबार भी बढता जा रहा था।

खबर मिलने पर पत्नी और बच्चो सहित सकुचाता हुआ बडा पुत्र मिलने आया। माँ बाप के पैरो पर गिर पडा और बहुत वर्षो पहले किये गये अपने दुर्व्यवहार के लिये क्षमा माँगने लगा।

'अब तो तुमने मुझ पहचान लिया होगा ?" कहते हुए पिता मुँह फेर कर बैठ गया।

वृद्ध माता एकटक देख रही थी, अपने बडे बेटे और बच्चो को। बीस वर्ष पहले बारह वर्ष के बालक को उसके सुख की कामना से अपने सीन से पृथक किया था। पुत्र कुपुत्र भले ही हो जाये माता कुमाता नहीं होती। उसने बेट को खींच कर छाती से लगा लिया और भरे गले से कहने लगी—'भगवान का दिया तुम्हारे भाइयो के पास बहुत है। मूँग माठ मे कौन बडा कौन छोटा ? चारो मिलकर कारोबार सम्हालो।"

उनकी आँखें गीली हो आयी थीं दोनो पौत्रो का गाल मे उठा कर जल्दी से कमरे के बाहर हो गयी।

चोंच दी, वह चुगा भी देगा

बीसवीं शताब्दीकी बात है। राजस्थानके किसी शहरमें एक करोड़पति सेठ था। सब तरहसे भरा पूरा परिवार सुन्दरी पतिपरायणा पत्नी और दो आज्ञाकारी स्वस्थ पुत्र। व्यापारसे लाभ और ब्याजसे प्रतिवर्ष सम्पत्ति बढ़ती रहती। आडम्बर-शून्य जीवनचर्या थी। स्वभावसे वह बहुत मितव्ययी था। सालके अन्तमें आय-व्ययका मिलान करता और देख लेता कि पिछले वर्षकी अपेक्षा कितनी बढ़ोत्तरी हुई अथवा कितना रहा।

एक दिन शहरमें एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् महात्मा आये। सेठने उनकी प्रसिद्धिकी बात सुन रखी थी। आदर-सत्कारके साथ अपने घर लिवा लाया। सेवासे उन्हें प्रसन्न कर दिया। महात्माजीने जन्म-पत्री देखी। उन्होंने बताया, बृहस्पति उच्च है सब प्रकारके सुखोंमें जीवन व्यतीत होगा, यश भी भाग्यमें है। आप साधु महात्माओं और दीन दुखियोंको प्रतिदिन अन्न भेंट किया करें, इससे आपके वंशमें पाँच पीढ़ी तक धन, वैभव और यश अक्षुण्ण रहेगा।

महात्माजी यह सब बताकर चले गये। सेठ उनके कहे अनुसार दूसरे दिनसे अन्न वितरण करने लगा। परन्तु उसके मनमें एक चिन्ता रहने लगी 'मेरी छठी पीढ़ी कैसे रहेगी?

नका क्या हाल होगा ? उनके लिये क्या किया जाय ?' इत्यादि।

सेठानी और मुनीम-गुमाश्ता ने बहुतेरा समझाया कि छठी पीढ़ीकी अभीसे क्या चिन्ता है ? इतनी सम्पत्ति है, जमा हुआ कारबार, पाँच पीढ़ी तक तो चलेगा ही, आगे भी कोई न कोई उनमें समर्थ होगा जो सम्भाल लेगा। मगर सेठजीका मन मानता नहीं, वे चिन्तामें दुबले होते गये, कुछ बीमार भी रहने लगे।

एक दिन अन्न वितरणके लिये अपनी कोठीकी ड्योढी पर बैठे थे कि एक गरीब ब्राह्मण भगवत-भजन करते हुए सामनेसे गुजरा, सेठने कहाकि महाराज, अन्न की भेंट लेते जाइये। उसने विनम्रता से उत्तर दिया, "सेठजी इस समयके लिये मुझे पर्याप्त अन्नकी प्राप्ति हो गयी, सायकालके लिये भी सम्भवत किसी दाता ने घर पर सीधा भेज दिया होगा। न होगा तो मै पूछ कर बता दूँगा।

कुछ देर बाद ब्राह्मण वापस आया। उसने बतायाकि घर पर भी कहींसे सीधा आ गया है, इसलिये आजके लिये अन्न और नहीं चाहिये।

सेठजी कुछ चकितसे रह गये। कहने लगे, "महाराज, आप जैसे सात्विक ब्राह्मणकी कुछ सेवा मुझसे हो जाये। कमसे कम एक छाज (एक तोल) अन्न अपने आदमियोंसे

बहुत दिनों तक काम चल जायगा।'

ब्राह्मण ने सरल भावनासे कहा, "दयानिधान, शास्त्रोंमें लिखा है, परिग्रह पापका मूल है, विशेषत हम ब्राह्मणोंके लिये। आप किसी और जरूरतमन्दको यह अन्न देनेकी कृपा करें। दयालु प्रभुने हमारे लिये आजकी व्यवस्था कर दी है। कलके लिये फिर अपने आप ही भेज देगा। जिसने चोंच दी है, वह चुगा भी देगा।"

सेठजी उस गरीब ब्राह्मणकी बात सुन रहे थे। मन ही मन विस्मित भी थे, "इसे तो कलकी भी चिन्ता नहीं, जो आसानीसे मिल रहा है उसे भी लेना नहीं चाहता। एक मैं हूँ जो छठी पीढ़ीकी चिन्तामें घुला जा रहा हूँ।

दूसरे दिनसे वे स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई देने लगे। दान-धर्मकी मात्रा भी बढ़ गयी। उनके चेहरे पर शान्तिकी आभा विराजने लगी।

जिस देश मे जमुना बहती है ।

पिछले दिनों दिल्लीमें ससद भवनके सेन्ट्रल हालमें गया। मेरे मित्र श्री भोला रावत, एम०पी० ने कहा कि आइये आपको एक पुराने मित्रसे मिलायें। मैंने चारों ओर नजर घुमाई किन्तु जान-पहचानका कोई भी दिखाई न पडा। पासकी बेंचपर गेरुआ वस्त्रधारी एक बाबाजी बैठे थे। भोला बाबूने हँसते हुए कहा, "पहचाना नहीं ? ये है श्री महेन्द्रकुमार सिंह, आपके साथ १९६२ तक ससद सदस्य रह चुके है।" फिर तो उस दाढी मूँछोवाले हँसते चेहरेमें दस वर्ष पहलेके महेन्द्र बाबू मुझे दिखाई दिये।

१९६२ के पहले ही उनके मनमें वैराग्य जगा था। आगेके ससदीय चुनावमें खडे नहीं हुए। अपना भरा-पूरा परिवार और सम्पत्ति त्यागकर सन्यास ले लिया। पिछले दस वर्षोंसे भारतके प्राय सभी तीर्थों और पहाडोंकी यात्रा कर चुके है। मैंने पूछा कि क्या आपको किसी प्रकारकी असुविधा का अनुभव नहीं होता ? सीधा सा उत्तर मिला, "वैसे तो सन्यासीको सुख-सुविधा, मान-अपमानका ध्यान नहीं रहना चाहिये। गगा जमुनाका पवित्र देश है हमारा, इसके हर गाँव और खेडेमें श्रद्धालु माँ-बहनें मिल जाती है, इसलिये जानी-अन-

जाती, जितनी भी जगह जाता हूँ मुझे खादी आदि रहनेका स्थान मिल ही जाता है, कभी-कभी तो दूध, दही और सब्जी भी। हाँ, रेलमें बिना टिकट नहीं चलता वैसे तीसरे दरजेमें सफर करता हूँ फिर भी इसके लिए पैसेकी जरूरत तो पड़ती ही है। यदि सवारीका व्यवस्था न हो तो पैदल ही यात्रा कर लेता हूँ।

थोड़ा ही देरमें उन्हें बहुतसे परिचित मित्राने घेर लिया। एकने पूछा कि महाराज, आप तो बहुत आराम और मौज शौकसे रहते थे, इस प्रकारके जीवनसे आपको कष्ट नहीं होता? उत्तर मिला "इस नये मार्गसे जीवनमें मुझे सुख और शान्ति मिली जिसका शतांश भी इससे पहले जमींदारी और राजनीतिक जीवनमें नहीं मिल पाया।

दूसरे मित्रने प्रश्न किया, "क्या आप अपने परिवारमें कभी जाते हैं? उन्होंने कहा "हाँ, कभी कभी जैसे दूसरे घरोंमें ठहरता हूँ उसी तरह एक दो दिनके लिये वहाँ भी ठहर जाता हूँ।

महेन्द्र बाबूसे हम हमेशा राजनीतिक बहस और हँसी दिल्लगी किया करते थे। परन्तु मैंने देखा अब उनके प्रति सबके मनमें श्रद्धा है, एक दो की आँखें तो गीली भी हो आयीं।

उसी रात मुझे जयपुर जाना था। ऊपरकी बर्थ मिली थी। सदाकी भाँति भगवे रंग का खादीका कुर्ता पहने था। रक्त-

चापन प्रचारके लिये मेरे मित्र श्री रामाश्रय दीक्षित द्वारा दी हुई रुद्राक्षकी माला गलेमे थी जो सयोगसे बाहर दिखायी दे रही थी। कंडक्टर गार्ड टिकट चेक करता हुआ मेरे पास आया। बडी श्रद्धासे मेरी ओर देखा और किसी तरह नीचेवाली बर्थकी व्यवस्था मेरे लिये कर दी। मने सोचा, गार्ड मेरे वेशसे प्रभावित हुआ, क्यों न इस यात्रामे महेन्द्रजीका नुसखा आजमाया जाय।

जयपुरका काम थोडी देरमे निपटा कर ढाइ बजे वाली बससे आगराके लिये रवाना हुआ। बस कंडक्टरने कहा, "बाबाजी, रास्तेमे मेहन्दीपुरके हनुमानजी का मन्दिर पडता है। स्नान जरूर कीजिए, तुरन्त परचा देते है।" इस स्थान का नाम बहुत दिनासे सुन रखा था। वहाँ पहुँचते-पहुँचते शाम के पाच बज गये। म उतर पडा। मुख्य सडकसे मन्दिर दो मील भीतरकी ओर है। तागा लेकर वहाँ छ बजे पहुँचा। हलवाइया, मोदियोकी छोटी-छोटी दुकान, दो चार धर्मशालाएँ और एक बेडौलसा मन्दिर, यह था मेहदीपुर। भीतर जाकर देखा, टाल्क पर कीर्तन हो रहा ह और तीन-चार औरत उसकी ताल पर सर धुन रही ह, कभी-कभी चिल्ला उठती है। मन्दिरके सम्बन्धमे यह बात कही जाती ह कि बालाजीके प्रभावसे प्रेतबाधा मिट जाती है। मगर म इस विवादमे पडना नहीं चाहता कि वास्तवमे वे प्रेत-पीडित थीं या दर्शनार्थियाको प्रभावित करनेके लिये पुजारियो द्वारा नियुक्त।

गरमी, सड़ाँध और दुकानों की मक्खियोंसे ऊब उठा और वापस मुख्य सड़क पर आ गया। सात बज रहे थे। घंटे भर खड़ा रहा परन्तु आगरा जाने वाली कोई बस नहीं आयी। पता चला, अब कोई बस मिलेगी नहीं। लाचार सड़कके किनारे सामान रखकर पासके कुँएकी जगत पर बैठ गया। आठ बज गये, अंधेरा हो आया। सोचने लगा, शायद वापस मेहदीपुर जाकर किसी धर्मशालामें ठहरना पड़ेगा। इतनेमें दूरसे आती रोशनी दिखाई पड़ी। कुछ देर बाद देखा, एक ट्रक आ रही है। पास आने पर हाथ दिखाकर उसे रोका। ड्राइवर ने पूछा, "कहाँ जाना है बाबाजी?" मैंने कहा, "आगरा।" इससे आगे कुछ और कह पाऊँ कि उसने बड़े रागसे अपने खलासी को मेरा सामान ट्रक पर चढ़ानेके लिये कहा। जबतक वह नीचे उतरे, आसपास खड़े भक्तोंने मेरा सामान उसे पकड़ा दिया। ड्राइवरने ट्रक की छतकी ओर इशारा करते हुए कहा, "आप ऊपर आसन लें, कोई कष्ट न होगा उसकी आवाजमें स्नेह, श्रद्धा और विनय पाकर मैं कुछ कह न सका। लोहेकी सीढ़िया के सहारे छत पर चढ़ गया। खलासीने सोनेके लिये अपना एक पुराना सा गद्दा बिछा दिया। मैं उस पर लेट गया।

ट्रक चौड़ी सडकके दोनो ओरके ऊँचे-ऊँचे पेड़ोंकी झुकी डालियोंके नीचेसे चली जा रही थी। ऊपर खुला आसमान, झिलमिलाते तारे। खलासी नयी उमरका था, फुर्तीला और तेज। अपने सुख दुखको सुनाने लगा। पाँच-छह वर्षसे ट्रकोंमें

घूमा करता है। घरकी गरीबीने कठोर जीवनके लिये बाध्य किया। मा छोटे दो भाई और बहनकी देखभाल करती है। बाप शराबी था, पाँच बीघा जमीन थी, रेहन रखकर मर गया। दौसासे सोपस्टोन लादकर कानपुर जा रहा है। ट्रकके डाईवरको उस्ताद मानता है। उसीने खलासीमें भरती किया। उसकी जुबान कडवी है मगर दिल मीठा। बहुत गालियाँ देता और मारताथा, मगर काम सीखा कर छोडा। साल दो साल हुए डाइविंगका लाईसेन्स भी दिला दिया। कभी-कभी स्टिअरिंग पकडा देता है, मगर अभी पूरीतौर पर गाडी छोडता नहीं। तनखाहके अलावा अक्सर अपने पाससे कुछ पैसे दे देता है।

म सुनता जा रहा था, मगर थकानसे आखें झॅपती थीं। कब गहरी नींदमे सो गया पता नहीं। एकाएक डाइवरकी आवाज सुनाई पडी, "महाराज भोजन करगे'? घडी मेरी रात ग्यारह बजे थे, जगलमे रास्तेके किसी ढाबेके सामने ट्रक रुकी थी। हाथ मुँह धोकर वहीं रक्खी मूॅजकी खटिया पर लेट गया। थोडी देर बाद शुद्ध देसी घीकी छौंकी दाल, सुस्वादु रोटियाँ और अच्छा दही थालमे रखकर आया, साथमे अचार और प्याज तृप्त होकर खाया। चलते समय पैसे देने लगा तो ढाबेवाला सकोच करने लगा।

करीब डेढ-दो बजे रात ट्रक आगरेकी सीमा चुगी पर रुकी। सुनाई पडा, "ऊपर कौन है ?" आवाज सुनते ही मैं

जग पड़ा था। ड्राइवरने बताया, "एक महात्मा हैं।" ट्रक स्टार्ट करते हुए उसने मुझसे पूछा कहाँ उतरेंगे महाराज। "मैंने कहा किसी भी धर्मशालाके पास छोड़ दो।" उसने अनुरोध किया, "आज रात यहाँ न इसी पर आराम करें सुबह जहाँ मर्जी चले जाय।" मुझे नींद आ रही थी, उसकी बात मान ली और ट्रक पर ही सो रहा।

सुबह पाँच बजे उठा तो देखा कि शहरके बाहर एक पट्रोल पम्प पर दूसरी ट्रकोंके साथ हमारी ट्रक भी खड़ी थी। ड्राइवर और खलासी मेरे आसपास गहरी नींदमें थे। पासकी झाड़ियों में शौचादिसे निवृत्त होकर आया। उस समय तक वे जग चुके थे। ट्रक जमुनाके इसपार नौनिहाईमें रुकी थी। संयोगसे सुबहकी पाली पर जाता हुआ एक रिक्शा मिल गया। हाथका झोला मैंने साथ ले लिया और अटैची ट्रकमें ही रहने दी। ड्राइवरको अपना कार्ड देकर कहा कि कानपुरसे अपने आफिसमें रखवा देना, मैं वहाँसे मँगवा लूँगा। उसने कहा—"फिक्र न करें महा-राज, आपका बक्स परसों सुबह तक पहुँच जायगा। रिक्शेमें बैठकर जब बेलनगंजसे गुजरने लगा तो सोचा कि न तो ट्रकका नम्बर लिया और न ड्राइवरका नाम पता पूछा। परन्तु मनने कहा कि धोखा नहीं होगा।

आगरेमें अपने साहित्यिक मित्र रावीजीके यहाँ सारा दिन बिताकर रातमें जब स्टेशन पहुँचा तो पता चला कि कानपुर जानेवाली पैसेंजर ट्रेनमें फस्ट क्लासकी सारी सीटें पहलेसे

ही भरी हैं। तीन दिनकी लगातार यात्रासे थका हुआ था। मनमे चिन्ता हुई। देखा, एक कम्पार्टमेन्टमें पति-पत्नी और तीन बच्चे थे। मैंने कहा, "भाई एक सीट आप मुझे देनेकी कृपा करेंगे? उन्होंने बच्चोंको एक सीट पर कर दिया और एक पूरी बर्थ मुझे देदी। मैंने देखा, यहाँ भी मेरे वेशने अपना चमत्कार दिखाया। जब कानपुर उतरा तो पति-पत्नी और बच्चोंने भक्ति-भावसे मुझे प्रणाम किया।

घर पहुँचा तो दो-तीन घंटे बाद अरोड़ा ट्रान्सपोर्टका फोन आया कि आपकी अटैची हमारे ट्रकसे अभी आयी है, ड्राइवर यहीं बैठा है आपका प्रणाम कह रहा है। उसने यह भी पूछा कि क्या मैं स्वयं ट्रकसे आया था या आपके यहाँ आने वाले कोई महात्माजी। मैंने जब उन्हें बताया कि मेंहदीपुरसे आगरा तक मैं ही उनकी ट्रक पर आया हूँ तब जाकर उन्हें विश्वास हुआ।

इस यात्रामे एक अभिनव अनुभव हुआ कि आज भी हमारे देशके जन-मानसमे गंगाकी पवित्रता और जमुनाका प्रेम वर्तमान है। हजारों वर्षोंसे दोनों बहनोंकी पुण्य भूमि पर बसे लोग साधु महात्माओंकी सेवा करते आ रहे हैं। देश का सौभाग्य है कि यह परम्परा कुछ अंशोंमे अवशिष्ट है। यही कारण है कि बिना किसी सम्बलके बद्रीनाथसे कन्याकुमारी और द्वारिकासे सुदूर कामाख्या तक साधु सन्यासी यात्राएँ कर पाते हैं।

जीवन की उपलब्धि

ईस्वी पूर्व पहली शताब्दीमें रोममें सिसेरो नामका एक विलक्षण विचारक और वाग्मी हुआ। अपने सदाचार सद्विचार और निष्ठापूर्ण जीवनके कारण जनमानसको उसने प्रभावित किया था।

रोमन सभ्यता और संस्कृतिका वह स्वर्णिम युग था। पश्चिममें ब्रिटेन, रोम और स्पेन, पूर्वमें मेसोपोटामिया और बेबीलोनिया तथा दक्षिणमें भूमध्य सागर तटीय अफ्रीकाके देश विशाल रोमन साम्राज्यके प्रान्त थे। रोमकी सड़कों पर विदेशोंसे लाये सोना, सुन्दरी और गुलामोंका प्रदर्शन सामन्त बड़ी शानसे करते। वह जमाना था जब संसारकी सभी सड़कें रोमको जातीं।

आमोद-प्रमोद, भोग-विलास और बुद्धिचर्चा रोमन नागरिकोंकी दिनचर्या थी, तर्क-वितर्कमें पराजित कर देना प्रतिष्ठाकी बात समझी जाती। यदि इससे निर्णय नहीं होता तो तलवार खिंच जातीं। रोमके चौकमें असि-द्वन्द्व और वाग्-द्वन्द्वके दृश्य आये दिन देखनेमें आते। सिसेरोके भी व्याख्यान वहाँ होते। उसका सिद्धान्त था, जनतन्त्र ही शासन संचालनका श्रेष्ठ पथ है। जनता मन्त्रमुग्ध होकर सुनती।

उन दिनों यूरोपमें समता और बंधुत्वकी बात कोई नहीं कहता था। गुलामीकी प्रथा प्रचलित थी। सुसभ्य ग्रीक और रोममें भी दास सम्पत्तिके रूपमें थे। अरब और अफ्रीकासे लाये सैकड़ों गुलाम रोमन सामन्तोंके घरोंमें रहते।

ईसासे लगभग ५० वर्ष पूर्व सेनापति सीज़र फौजके बल पर रोमका एकाधिनायक बन बैठा। जिन्होंने विरोध किया, मौतके घाट उतार दिये गये। प्रान्तोंमें विद्रोहके प्रयासको क्रूरतासे कुचल डाला गया। सीज़र! महान सीज़र!! लोग नामसे थरा उठते।

यद्यपि सिसेरो व्यक्तिगत विरोधमें नहीं पड़ा परन्तु जन-तन्त्रके सिद्धान्तोंका रोमन फोरममें डट कर प्रचार करता रहा। उसकी जनप्रियता देखकर सीज़रने उसके प्राण नहीं लिये, केवल राजधानीसे निर्वासित कर दिया।

अपने कुछ नज़दीकी शिष्यों और गुलामोंके साथ वह एक गाँवमें रहकर जनतंत्र पर ग्रन्थ लिखने लगा। बीच-बीचमें उसे सीज़रके आतंक और अत्याचारोंकी खबरें मिलती रहतीं।

अधिनायकवाद महत्वाकांक्षी अधिनायकोंको जन्म देता है और अधिनायकका अन्त भी उन्हींके द्वारा होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। एक दिन सीज़रके विश्वस्त मित्र और सेनापति ब्रूटसने सभासदोंकी एक बैठकमें उसकी हत्या कर दी। मरते समय सीज़र केवल इतना ही कह पाया "ब्रूटस! तुम भी"!

राजधानीमें अशान्ति फैल गयी। विशाल रोमन साम्राज्यमें अव्यवस्था बढ़ जानेके लक्षण दिखाई देने लगे। सेना लेपिडिसके साथ थी। राजकोष और साधन प्रधान मन्त्री अन्टोनीके पास थे। किन्तु अधिनायकवादसे त्रस्त जनता थी युवक नेता आक्टेवियसके साथ। तीनोंमें युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं।

आक्टेवियसने अपने गुरु सिसेरोको रोमका निमन्त्रण देते हुए लिखा, "रोम पर भयानक विपत्ति आयी है। बचपनसे ही आपके सिद्धान्तोंका कायल रहा हूँ। जनता मेरे साथ है परन्तु धन और सेनाकी कमी है। यदि इस सङ्कटकालमें आकर मेरी सहायता करेंगे तो जनतन्त्रकी स्थापना सम्भव हो सकेगी'।

मातृभूमिके प्रति अपने कर्तव्य पालनके लिये सिसेरो रोम पहुँचा। बहुत वर्षों बाद आया था। बाल सफेद हो गये थे, दाँत गिर चुके थे, शरीर जर्जर हो गया फिर भी वाणीमें पहलेकी सी ओजस्विता थी। उसकी सभाओंमें हजारोंकी संख्यामें रोमन नागरिक आने लगे। अन्टोनी और लेपिडिस डर गये कि कहीं जनता विद्रोह न कर बैठे।

आखिर, एक दिन रोमसे बाहर तीनोंकी एक गुप्त बैठक हुई। सभी भयभीत थे। तय हुआ कि आपसमें व्यर्थकी लड़ाई क्या करें। रोमन साम्राज्यके तीन हिस्से हुए रोम, ब्रिटेन और स्पेन, तथा अफ्रीकाके प्रदेश। राज्यके सञ्चालनके

लिये विपुल धनकी आवश्यक्ता थी। तीनोंने अपने-अपने धनी मित्रोंके नाम बताए। उनको मार कर धन सग्रहकी योजना बनी। इसके बाद एन्टोनीने कहा कि सुचारु रूपसे राज सचालनके लिये सबसे बडे बाधक होंगे, बुद्धिजीवी। अतएव इन्हें भी अविलम्ब समाप्त कर देना चाहिये। ऐसे नामोकी सूची बनी, पहला नाम था सिसेरोका।

आक्टेवियस इस पर अड गया। कहने लगा, "जिसकी सहायतासे मैं वर्तमान स्थिति पर पहुँच सका, जो मेरे लिये पितृतुल्य हैं, उनकी हत्याके लिये मैं सहमति कैसे दे सकता हूँ।' समझौता उस दिनके लिये रुक गया किन्तु दूसरे दिन उस महान विचारककी हत्याके लिये तीनों एकमत हो गये। इस प्रकार रोमन साम्राज्यका बँटवारा हुआ।

सिसेरोको सूचना मिल गयी। कुछ समय बाद 'रिपब्लिक' ग्रन्थ पूरा कर अपने पुत्र और मित्रोको सौंपते हुए उसने कहा, "मेरे जीवनका उद्देश्य पूरा हुआ, अब तुम्हें कष्ट न दूँगा।" उन लोगोंने समझानेकी कोशिशकी, "सामने ही द्रुतगामी नौका है, स्वीकृति दें, हम आपको सकुशल ग्रीक पहुँचा देंगे। ग्रीक आपका स्वागत कर गौरव बोध करेंगे"।

सिसेरोका उत्तर था, "मृत्यु अवश्यम्भावी है, थाडे दिन जीनेके लिये मातृभूमि छोडकर नहीं जाना चाहता। इसी मिट्टीमें पैदा हुआ, इसीमें मिल जाने पर मेरी आत्माको शान्ति

मिलेगी मनुष्यका जन्म एक उद्देश्यसे होता है, उसकी पूर्ति ही जीवनकी सबसे बडी उपलब्धि है। अब जीवनका मोह क्यो।'

सूचना राजधानीमें पहुँची। सिसेरोके सिरके लिये बहुत बडा इनाम घोषित था। बीसियों सशस्त्र सिपाही उसे बन्दी बनाने आये। उसके साथियोंने अपनी तलवारें निकाल ली।

"सावधान, रक्तपात नहीं, बिल्कुल नहीं' कहते हुए सिसेरोने आत्म समर्पण कर दिया।

सैनिक उसका सिर और हाथ काट कर रोम ले गये। राजधानीके उसी चौकमें इन्हें सलीब पर टाँगा गया जहाँ उसने सैकडो बार लोगोंको अपने सारगर्भित उपदेशोंसे अभीभूत किया था।

सिसेरोका आत्मोत्सर्ग व्यर्थ नहीं गया, उसका उद्देश्य जनतन्त्र जनमानसमें अमर हो गया। सम्राट और सामन्तोंकी भोगलिप्सा बढती गयी। अत्याचार बढते-बढते कुछ वर्षों बाद सम्राट नीरोकी सनक और क्रूरतामें साकार हो उठे। अबाध भोग-लिप्साका अगला कदम पतनकी ओर बढता है, वही हुआ। जनताके अन्दर अधिनायकवादसे मुक्तिकी चिनगारीने ज्वालाका रूप धारण किया। उसकी लपटमें नीरो भस्म हुआ। साम्राज्य खण्ड विखण्ड हो गया, और साक्षी देनेके लिये बच गये खण्डहर।

प्यार की कीमत

दिल्लीके लाल किलेमे शाहजादी जेबुन्निसाका महल, जनवरी की कँपानेवाली ठढ और सनसनाती हुई सर्द हवायें। सूरज ऊपर चढ आया था, शाहजादी अपने महबूब अकिल खाँकी बाहोंमे अल्सायी हुई लेटी थी।

बादी गुलरुखने दौडते हुए आकर कहा—"शाहजादी साहिबा गजब हो गया,बादशाह हुजूर इस तरफ आ रहे हैं।

शाहजादी घबरायी हुई चारों तरफ देखने लगी, सामनेके गुसलखानेमे एक बडी देग पानीसे भरी हुई रखी थी। जल्दी से अकिल खाँको उसमें छिपा दिया।

नगी तलवारोंसे लैस ८-१० तातारी बान्दियों और ख्वाजा-सरोंके साथ आरगजेबने प्रवेश किया। हरमकी बादियें सहमी सी एक तरफ खडी हो गयीं। शाहजादीने झुककर कोरनिस करते हुए कहा, "अब्बा हुजूरने इस बेवक्त कैसे तक्लीफकी।"

बादशाहने चारो तरफ नजर दौडाते हुए कुटिल मुस्कानमे कहा, "पहरेदारोंने खबरदी है कि सल्तनतका एक बागी इस तरफ आया है। सफेद मोतियोंके से दाँतोंमे बरबस लायी हुई हँसीमे शाहजादीने जवाब दिया कि भला इस तरफ आनेकी जरूरत किस मूजीको हो सकती है।

बहुत प्यार करता हूँ, परन्तु तू ऊंचे आकाशमें है, मेरी पहुँचसे बहुत दूर। ऐसा लगता है कि जीवनमें कभी तुझे नजदीकसे नहीं देख पाऊंगा, न तेरे सुन्दर मुलायम परों पर हाथ फेर सकूँगा। इसी तरह घुटनसे भरी मेरी जिन्दगी जल्द ही खत्म हो जायेगी। मेरी आरजू है कि अगर कभी मौका मिले तो पासके बगीचेसे अपनी चोंचमें एक फूल लाकर मेरी कब्र पर चढ़ा देना। इससे मेरी तड़पती हुई रूहको राहत मिलेगी, यही मेरा सबसे बड़ा सपना होगा।"

कभी-कभी उसके भाव इस प्रकारके होते—"ए, हवाओ, मेरा प्यारा नजदीक होते हुए भी बहुत दूर है, वह मेरी जुदायीके दर्दको पहचानता नहीं है। क्या तुम उसके दरबारमें मेरी तड़पन और दर्दके बारेमें बयान कर दोगी।

शाहजादीने गुलरुखको उस शख्सको ढूँढकर हाजिर करनेके लिए कहा—परन्तु कुछ भी पता नहीं चला।

आखिर लाहौरके सूबेदार आकिल खाँकी तलबी हुई। वह कोरनिस करके दस्त बस्ता एक तरफ खड़ा हो गया। २५-२७ का सिन, गठीला बदन, सुन्दर घुँघराले बाल, गोरा रोबदार चेहरा, परन्तु गमगीन सा दिखाई देता हुआ।

शाहजादी बजरेमें थी और वह पासकी नौकामें। पर्देमें से गुस्से भरी आवाज आयी "कौन है वह शख्स जो अपनी दर्दभरी गजलें गाकर हमारी तनहायीमें दखल डालता है? हम

यहाँ आराम करने आये है न कि मजदुओंकी जुदायीका दुख-दर्द सुनने ? उसे कल तक हाजिर किया जाय, यह हमारा हुक्म है।'

"गुस्ताखी माफ हो, शाहजादी हुजूर, वह एक पागल आदमी है उसे आज रातको ही पकड़ कर दूर भेज दिया जायगा।

"हमे लगता है कि हमारे सूबेदार बातको टालनेकी कोशिश कर रहे है। हम उस अभागेसे बात करके उसके रजोगमके बारेमे सुनना चाहेंगे, अगर हो सका तो उसकी तकलीफ दूर करनेकी कोशिश की जायगी।"

आकिल खाँने देखा शाहजादीके चेहरे पर कुछ उदासी सी है, हुक्ममे भी एक प्रकारकी आरजू है। मनको कडा करके सहमते हुए कहने लगा, शाहजादी हुजूर यह खता इस गुलामसे हुई है, यह सर हाजिर है भले ही कत्ल करा दिया जाय।

शाहजादीको भी कुछ अंदेशा तो था ही, उसका दिल भर आया। कुछ वर्षों पहले ही उसकी मगनी दारू द्वारा शिकोहके शाहजादे सिपरशिकोह के साथ हो गयी थी, अभी बचपन ही था फिर भी दोनो प्यारमे सराबोर थे। – परन्तु होता वही है जो मजूरे खुदा होता है।

दादा बीमार हुए, उन्हें कैदमे डालकर अब्बाने बडे भाई दाराका सर काट लिया और उसके मगेतर शाहजादेको ग्वालियरके किलेमे पोस्त पी-पीकर मरनेको कैद कर दिया। इस

इधर जब १५ दिन हो गये तो एक रातमे आकिल कहने लगा, "जेब इस प्रकार कितने दिन चलेगा, हमे यहाँसे कहीं दूर निकल जाना चाहिए, मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूँ कि मुझे केवल मेरी जेब चाहिए न कि उसकी दौलत और रुतबा। कहीं भी दो पैसे मजदूरी करके पेट भर लेंगे।"

मुस्कराती हुई जेबने कहा कि आकिल कल जरूर फैसला कर लेंगे। और दूसर दिन अपने आप फैसला हो गया।

फूलों की घाटी

सन् १९५० और १९६४ मे १३८०० फीटकी ऊचाई पर स्विटजरलैंडमे आल्पस पर्वतकी चोटी यग फ्राट पर हो आया था। लोगोने कहाकि शायद वहाँ पतली हवाके कारण स्वास लेनेमे कष्ट हागा, परन्तु मुझे एसी कोई तक्लीफ नहीं हुई। हाँ, यह जरूर था कि स्विस इजीनियरोने पहाडके भीतर सुरग काट कर ऊपर तक ट्रेन पहुंचा दी हे। इसल्यि यात्री बिना थकावटके दा घटेमे इण्टरलाक्नसे वहाँ पहुँच जाते है। ऊपर जाते ही ताप नियत्रित होटलमे चाय, और नास्तेकी व्यवस्था रहती हे।

देश लौटने पर जब वहाँकी सुन्दरता और भव्यताके बारेमे लिखा तो कई मित्राने कहा कि तुम एक बार हिमालयके लोक-पाल हेमकुण्ड और फूलोकी घाटी जाकर आओ, फिर दोनोकी तुलना करो।

स्माइथकी बहुचर्चित पुस्तक 'फूलोंकी घाटीके' बारेमे बहुत कुछ सुन रखा था, परन्तु उसे कभी पढनेका मौका नहीं मिला।

जुलाई ७२ मे दो मित्रोंके साथ उत्तराखण्डकी यात्राके लिए गया। अधिक वर्षाके कारण रास्तेमे रूकावट आगयी इसलिए

केवल जमुनोत्तरी-गंगोत्तरी जाकर वापस आना पड़ा, बद्री-केदार नहीं जा सका।

सौराष्ट्रकी यात्रा करता हुआ १६ अगस्तको नयी दिल्ली आया। बद्री-केदार जाकर उत्तराखण्ड पर कुछ लिखनेका विचार था इस लिए वहाँ २५-३० बार गये हुए मित्रवर गंगा-शरणजी सिन्हा, संसद सदस्यसे सलाहकी।

उन्होंने कहा कि अगर जानेका मन है तो फूलोंकी घाटी देखनेका भी यही उपयुक्त समय है, इसलिये हिम्मत करके हेम-कुण्ड और फूलोंकी घाटी हो आओ।

मुझे २४ तारीखको कानपुर वापस लौटना था इसलिये उसी रात हरिद्वारके लिये रवाना हो गया, गर्म कपड़े दिल्लीमें थे नहीं-इसलिये केवल खादीके कुर्ते-धोती और तीन कम्बल साथमें ले लिए और प्रबोध सन्यालके उस 'महाप्रस्थानके पथ पर' चल पड़ा।

केदारनाथके लिए ऋषिकेशसे बस द्वारा गुप्तकाशी गया—परन्तु वर्षाके कारण आगेका रास्ता खराब था इसलिए वापस रुद्रप्रयाग होता हुआ बद्रीनाथ चला आया। सन १९४५ में पिताजी-माताजीके साथ वहाँ आ चुका था, परन्तु इन २१ वर्षोंमें बद्रीनाथकी काया पलट हो गयी है—छोटेसे पहाड़ी गाँवकी जगह अब एक सुन्दर कस्बा बसा हुआ है, जिसमें पाचसों गेस्ट हाउस, धर्मशाला और अतिथिशालाएँ है—

बिजलीकी जगमगाती रोशनीसे सुसज्जित दुकानें। खैर, यहाँ तो मुझे केवल फूलोंकी घाटीके बारेमें ही लिखना है।

प्रसिद्ध पर्वतारोही स्माइथने १६३१ में कामत चोटीसे उतरते हुए, इस स्थानकी झलक देखी थी, परन्तु उस समय उसके साथ बडा काफिला था—प्रोग्राम भी नहीं बना हुआ था, इसलिये वहाँ बिना रुके वापस यूरोप चला गया। परन्तु उसके मनमें इसे देखनेकी प्रबल आकांक्षा बनी रही। उसने लिखा है कि एक प्रकार अनजाना आकर्षण-सा रहा। आखिर १६३८ में वह कुछ पहाडी मार्ग दर्शकों और कुलियोंके साथ उत्तराखण्डकी सुन्दर घाटीमें इस स्थान पर आ पहुँचा।

यहा वह दो महीने रहा और पूरी खोज बीनके बाद अपनी प्रसिद्ध पुस्तक वेली आफ फ्लावस लिखी फिर तो इस अचिन्हें अजाने स्थानका विश्वमें नाम हो गया और दूरसे साहसिक यात्री अनेक देशोंसे यहाँ आने लगे। कहते हैं कि यहाँकी मादक हवा और सुगधसे बेहोशी-सी आ जाती है। एक विदेशी महिला जाआन मागरेट लेग तो बेहोश होकर यहीं खड्डमें गिरकर मर गयी। मैंने उसकी समाधि इस वीराने स्थान पर देखी। पर्यटक आज भी श्रद्धा स्नेहसे उस पर दो फूल चढ़ाते हैं। स्वदेश और बन्धु-बान्धवोंसे हजारों मील दूर पुष्पोंकी शय्या पर चिर निद्रामें सोयी हुई है।

सयोगसे, यहाँसे चार मील पर सिक्खोंके दसवें गुरु गोविन्द सिंहके पूर्व जन्मकी तपस्थली लोकपाल हेमकुण्ड है,

जिसका पता बडी खोजके बाद १९३७ मे लग पाया। हजारोंकी सख्यामे श्रद्धालु सिक्ख स्त्रीपुरुष प्रति वर्ष तीर्थयात्राके लिए जाते हैं, इसलिए अब साधारण पर्यटकके लिये भी फूलोंकी घाटीमे जाना सहज हो गया है।

बद्रीनाथसे १२ मील पहले ६००० फीटकी ऊँचाई पर गोविन्द घाट गुरुद्वारा है, यहाँ तक मोटरें और बसें आती है। मैं ग्यारह बजे वहा पहुँचा। ग्रन्थीजीने बडे प्रेमसे लगरमे खाना खिलाया और ऊपर जानेके लिये चार आदमियाकी एक डण्डी कर दी। वैसे घोडा सस्ता और ज्यादा आरामदेह रहता, परन्तु उस दिन सारे घोडे ऊपर जा चुके थे और मुझे जल्दी थी। वहाँसे साढे सात मील ऊपर चढकर दस हजार चार सौ फीटकी ऊँचाई पर घाघरिया नामके स्थान पर भी गुरुद्वारा है। फूलो की घाटी और हेमकुण्ट जाने वालो के लिए यह सुस्ताने को जगह है। रातमे वहाँ ठहर गया। यहाँ भी ग्रन्थ साहब की आरतीके बाद कडा प्रसाद मिला और सादा भोजन। हेमकुण्ड जाने वाले दस-पन्द्रह सिक्ख यात्री ठहरे हुए थे, फिर भी जगह काफी थी। रात्रिमे ओढनेके लिये व्यवस्थापक ने ४-५ कम्बलें दे दीं।

दूसरे दिन सुबह साढे छ बजे हेमकुण्डके लिये रवाना हुआ। यहाँसे ४ मील दूर १५१०० फीटकी ऊँचाई पर यह पवित्र मनोरम स्थान है। इसके बारेमे दूसरे लेख मे वर्णन करूँगा

यहाँकी पतली हवासे मुझे किसी प्रकारके चक्कर नहीं आये। कपड़ोंमें केवल एक कुर्ता और एक खादीकी जाकेट थी, ऊपरसे एक कम्बल ओढ़े था। इतनी ऊँचाई पर आनेका मेरा यह पहला मौका था।

दो बजे जब वापस घाघरिया पहुँचा तो काफी थक गया था। मैंने डाडी केवल ऊपर चढ़नेके लियेकी थी। खड़ी उतरायीमें बिना अभ्यासके पैरोंके घुटनोंमें दर्द हो गया। भोजन करके आराम कर रहा था कि संयोगसे एक घोड़ा मिल गया और फूलोंकी घाटी उसी दिन चला गया।

मार्ग अत्यन्त विकट है। विष्णुगंगाके किनारे ऊँची-नीची पथरीली सकरी सड़क पर घोड़ा चला जा रहा था। कहीं-कहीं तो केवल दो फीट चौड़ाई भी मुश्किलसे हो। हिचकोले लगते थे। मन दूर अतीतकी ओर खिंच जाता। मुक्तिकी कामनासे किस प्रकार एकाकी त्यागी सन्यासी इन वन प्रान्तरोंसे गुजरते होंगे। क्या मिलता होगा उन्हें इन बीहड़ और निर्जन मार्गों पर। क्षण भरमें दृष्टि चली जाती नीचे गहराईमें, गरजती विष्णु गंगा पर। झाग उड़ाती पत्थरोंसे टकराती बढ़ती जा रही थी, किसी भी अवरोधकी अटक नहीं जैसे इसीमें जीवन की सार्थकता हो। एक पुलसे घोड़ा गुजरा। ऊँचे दो पर्वतोंके बीच सँकरा सा पुल नीचे वेगवती नदीका उफान। जरा सी चूक हुई कि सब खेल खतम। जिन्दगी और मौतका फासला ही कितना।

म गौर कर रहा था पहाडी घोड़ा हमेशा गर्तकी तरफ चलता है पर उसकी सधी चालमे फर्क नहीं आता। घोडका मालिक मुझ पर नजर रखे था। जरा भी भय-भीत देखता तो दम दिलासा बढ़ाता। साहसिक घटनाओं, देवता-पुराणोंकी न जाने कहाँ-कहाँकी बातें कहते सुनाते दो-तीन मीलकी बीहड चढाई पार करा दी। हँस कर अन्तमे कहा, "शाब आगयी फूल घाटी।

सचमुच, सामने फूलाकी घाटीने मुस्कुरा कर स्वागत किया। जीवनमे देश देशान्तरोके भ्रमण-पर्यटनके बहुतसे अवसर मुझे मिले। उत्तरी ध्रुवाचलमे निशासूर्यके दर्शन किये। स्विटजरलैण्ड, फ्रान्स, आस्ट्रियाकी सौन्दर्य स्थलियाँ देखीं। सहाराके धधकते मरुस्थलमे रेतकी आँधियोंको देखा और निमूवियसकी उगलती आगमे प्रकृतिका रौद्ररूप महाकाली को देखा। परन्तु यहाँ जो कुछ देखा वह तो प्रकृतिकी अद्भुत और अवर्णनीय रचना थी। मुझे कविवर श्रीधर पाठककी पंक्तियाँ याद आगयी।

"प्रकृति यहाँ एकान्त बैठी निज रूप सवाँरति,
पल-पल पल्टति, दूवेय क्षणिक छवि छिन छिन धारति।"

लगता है देवाधिदेव शिवको प्रसन्न करनेके लिये आदिशक्ति पार्वती अपना शृंगार कर रही है।

मेरा भाग्य अच्छा था। मुझे रुपहली धूपमें पूरी घाटीके

फूल दिखाई पड़े। बहुत बार घने कोहरेके कारण पर्यटकोंको वहाँसे निराश लौटना पड़ता है। जो कुछ देखा, वह लिखना सम्भव नहीं। अनुभवको शब्द उतार सकते है, अनुभूतिको नहीं। स्विटजरलैण्डको देखनेके बाद मैंने उसे 'भूलोकका नन्दन कानन, समझा था यहाँ आने पर लगा कि यह धारणा भ्रान्ति-मूलक थी।

इस अचलका नाम भूयन्दरकी घाटी है। मैं सोचने लगा कहीं यह भू इन्द्रका अपभ्रंश तो नहीं। भाषा विज्ञान माने न माने, मैं तो मान बैठा। पता नहीं, इस जगह पर ही प्रकृतिने इतनी कृपाकी, सैकड़ों-हजारों तरहके फूल बिखेर दिये।

ऐसा लगता है कि ऊन और रेशमसे बुना गया विविध रंगोंका एक गलीचा सा बिछा हुआ है। आमतौर पर दस हजारसे अधिक ऊँचाई पर फूलोंकी तो बात ही क्या हरियाली नहीं मिलती। परन्तु यहाँके हिमशिखरोंकी गोदमें फूलों की बारात भूगोल और प्रकृति शास्त्र के लिये एक जिज्ञासा प्रस्तुत करती है।

डालियासे भी बड़े और राइके समान छोटे सैकड़ों तरहके फूल देखनेमें आये। आश्चर्यतो यह है कि बर्फानी तूफान, अत्यधिक शीत और ओलोंकी वर्षाको सहकर किस प्रकारसे ये कोमल पुष्प विकसित हो जाते है।

कई विशेषज्ञ यहाँके फूलोंके बीज और पौधे विदेश ले गये,

परन्तु अनेक प्रयत्नोंके बावजूद इस प्रकारकी सुगन्ध और रूप-रंगके पुष्प पैदा नहीं कर पाये।

जाते समय मित्रोंने चेतावनी दी थी कि वहां पर इतनी ज्यादा सुगन्ध है कि बेहोशी सी आ जाती है। मुझे लगा कि, सुगन्ध वहाँ जरूर है। किसी फूलमें लेवेण्डरकी किसीमें ताजा पिसी हुई काफीकी, तो किसीमें अजवायन, दालचीनी और लौंग जैसी। परन्तु बेहोशी अगर किसीको आती भी है तो केवल सुगंधीसे नहीं बल्कि यहाँके प्राकृतिक सौन्दर्य और १२००० फीट की ऊँचाई की पतली हवा से।

मनुष्य की तरह पशु भी शायद सौन्दर्य प्रेमी होते हैं। बरीलाल और मैं जब इस नन्दन काननमें एक घंटा ठहर कर नीचे उतरने का विचार करने लगे तो देखा कि उसका टीम घोड़ा फूलोंके ऊँचे-ऊँचे पौधोंमें छिपा हुआ खड़ा है।

पुकार-पुचकारके के बाद किसी प्रकार नीचे आनेको उसे तैयार किया और ६½ बजे तक इस अद्भुत वर्णनातीत और अनोखे स्थलसे वापस लौटे।

रात्रिमें गुरुद्वारेमें लेटा हुआ सोचता रहा कि अगर यह स्थान स्विटजरलैण्ड या हालैण्डमें होता, तो विश्वमें बड़े पैमाने पर प्रख्यात होकर हजारों-लाखों विदेशी यात्रियोंका आकर्षण पर्यटन केन्द्र बन जाता। पक्की सड़क बन जाती। ठहरनेके लिए ताप-नियंत्रित होटल-मोटल हो जाते, करोड़ों डालर पाउण्ड

मार्क आकर यहाँ विसर जाते। परन्तु हमें तो इन सब बातोंको सोचने-समझनेकी फुरसत ही नहीं है। बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें अजन्ताके अनमोल भित्ति चित्रोंका भी एक विदेशी पर्यटकने ही पता लगाया था और बीसवीं शताब्दीमें विश्वके इस अद्वितीय आश्चर्यका भी स्माइथ नामके विदेशी पर्वतारोही पर्यटक ने।

लोकपाल—हेमकुण्ड

भारतीय ऋषि मुनियोंने न जाने क्या अपनी तपस्थली दुर्गम हिमाच्छादित देवात्मा हिमालयको चुना था। शायद उनको वहाँकी शुद्ध हवा, स्वच्छ वातावरण और बर्फानी घाटियों ने आकर्षित किया हो।

पर्वतराज हिमालयको केवल मात्र तपस्थली कहना भूल होगी। शिव-पार्वती, दुष्यन्त शकुन्तला और अनिरुद्ध-उषाका प्रथम प्रणय यहाँके पहाड़ोंके वन-प्रान्तरमें हुआ था। मादक हवा और वातावरणसे विमोहित होकर अश्विनी कुमारोंकी चेतावनीको भूलकर पाण्डुराजने अपने क्षय रोगकी परवाह न कर माद्रीके साथ सम्भोग करके एक प्रकारसे मृत्युका आह्वान किया था।

तपोलीन ऋषि-मुनियोंके साथ-साथ आज भी यहाँके खेतों, खलिहानोंमें ढोर चराती हुई या नदीसे पानी लाती हुई उर्वशी, मेनका और रम्भाएँ देखी जा सकती हैं। इस स्थानकी हवामें इतनी मादकता है कि जिससे उद्वेलित होकर शिवजी जैसे तपस्वीके मनमें भी कामोत्तेजना हो आई। आखिर, उन्हें उसको भस्म कर देना पड़ा।

यहींकी एक परम रमणीय मनोहारी बर्फानी घाटीमें सिक्खोंके दशमेश गुरु गोविन्द सिंहजीने अपने पूर्व जन्ममें तपस्याकी थी। उन्होंने स्वरचित मन्थ विचित्र नाटकमें लिखा है —

"अब मैं अपनी कथा बखानो।
तप साधत जिह विधि मुहि आनो॥
हेम कुण्ड पर्वत है जहाँ।
सपत श्रृंग सोभित है तहाँ।
सपत श्रृंग तह नाम कहावा।
पाडु राज जहँ जोग कमावा।
तहि हम अधिक तपस्या साधी।
महाकाल कालिका आराधी॥"

गुरुजीके स्वर्गवासके बाद २२५ वर्ष तक यह स्थान जनतासे छिपा हुआ था।

बीसवीं सदी के शुरू से ही सिक्खों के मन में इस पवित्र तीर्थ को खोज निकालने की आकाक्षा रही। सन १९३२ मे बाबा करतार-सिंह वेदीको पाण्डुकेश्वरमें एक वयोवृद्ध महात्मा द्वारा इस स्थानका पता चला और वे अनेक प्रकारके कष्ट सहते हुए यहाँ पहुँच गये।

यहाँ आकर उन्होंने गुरुजी द्वारा वर्णित सात चोटिएँ देखी और उसके बीचमे स्वच्छ निर्मल जल का एक कुण्ड। वहीं पर

रखी हुई एक शिलापर ध्यानमग्न होकर बैठ गये। अधिक सर्दी और पतली हवाके कारण बेहोश हो गये।

उसी बेहोशीमें उन्हें आभास हुआ कि एक महात्मा कह रहे है कि अरे भाग्यवान तेरा जीवन सफल हुआ। यही वह शिला है, जिसपर बैठकर गुरु गोविन्द सिंहजीने तपस्या की थी। चेतना आने पर बाबा करतार सिंहको एक विचित्र आनन्दकी अनुभूति हुई। सारा शरीर हर्षसे रोमांचित हो गया, एक प्रकारकी नवी शक्तिके प्रादुर्भावका आभास हुआ।

अमृतसर आकर उन्होने सारा वृत्तान्त सिक्खोके नेता भाई वीरसिंहजीको सुनाया। वीरसिंहजीने कुछ साहसी मित्रोंको तैयार किया और उनको साथ लेकर इस दुर्गम स्थान पर पहुचे। बहुत परिश्रमके बाद सन् १६३६ मे उसी शिला पर एक छोटेसे गुरुद्वारे का निर्माण हुआ।

सन १६३६ के बादसे श्रद्धालु सिक्खोंके जत्थे प्रति वर्ष यहाँ आते रहते हैं। उनमेसे कइयाने रात्रिमे सरोवरमे बिजलीकी सी चमक देखी। हेमकुण्ड दर्शनके लेखक-डा० जवाहर सिंह ने लिखा है कि उन्होने अपने कई एक साथियो सहित एक बाज पक्षी देखा, जो इनके जत्थेके साथ-साथ घाँघरिया तक आया। यही बाज उन्होंने अमृतसरमे गुरुके बागके मोरचेके समय देखा था। उनलोगोकी धारणा है कि जो बाज गुरुजीके पास रहता था—वही इनके गुरुद्वारे और तपस्थली मे आज तक है।

२० अगस्त १६७२ को बद्रीनाथकी यात्रा करके लौटते समय लोकपाल—हेमकुण्ड जानेके लिए गोविन्द घाट गुरुद्वारेमे आया। हेमकुण्डके लिये जोशीमठ या बद्रीनाथके तहसीलदारसे परिपत्र ले लेना पडता ह, क्योंकि यह क्षे त्रतिब्बत की सीमा पर है।

अलकनन्दाके किनारे गोविन्द घाट गुरुद्वारा पाण्डूकेश्वरसे एक मील दूर ६००० फीटकी ऊँचाई पर ह। यहाँ पर ५०-६० यात्री आरामसे ठहर सकते है। चाय-पकौडी और मिठाईकी एक दूकान भी है। वैसे, गुरुद्वारेमे यात्रियोंके लिए चाय और भोजन की व्यवस्था रहती है।

दूसरे दिन, इस क्षेत्रके निरीक्षणके लिए जिलाधीशका ऊपर जानेका प्रोग्राम था इसलिए अचलके सारे घोडे पहलेसे ही आरक्षित कर लिये गये थे। ग्रथीजीने मेरे लिये ८०) रु० मे हेमकुण्ड जानेके लिए चार आदमियोंकी एक डाडी कर दी। अगर घोड पर जाता तो केवल ४०) लगते। भोजन करके १२ बजे रवाना हुआ।

अलकनन्दा पर लकडीका एक पुल बना हुआ ह, उसे पार करते ही खडी चढाई मिलती है। रास्तेमे जगली झाडियाँ और वृक्ष बहुतायतसे थे।

२ घण्टे चलनेके बाद तीन मील पर एक गाँव मिला, यहाँ एक चायकी दूकान थी। डाडी वाले काफी थक गये थे, थोडी देर सुस्ताकर आराम करने लगे।

के पेट भरनेके लिए सब कुछ करना पड़ता है। अगले दिन फिर इन्हें इससे भी कड़ी चढ़ाई-हेमकुण्ट पर जाना होगा, जहाँ की हवा भी पतली है। इसलिए उनकाइ और चक्कर आते हैं। शायद जीवनके अन्तिम दिनों तक इनका यही कार्यक्रम चालू रहेगा।

घांघरियाका गुरुद्वारा १०,००० फीटकी ऊँचाई पर है। श्रद्धालु सिक्खोंने १६३६ में यात्रियोंके सुस्तानेके लिए इसे बनाया था। अब तो काफी बड़ा हो गया है। १५-२० स्त्री-पुरुष ठहरे हुए थे। ग्रन्थीजीने बड़े प्रेमसे कोनेमें एक जगह बता दी। थोड़ी देर बाद प्रसादके रूपमें गर्म चाय मिली।

सर्दी और थकावटके कारण कंबल ओढ़कर सो गया था। गुरुग्रन्थ साहबकी आरतीका समय हो गया—ग्रन्थीजीने जगाकर कीर्तनमें चलनेको कहा। सिर पर ओढ़नेको साफा या टोपी नहीं थी-इसलिए कंबल ओढ़े माथा टेककर कीर्तनमें बैठ गया।

जो भजन-कीर्तन हुए, वे सब वैष्णव धर्मसे मिलते-जुलते थे। भाषा भी समझमें आ रही थी। आरतीके बाद सुस्वादु कड़ा प्रसाद मिला।

गुरुद्वारेमें भोजनके लिए लंगरमें बैठना पड़ता है। इसमें छोटे-बड़ेका भेदभाव नहीं रहता। बड़े-बड़े अफसर और धनी सिक्ख भोजन परोसते हैं तथा अन्य सफाई वगैरहका कार्य बड़े प्रेमसे करते हैं।

गरम फुल्के, दाल और आलू-प्याजकी सब्जी थी। भूखमें यह सादा खाना भी अमृत तुल्य लगा। भोजनके बाद सबोंने अपनी थाली-कटोरीको राखसे अच्छी तरह मलकर धो पोछकर रख दिया।

रातमें काफी सर्दी थी। व्यवस्थापकने ५ कम्बलें दीं—दो मेरे पास थीं। सोते ही खूब नींद आ गयी।

दूसरे दिन सुबह ६ बजे उठा। नित्य कर्मसे निवृत्त होकर तैयार हुआ—इतनेमें डाडी वाले आगये। आज चलना तो केवल ४ मील ही था, परन्तु चढाई थी ५,००० फीटकी।

मैं अचानक ही, विना प्रोग्रामके इस यात्रा पर निकल पडा था। इसलिए, गरम कपडे साथमें नहीं ला सका था। दो कनलें ओढकर डाडी पर बैठ गया। आमतौर पर १०-१२ हजार फीट पर हरियाली नहीं रहती, परन्तु इस अचलमें ही विश्वप्रसिद्ध फूलो की घाटी है इसलिए हमें रास्तेमें जगह-जगह सुन्दर फूल और पौधे दिखाई दिये। वैसे बर्फ गल चुकी थी, परन्तु फिर भी दोनों तरफ पहाडोंके कोनोंमें बर्फकी चौडी पट्टी थी। कहीं-कहीं इनके बीचसे झाँकती हरियाली प्रकृतिकी जीवन शक्तिका परिचय देती थी। काफी कडी चढाई पडती है, हवा भी पतली है।

डाडी वाले धीरे-धीरे रेंगतेसे ऊपर चढ रहे थे, जब थक जाते तो आराम करने लगते। मुझे उनकी थकावट देखकर कैसा ही लग रहा था, परन्तु मेरा इतनी ऊँचाई और खडी

चढ़ाई पर जानेका पहला ही मौका था। फिर भी बीच-बीचमें पैदल चलनेसे उन्हें राहत मिल जाती थी। हमें कुछ पहाड़ी मजदूर लोहेके खम्भे लिए हुए ऊपर जाते मिले। गोविन्दघाट गुरुद्वारेसे १२ मीलकी चढ़ाईपर उन्हें २०-२५ मिलते हैं। एक मन बोझ लेकर दो दिनोंमें अथक परिश्रम करके वे ऊपर हेम-कुण्ड पहुंचते हैं जहाँ पर गुरुद्वारेका निर्माण हो रहा [illegible]।

एक अधेड़ सिक्ख दम्पत्ति मेरे साथ-साथ पैदल चल रहे थे। आधी दूरी तो हिम्मत करके पत्नीने किसी प्रकार पार कर ली इसके बाद एक शिला पर बैठ गयी। पतिकी बहुत आरज़ू-मिन्नतके बाद भी वह जानेको तैयार नहीं हुई। मैंने अपनी डांडीमें बैठ जानेको कहा, परन्तु ऐसा लगा कि वे पैदल यात्रा की मनौती मानकर घरसे चले थे। हम जब करीब एक मील रह गये तो बहुत ऊँचे पर एक झण्डा दिखाई दिया। डांडी वालेने बताया कि वहीं हेमकुण्ड लोकपाल है। ऊँचाई देखकर मनमें कैसा ही भय—सा समा गया। रामनामका जप करता हुआ आँख मींचकर डांडी पर बैठ गया। जीवनमें पहाड़ों पर काफी घूमा हूँ, परन्तु इतनी कड़ी ऊँचाई कहीं भी देखनेमें नहीं मिली। मेरे ऊपर पहुँचनेके थोड़ी देर बाद ही वे दोनों भी थके-हाँफे ऊपर पहुंच गये।

१५,१०० फीट पर यह पवित्र स्थान है—इतनी ऊँचाई पर आनेका मेरा पहला मौका था। हवामें आक्सीजनकी कमीके कारण पतलापन था, फिर भी श्वास लेनेमें खास तकलीफ

नहीं हुई। वहाँ जाकर जो कुछ देखा, वह तो वर्णनातीत था। तुलसीदासजीकी उक्ति याद आ गयी, "गिरा अनयन, नयन बिनु पानी।

सातों चोटियोंके बीच की घाटीमें एक सुन्दर सरोवर है—उसके किनारे एक छोटा-सा गुरुद्वारा बना हुआ है। कहते हैं इसके भीतर रखी हुई शिला पर पूर्व जन्ममें गुरू गोविन्द सिंहजीने तपस्याकी थी।

नये गुरुद्वारेका भव्य भवन बन रहा था। वर्षमें केवल तीन महीने काम हो पाता है, इसलिए पाँच वर्ष हो गये और समाप्ति में और पाँच वर्ष लग जायेंगे। ५० लाख रुपये इसके लिए श्रद्धालु सिक्खोंने इकट्ठा किया है। ७४ वर्षीय रिटायर्ड इञ्जीनियर श्री बसनसिंहजी प्रति वर्ष तीन महीने यहाँ रहकर निर्माण कार्यकी देखभाल करते हैं—और भी तीन-चार स्वय-सेवक उनके साथ रहते हैं। चौगुनी मजदूरी देकर नीचेसे मजदूर लाते हैं, जिनमें से कुछ ठंढ और पतली हवा नहीं सह सकनेके कारण वापिस चले जाते हैं। उन सबके रहनेके लिए चार-पाँच कोठरियाँ बनी हुई हैं।

'वाह गुरूजीकी फतह' के बाद गर्म चायका गिलास मिला। ग्रंथीजीने गुरुग्रन्थ साहबके दर्शन कराये। सरोवर में स्नान करनेका मन तो बहुत था, परन्तु हडकम्प ठंढके कारण विचार छोड दिया। मेरे साथ आये हुए पति-पत्नीने जल्दीसे २–३ डुबकी ले ली।

गुरु गोविन्द सिंहजीने अपनी वाणीमें कहा है कि 'रित न भयो हमारो आवनको।' वास्तवमें ही यह जगह इतनी रमणीक और पवित्र है कि नीचे उतरनेको जी नहीं चाहता। यहाँसे ४,००० फीटकी ऊँचाई पर सात चोटियोंके बीचकी चोटी पर एक झंडा फहरा रहा था। पूछने पर पता चला कि कुछ हिम्मती सिक्ख प्रतिवर्ष वहाँ जाकर झंडा लगाते हैं।

मयागमें आती दफे रास्तेमें वे लोग मुझे मिले। उन्होंने बताया कि यद्यपि ऊपर जानेका तो रास्ता नहीं है, पर 'वाह गुरु' का जाप करते हुए किसी न किसी प्रकार पहुँच जाते हैं।

बाबाजीने भोजनके लिए ठहरनेका आग्रह किया, परन्तु डांडी वालोंको नीचे उतरनेकी जल्दी थी और मैं रास्तेकी बीहड़ता और सूनेपनको ध्यानमें रखकर उनके साथ ही जाना चाहता था इसलिए आधा घंटा ठहरकर वहाँसे रवाना हो गया।

मातृ दर्शन

सन् १६५७ की अक्टूबरकी एक साझ—सुहावनी सध्या—गुलाबी मौसम शिवाजी देवी भवानीके मन्दिरसे बाहर आये तो चकित रह गये।

खच्चरो और बैलोंका लम्बा-सा कारवाँ—हीरे, पन्नो और जवाहरातो भरे सोने-चाँदीसे दबे पशु धीरे-धीरे किलेमे प्रवेश कर रहे थे।

पत प्रधान मोरोपतने जिज्ञासा शान्तकी—महाराज, अम्बाजी सोनदेवने कल्याणके सूबे पर अधिपत्य कर लिया है और लूटका सामान लेकर आये है। शिवाजीने अम्बाजीको गले लगाया और बहुमूल्य कठहारसे पुरस्कृत किया। वे विस्मित थे कि कल्याणका शक्तिशाली सूबेदार इतनी आसानीसे कैसे हार गया।

शाबाश अम्बाजी, तुम्हारी स्वामी-भक्ति और बहादुरी पर हमे गर्व है। शिवाजीकी छाती फूल उठी अपने बहादुर सेनापतिको देखकर।

पर वे चौंके, पूछा, इस पालकीमे क्या है? अम्बाजीने मुस्कराते हुए जवाब दिया, महाराज इस पालकीमे कल्याण

की सबसे सुन्दर नाजनीन है। मुल्ला अहमदकी पुत्र-वधू सलमा, जिसकी खूबसूरतीकी शोहरत सारे महाराष्ट्रमें फैली हुई है। इसके क्रूर श्वसुरने सैकड़ों हिन्दू ललनाओंके आबरूसे साथ खेला है—आज उससे बदला लेनेका सुन्दर अवसर मिला है।

अम्बाजी अपनी सफलता पर फूले नहीं समा रहे थे।

परन्तु शिवाजी विचलित हो उठे, उन्होंने आँखें मूँद ली—उन्हें अपना बचपन याद आने लगा।

पिता शाहजी बीजापुरके सुलतानोंके यहाँ जागीरदार एव फौजी अफसर थे। तीन हजार मराठा घुडसवार और पैदल सिपाहियोंकी उनकी निजी फौज थी। माता जीजा बाई कर्तव्यनिष्ठ, साहसी एव धर्मपरायण थी किन्तु परमात्माने उन्हें रूप नहीं दिया था।

शाहजीने तीस वर्षकी अवस्थामें तुका बाई नामकी एक युवतीसे विवाह कर लिया और उसीके साथ बगलौरमें रहने लगे। सन् १६२९ में उन्होंने जीजा बाईको दो वर्षके पुत्र शिवा के साथ शिवनेरके किलेमें भेज दिया। दुखिया जीजाबाईने अपना सारा प्यार बालक शिवा पर उडेल दिया और धैर्यपूर्वक दिन बिताने लगी।

सौभाग्यसे दादाजी कोणदेव जैसे स्वामिभक्त अभिभावक तथा समर्थ गुरु रामदासका मार्ग दर्शन मिला। इस कारण

बचपनसे ही शिवामे अच्छे सस्कार जमने लगे, साहस और वीरताके साथ धर्मके प्रति आस्थाके लक्षण नजर आने लगे।

उन दिनो विवाह बचपन मे ही हो जाते थे। वे चौदह वर्षके हुए तो माताने पतिको उनके विवाहके लिए लिखा। शाहजीने उन दोनोको बगलौरमे अपने निवास स्थान पर बुला लिया। वहाँ सौत तुका बाईने उनका तरह-तरहसे अपमान किया। परन्तु जीजा बाईने बारह वर्षकी कठिन तपस्या से अपने को बहुत सयत कर लिया था।

उन्होने शाहजी से केवल इतना कहा—आपके सुख मे ही मेरा सुख है। आपका सारा धन और जागीर तुका बाई और उनके पुत्र व्यकोजीको फलेफूले। शिवाको केवल पूनाका गाँव द दीजिये। फिर यदि उसमे योग्यता होगी तो वह उसे बढा लेगा।

इस प्रकार पन्द्रह वर्षकी छोटी सी अवस्थामे वे पूनाके जागीरदार बने। उन्होने घुडसवारोकी एक छोटी सी टुकडी तैयार कर ली और मौका देखकर आसपासके इलाको पर छापे मारने लगे। मुसलमान सुलतानो और अधिकारियोके अत्याचारसे लोग बहुत दुखी थे इसलिए उनको विशेष रोकथाम नहीं मिली। लूटका सामान लाकर माताके सामने रख देते। इसमेसे तीसरा हिस्सा सिपाहियोमे बाँट दिया जाता। कुछ अश जीर्ण-शीर्ण मन्दिरोके पुनरुद्धार, कुएँ, बावलियाकी मरम्मत

या निर्माणमें व्यय किया जाता। बाकी बचा हुआ, बेहतरीन घोड़े और नये-नये अस्त्र-शस्त्रके खरीदनेमें लगाया जाता।

सर्व प्रकारसे साधन सम्पन्न होते हुए भी वे अपनेको स्वामी रामदासका सेवक मात्र मानते थे। इसीलिए अपने ध्वज का रंग भी भगवा रखा। सन् १६५७ में उनकी अवस्था केवल तीस वर्षकी थी, किंतु इसी बीच महाराष्ट्रके बहुतसे किलों पर कब्जा कर लिया। बीस हजार सुसज्जित मराठा वीरोंकी उनके पास फौज थी। दुश्मनोंकी बड़ीसे बड़ी फौज पर बाजकी तरह झपटते और लूटकर-वापस रायगढ़के अपने अभेद्य दुर्गमें चले आते। पचीस कोसका धावा मारकर मराठा फौज रायगढ़ वेसटके वापस पहुँच जाती तो लोगों को शुरू-शुरूमें विश्वास नहीं होता। बादमें अफगानों और पठानोंमें धारणा बन गयी कि शिवाजीको जिन्नातोंका सहारा है। फिर तो वे उनका नाम सुनते ही हथियार छोड़ भाग खड़े होते।

दिन-रात युद्ध में लगे रहने पर भी अपनी मातासे उन्हें धार्मिक प्रेरणा मिलती रहती थी। यद्यपि हिन्दू धर्मके प्रति पूरी आस्था थी, यवनोंके आये दिनके अत्याचार और मन्दिरोंके विध्वसमें उनका चित्त बहुत खिन्न हो उठता, फिर भी दूसरे धर्मोंकी उन्होंने कभी निन्दा नहीकी और न किसी मस्जिद अथवा गिरजेको नष्ट-भ्रष्ट किया। यही नहीं उन्होंने जीर्ण शीर्ण मस्जिदोंकी मरम्मत भी कराई। अपने सेनापतियोंको भी

आदेश दे रखा था कि किसी भी धार्मिक स्थानको हानि न पहुँचायी जाय और न दुश्मनाकी किसी स्त्रीकी वेइज्जती हो।

शिवाजीने देखा कि जवाहरातोंसे सजी हुई एक परम सुन्दरी युवती सहमी और सिमटी सी एक ओर खडी है। कुछ देर तक वे अपलक उसकी ओर देखते रहे। फिर कहने लगे—बहन उम्रमें तुम मेरेसे छोटी हो पर तुममें मुझे अपनी मातुश्री दिखाई देती है। फर्क इतना ही है कि परमात्मा ने तुम्हें अतुलनीय रूप सम्पत्ति दी है, लगता है, फुर्सतके समय अत्यन्त साधसे तुम्हारी रचना की है। सौभाग्यसे इस सौंदर्यका थोडा सा अंश भी मेरी माँको मिल जाता तो उसे दुहागका दुःख नहीं सहन करना पडता और मैं भी सुन्दर होता। मेरे सेनापतिने तुम्हारा अपमान किया, तुम्हें बिला-वजह तकलीफ दी। जिस धारणासे वह तुम्हें यहाँ ले आया, उसे सोचकर लज्जासे मेरा सर झुका जा रहा है, यदि माँ और गुरूजी सुनेंगे तो सोचेंगे इसके लिए शिवाका संकेत अवश्य रहा होगा। तुम चिन्ता न करो। तुम्हें इज्जतके साथ तुम्हारे खाविन्दके पास पहुँचा दिया जायगा। मेरे बहन नहीं है, आजसे तुम मेरी छोटी बहन हुई और मैं तुम्हारा बडा भाई।

पास खडे सैनिकोंने देखा शिवाजीकी आँखें गीली हो गयी है। थोडी देर बाद आश्वस्त होकर क्रोधमें काँपते हुए उन्होंने कहा—अज्ञानी, तुमने अपनी मूर्खतासे इतनी बडी

जीतको हारमे बदल दिया। लोग जब सुनेंगे कि शिवाजी भी अपने हरमके लिए पराई बहू-बेटियाको लूटता है तो हमारे बारेमे क्या सोचेंगे। कहाँ रह जायगी मेरी इज्जत ? फिर तो मराठे सिपाही और सरदार औरतोंको दिन-दहाडे बेआबरू करेंगे। पिछले चौदह वर्षोंसे तुम मेरे साथ हो। क्या कभी इस प्रकार की इच्छा या लालसा का आभास भी तुम्हें दिखाई दिया ? फिर कैसे तुम्हें हिम्मत हुई कि मेरे आदेश की उपेक्षा कर एक अबला दु खी नारीको यहाँ ले आये। अम्बाजी तुमने मेरी आबरूमे बट्टा लगा दिया। यदि राजा स्वय अपना शील खो बैठेगा तो सैनिकोका तो बाँध ही टूट जायगा। क्या यही मेरी हिन्दू पद-पादशाहीका रूप होगा ? कसूर तो तुम्हारा इतना है कि तुम्हें फासी पर लटका दिया जाय। किंतु, चूकि इस समय मैं स्वय क्रोधमे हूँ, इसलिए तुम्हारा फैसला मैं प्रधान मत्री मोरोपत पर छोडता हूँ।

कहाँ तो अम्बाजी विजयकी खुशीमे झूमता हुआ आया था आर कहाँ सबके सामने उसे यह अपमान सहना पडा। पत प्रधान मोरोपतका अम्बाजी पर स्नेह था। उसने अपनी देख-रेखमे उसे सब प्रकारसे योग्य बनाकर इतन वडे ओहदे पर पहुँचाया था। हाथ जोडते हुए शिवाजीसे उन्होंने प्रार्थना की कि महाराज अम्बाजी अभी युवक है और कुछ अबोध भी, किन्तु वीर और सच्चा स्वामिभक्त है। यह इसका पहला अपराध है, इसे क्षमा किया जाय।

सलमा समझनेकी कोशिश करने लगी कि शिवाजी इन्सान या फरिश्ता।

उसके ससुरके यहाँ लड़ाईमें जीती हुई सैकड़ों स्त्रियाँ लायी जातीं। कुछको तो चुनकर वह अपने लिए रख लेता, बाकियो को सिपाहियोंको बाँट देता। उसकी आखोंसे अश्रुओंकी अविरल धारा फूट पड़ी।

कुछ दिन बाद सलमा विदा हो रही थी, भाईके यहाँसे अपने ससुराल। शिवाजीने अपनी मुँह बोली बहिनको गले लगाकर विदाई दी। खच्चरों और घोड़ों पर दहेजका सामान था। सुनहरे-रूपहले पर्देसे ढकी पालकीके बगलमें सुरक्षाके लिए घोड़े पर चढ़ा हुआ जा रहा था अन्नाजी सोनदेव। अब वह अपने महाराजकी थातीको वापस लौटाने जा रहा था।

पालकी जब आयी थी, तो सिसक रही थी भय, चिन्ता और आशंकाके आँसुओंसे—पालकी जब जा रही थी तो भी सिसक रही थी, प्यार आनन्द और उल्लास भरे आँसुओंसे।

सम्राट और साधु

तेइस सौ वर्ष पहलेकी बात है, यूनानी विजेता सिकन्दर तुर्की आदि देशोंको रौंदता हुआ हमारे यहाँ पंजाब और सिन्धमें पहुँच गया। उसके साथ साठ हजार फौज थी जिनमें प्रशिक्षित घुड़सवार, तीरन्दाज और पैदल सैनिक थे। उनके पास बेहतरीन किस्मके तीर-धनुष, भाले और तरह-तरहके नये हथियार थे। वर्षों पहले यूनान सेरवाना हुआ, कहीं भी पराजय नहीं देखी, इसीलिये मनोबल ऊँचा था।

पंजाबमें उस समय पुरु नामका पराक्रमी और वीर राजा था। वह औरों की तरह सहज ही में परास्त न किया जा सका। अनेक प्रकारके छल-कपट और देशद्रोही सैनिक अधिकारियोंसे भेद लेकर सिकन्दरने उसके राज्यको जीत लिया। वहाँ की व्यवस्था करनेके बाद वह पाटलिपुत्र, मगध और वैशालीकी ओर बढ़ना चाहता था जो उन दिनों भारतके समृद्धतम राज्योंमें थे।

इसी बीच, उसने सुना कि रावीके तट पर एक त्रिकालदर्शी महात्मा रहते हैं। सिकन्दरके मनमें उनसे मिलनेकी इच्छा हुई। दूसरे दिन, अपने कुछ अधिकारियोंको उन्हें बुलानेके लिये एक सुसज्जित रथ के साथ भेजा। साधुके आश्रम पर पहुँचकर

उन्होंने सिकन्दरका सन्देश सुनाया । महात्माजीने कहा "भाई, मैं यहाँ वनमें रहकर जितना हो पाता है परमात्माके चिन्तनमें लगा रहता हूँ। राजा-महाराजाओंको मुझ जैसे व्यक्तियोंसे भला क्या काम ?" सेनाके अधिकारी पशोपेशमें पड गये। सम्राट सिकन्दर महानके निमत्रणको आज तक किसीने अस्वीकार करनेका साहस नहीं किया था। उन्हें चिन्ता हुई कि वे क्या उत्तर देंगे। सिकन्दरने चलते समय यह भी कह दिया था कि सयासीसे जोर-जबर्दस्ती न की जाय। उन लोगोने बहुत अनुनय-विनयकी, किन्तु महात्माजी नहीं गये।

डरते-डरते सैनिक अधिकारी सिकन्दरके शिविरमें आये। सम्राटने जब सुना कि उसके आदेशकी अवज्ञा हुई तो नथुने फडक उठे। महात्माजीको हाजिर करनेके लिए कडक कर आदेश देनेको ही था कि उसे अपने गुरु अरस्तूकी बात याद आयी। विश्व-विजय अभियानके पूर्व उसने कहा था कि भारत विचित्र देश है, धन-धान्य और शौर्यसे पूरित, किन्तु वहाँ वैभव माना जाता है त्याग में, भोगमें नहीं। तुम देखोगे कि वहाँके लोग आध्यात्म चिन्तनमें अतुलनीय है।

सिकन्दरने सोचा कि गुरुकी बात परखनेका अच्छा मौका है। आदेशकी प्रतीक्षामें खडे अधिकारियोंसे गभीरतापूर्वक इतना ही कहा कि वह स्वय ही जायगा।

अगले दिन सैकडो घोडो, हाथी और सैनिकोंके साथ वह महात्माजीकी पर्णकुटी पर पहुँचा। जाडेके दिन थे, ठढी तेज

तो तुम्हें शान्ति मिलेगी। आजतक जोर जुल्म कर बहुतोंसे लिया, अब जरूरतमन्दोंको, दीन-दुखियोंको देनेका आयोजन करो। इसीमें तुम्हारा कल्याण है। यह शाश्वत सत्य है कि धन और धरती किसीके साथ जाती नहीं। मनुष्य जैसे खाली हाथ आता है, वैसे ही ससारसे चला जाता है।

महात्माजीका कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि सिकन्दर महान विजय अभियानके लिए पूर्वकी ओर न बढ़कर वहींसे वापस लौट गया। महात्माजीके बताये हुए दिन उसकी मृत्यु हो जायेगी, इसका एक भय-सा उनके मन पर छा गया।

कहा जाता है कि आखिरी दिनोंमे उसके मनोभावोंमे परिवर्तन आ गये। वह पहले जैसा नहीं रह गया जिसकी भृकुटि मात्रसे बड़-बड़े सेनापति और राजा आतकित हो उठते थे।

इतिहास प्रसिद्ध है कि बेबीलोनने एक गाँवमें अपनी मृत्युके दिन सम्राटने सभी प्रमुख दरबारियों एव सेनानायकोंको बुलाया और उन्हें आदेश दिया कि सभी जवाहरात, आभूषण, हाथी-घोड़, रथ और मेरी निजी तलवारको मृत्युके बाद मेरे शवके पास सजा देना। ध्यान रहे, दोनों हाथ चादरसे बाहर निकले रहें ताकि लोग देख सकें कि विश्वविजेता सम्राट सिकन्दर अपना समस्त वैभव पृथ्वी पर छोड़कर खाली हाथों जा रहा है।

विश्व का सबसे धनी हावर्ड ह्यूजेस

सन् १६८० तक मान्यता थी कि फोर्ड और राकफेलर विश्व के सबसे धनी हैं। वैसे पहले पन्द्रह धनियोंमें आगा खाँ और निजाम हैदराबादका नाम भी लिया जाता था। परन्तु समय बदलता रहता है—आज निजाम हैदराबाद और आगा खाँ के उत्तराधिकारी केवल १०-१५ करोड़के आसामी रह गये हैं। उन जैसे सैकड़ों हजारों धनी विभिन्न देशोंमें बिखरे पड़े हैं।

फोर्ड और राकफेलर घराने यद्यपि पहले दस धनियोंमें हैं, जबकि पिछले बारह वर्षोंसे प्रथम स्थान मिल गया है हावर्ड ह्यूजेस को, जिसके पास लगभग १२०० करोड़ की सम्पत्ति कूँती जाती है।

हारल्ड रोबिन्सका प्रसिद्ध उपन्यास 'कारपेट बैगर्स' पढ़ रहा था। प्रकाशकोंका दावा है कि इसकी लगभग ६० लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं। मुझे भी इसका वर्णन रोचक किन्तु अजीब-सा लगा। २० प्रतियाँ खरीदकर मित्रोंको भेंट दीं। उपन्यास के नायक जोनाका करोड़पति पिता मर गया। उसकी लाश को छोड़कर वह अपनी युवती विमाता रीना (जो विवाहसे पहले उसकी प्रेयसी थी) के पास जाकर प्रेमालाप करने लगा।

रोना कहती है कि अगर तुम्हारा पिता आ जायेगा, तो उसका जवाब होता है कि पिता अब कभी नहीं आयेगा। इसी प्रकार की और भी बहुत-सी बातें इस किताबमे है जो हमारे देश की लक्ष्मण रेखासे तो दूर है ही, फ्लावरकी मैडम बोवरी और लोरेन्सकी लेडी चेटरलीज लभरसे भी कहीं ज्यादा अश्लील है। पुस्तक पढते हुए म सोच रहा था कि अगर यही अमरीकी जीवन ह तो फिर हम भले और हमारा देश भला।

जानकार मित्रोंने बताया कि उपन्यासका जोना वास्तवमे हावर्ड ह्यूजेस है, जिसकी जीवनी पर यह उपन्यास आधारित है।

इसके बाद ह्यूजेस के बारेमे अधिक जानकारी लेने की इच्छा हुई। जो कुछ सामग्री मिली, उसे जान-सुनकर ऐसा लगा कि अत्यधिक धन-सम्पत्ति अधिकाश मनुष्योको वास्तवमे ही बौरा देती है, खास करके जवानी के समय मे।

१६०५ मे ह्यूजेस का जन्म हुआ। उसका पिता एक सफल उद्योगपति था। प्रथम महायुद्ध मे उसका बारूद और हथियारोंका कारखाना था, जिसके लाभसे युद्ध समाप्तिके समय उसके पास १५-२० करोड रुपये हो गये।

उसकी मृत्यु पर २० वर्षके युवक पुत्र के हाथमे व्यापार-उद्योग आया। पहले से ही पिता-पुत्रमे मेल नहीं था, क्योकि उस छोटी उम्रमे ही जितनी आदतें बहुतसे उच्छृखल धनी युवकोंमे होती हैं, वे सब पर्याप्त मात्रामें ह्यूजेसमे थीं।

पिताके मरने पर थोड समयके लिए पुरानी आदतें छोडकर जिस दृढता और लगनसे उसने कारवार को सम्हाला और वढाया, उसे देखकर दूसरे उद्योगपतियो और उसके अपने कारखानेके कमचारियों को आश्चर्य हुआ।

शुरूसे ही वह दक्ष पाइलेट था, उसने हवाई जहाज वनानेका कारखाना खोला और उसके हवाई जहाजोंने तेज चलनेमे विश्वमे नया रिकार्ड कायम किया। उसने स्वय भी तेज उडानो के लिए राष्ट्रीय इनाम जीते, जिससे उसका चारो तरफ नाम फैल गया और उसके उद्योगा को वडे आर्डर मिलने लगे।

१९३१ मे विश्व मे, खास करके अमरीका मे वडी मदी आयी। घटे दामोंमे भी चीजो के खरीददार नहीं थे। ह्यूजेस ने हिम्मत करके जमीन, मकान, फिल्म स्टूडियो, विभिन्न उद्योगो के शेयर, वडे-वड होटल-माटल और कैवरे खरीद लिये। अगले ७ वर्षो मे यूरोपमे द्वितीय महायुद्ध की तैयारी होने लगी। उसकी खरीदी हुई वस्तुओ के दाम वहुत वढ गये और कारखानो को अनाप-सनाप आर्डर मिले। सन् १९४५ मे जव युद्ध समाप्त हुआ तव उसके पास ५००-६०० कराड रुपये हो गये। उन दिनो अमरीकामे कैपिटल नफे पर टैक्स वहुत कम थे। तेरह वर्षोंमे ३० करोड से ५०० करोड होना एक अचम्भे की सी वात है, इस सन्दभमे मुझे अपने देश की नयी दिल्लीकी वात याद आजाती है।

१९२२ मे मेरे एक जान पहचानके व्यक्तिने रेटेन्डन रोड मे १२००० गज जमीन ४,५००) रुपयेमें खरीदी। उस समय वहाँ जगल था। रातमे सियार, गीदड और अन्य वन्य पशु घूमते रहते थे।

नयी दिल्ली बढती गयी, उसी अनुपातमें जमीनोंके दाम भी ऊँचे होते गये। आज भी वह जमीन उसी व्यक्तिके पास है और उसकी कीमत है—२५०) रुपये प्रति गजके हिसाबसे लगभग तीस लाख रुपये।

अमरीका और यूरोपमे ह्यूजेसके बारे मे अनेक प्रकारकी किम्वदतियाँ फैलने लगीं। हजारों स्त्री-पुरुष विभिन्न कामोसे उससे मिलने का प्रयत्न करने लगे। उसके पाँच सचिवोंके जिम्मे तो केवल यही काम था कि उनमेसे थोड़े से लोगोको चुनकर ह्यूजेससे मिलने दिया जाय।

इतना व्यस्त रहते हुए भी उसकी एक अपनी रंगीन दुनिया थी, जिसके लिए वह बहुत जरूरी कामोको छोड़कर पर्याप्त समय निकाल लेता था। भेष बदलकर बदनाम जुआघर कैबरे और रात्रिक्लबोंमे वह प्राय ही चला जाता।

पाँच-दस की जगह सौ-दो सौ डालर की बख्शीश देता, इसलिये वहाँ की सब नर्तकियाँ उसके इर्द-गिर्द इकट्ठी रहतीं। उनमेसे दो-चार को चुनकर वह गुप्त फ्लैटमे ले जाता। इन सब स्थानों का पता केवल उसके निजी सचिवको ही रहता और वह भी बहुत जरूरी होने पर ही वहाँ फोन करता।

१९६५ में ह्यूजेस साठ वर्ष का हो गया। उस समय उसकी सम्पत्ति थी, लगभग १२०० करोड रुपये और अब वह विश्व का सबसे धनी व्यक्ति था।

निजाम हैदराबादकी तरह ह्यूजेस भी बहुत साधारण लिबासमें रहता है। एक बार सैरके लिए लन्दन गया। उसे अपनी किसी प्रेमिकाको एक हीरो का हार उपहार देना था। वहाँकी रिजेण्ट स्ट्रीट की एक प्रसिद्ध जवाहरात की दुकान मे चला गया। साथमें उसका निजी सचिव था। वेश-भूषा देखकर उन्होंने पचास-साठ हजारके कई हार दिखाये। उसने कहा मुझे कीमती हार चाहिए, दो-चार लाखके दिखाये गये। ह्यूजेस ने कुछ रोषसे कहा कि मैंने सुना था कि आपकी दूकान मे बेहतरीन गहने रहते है, फिर यह सब सस्ती चीजें दिखाकर मेरा और अपना समय क्यों नष्ट कर रहे है।

अगर भारतीय जौहरी होते तो समय को व्यर्थ बरबादी समझकर उसे टरका देते, परन्तु यूरोपके दुकानदार बहुत शालीन और सभ्य होते है। उन्होंने एक पन्द्रह लाखका हार दिखाया। हार खरीदकर उसने अपने सचिवसे चेक देनेको कहा। जब दुकानवालोंको पता चला कि अरबपति हावर्ड ह्यूजेस उनकी दुकानमे खड़ा है, तो फिर लगे खातिरदारी करने और दूसरी कीमती चीजें दिखाने।

१९६६ मे वह इकसठ वर्ष का था। परन्तु ऐय्याशी, अबाध भोग-विलास और नाना प्रकारके व्यापारिक झंझटोंके

कारण उसका शरीर थक गया। याददाश्त भी कम हो गयी। लोगो मे चर्चा होने लगी कि वह विक्षिप्त होता जा रहा है। आखिर उसने मौज-शोक और व्यस्त जीवनसे ऊबकर अवकाश लेने का तय किया।

न्यूयार्क, लासएंजल्स और हालीवुड महलोको छोडकर लासवेगास मे रहने का तय किया।

तीस वर्ष पहले टी० डब्लू० ए० (प्रसिद्ध हवाई जहाज कम्पनी) के ६६ लाख शेयर लगभग ७५ करोड मे खरीदे थे। वे ४८५ करोड मे बेच दिये।

लासवेगासमे कुछ दिनो तक तो वह ठीक से रहा, परन्तु फिर पुराने सस्कार उभरने लगे और १६७० तक के ४ वर्षोंमे वहाँ पर बहुतसे जुआघर, कैबरे, रात्रि क्लब और होटल-मोटल खरीद लिये, जिनकी कीमत थी १५० करोड। अपने रहनेके लिये एक बहुत बडे होटलका पुननिर्माण कराया, जिसके चारो तरफ काँटेदार बिजलीके तार है, रात दिन कडा पहरा रहता है। एक प्रकार से उसे भव्य और सुन्दर जेलखाना ही कहना चाहिये।

मनमे कुछ इस प्रकारका भय-सा समा गया है कि बाहर नहीं निकलता। उसके विशेष सचिव और कुछ प्रेमिकाएँ भी फोन पर ही बात कर लेती है। केवल निजी डाक्टर जाँच और चिकित्साके लिए मिल पाते है।

कभी-कभी विना किसी को सूचना दिये दसरे स्थानो पर छुट्टी मनाने चला जाता है। उसके अपने दो तेज चलने वाले जेट हवाइ जहाज है। यात्रा के समय दोनो साथ रहते है।

दिसम्वर १६७१ मे विल्फोड इरविंग नामके लेखकने प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशक मेग्रिव हिलसे उसकी आत्मकथा प्रकाशनके लिए एक वडी रकम अग्रिमले ली। उसका दावा था कि यह ह्यूजेसने स्वय टेप रिकार्टिग करायी है। देश-विदेशमे प्रचार हो गया कि ह्यूजेसकी आत्मकथा प्रकाशित हो रही ह। जब उसके वकीलोका पता चला तो पुस्तकके प्रकाशन पर राक लगा दी गयी। इरविंग पर धोखाधडी का मुकद्दमा प्रकाशकोने चलाया है।

वैभव, विलास और अन्त

पिछले एक लेखमें मैंने विश्वके सबसे धनी हावर्ड ह्यूजेसके बारेमें लिखा था। उसके पास १२०० करोड़की सम्पत्ति है। आय है लगभग पचीस लाख प्रतिदिन यानी १७००) रुपये प्रति मिनट। इन सबके बावजूद ह्यूजेस अध विक्षिप्त सा, लासवे-गासके एक एकान्त महलमें रहता है।

वास्तवमें, इतनी बड़ी सम्पत्ति और आय आश्चर्यकी सी बात लगती है। पिछले दिनों मुगल साम्राज्यके उत्थान और पतन पर कुछ पढ़ते हुए मुझे बादशाह शाहजहाँकी धन-दौलतका जो ब्यौरा मिला उसकी तुलनामें ह्यूजेस, मैलन, राकफेलर, फोर्ड और ओनासिस बहुत ही गरीब दिखायी देंगे।

अकबरके समयसे ही मुगलिया खजानेमें जवाहरात और सोना जमा होना शुरू हो गया था, जो एक सौ वर्षोंमें शाह-जहाँके शासन तक बढ़ता ही गया। इसके बाद १६५८ से १७०७ तक ४६ वर्षोंके औरगजेबी शासनकालमें यह सब अथाह धन-दौलत समाप्तप्राय हो गयी। सिक्खों, राजपूतों, मरहठों और दक्षिणके सुलतानोंसे लड़नेके लिए औरगजेबकी फौजमें सवार और पैदल मिलाकर लगभग सात लाख सिपाही थे, जो काबुल-कन्धारसे लेकर दक्षिणमें कर्नाटक तक फैले हुए थे। यह

स्वय १६८१ से १७०७ तकके २६ वर्षोंमे अधिकाशत दक्षिणकी लडाइयामे उलझा रहा इसलिए केन्द्रीय शासन खोखला होता गया और आयमे कमी होने लगी।

शाहजहाँका शासनकाल सन १६२७ से १६५८ तक रहा। इन ३१ वर्षोंमे न तो देशमे कोई बडा अकाल पडा और न उल्लेखनीय युद्ध ही हुए। हाँ, दो हजार स्त्रियोंके शाही हरम, शाहजादे और शाहजादियोंकी मौज शौक और ऐय्याशियो पर बहुत बडा खर्च होता था। बादशाहकी अपनी बेगमोंके सिवाय सैकडों रखैलें और माशूकाएँ थीं। अमीर खलीलुल्ला खाँकी बेगम इनमे प्रधान थी, उसकी जूतियोंमे २० लाखके हीरे पन्ने जडे थे। फिर भी शाहजहाँके जमानेमे आय इतनी अधिक थी, जिस कारण प्रतिवर्ष करोडो रुपये खजानेमे बढते चले गये।

शाही खजानोंके सिवाय वलीअहद दाराशिकोह, शाहजादी जहाँनआरा तथा अन्य बेगमो और शाहजादोके अपने खजाने भी थे। बादशाहके जरीरा और भौरा नामके दो निजी खजाने थे, जिनकी लम्बाई-चौडाई ७०×३० फीट गहरायी १० फीट थी। इनमेंसे एकमे हीरे, पन्ने, मोती, माणिक आदि जवाहरात भरे रहते थे और दूसरेमे सोना-चाँदी। जब ये खाने खजाने भर गये तो खजाचीने अर्जकी कि एक दूसरा बडा हौज और बनाना होगा एक दिन दक्षिणका सूबेदार मीर जुमला बादशाहके हुजूरमे आया। उसने अडेके बराबर एक बेशकीमती

हीरा भेंट किया, जिसकी चमकसे दीवाने खास जगमगा उठा। उस समय तक गोलकुण्डाकी हीरोकी खानें विश्वमे सबसे बडी थीं।

बादशाह बड़ी देर तक हाथमे लेकर हीरा देखता रहा। भेंट मजूर करते हुए कहा, मीरजुमला मा बदौलत तुमसे बहुत खुश हैं। इस बेहतरीन हीरेका नाम हम कोहेनूर रखते है।

अपने लन्दन प्रवासमे मने देखा कि वही कोहेनूर निटेनके बादशाहके ताजमे जडा हुआ टावर आफ लन्दनके सग्रहालयमे रखा हुआ है। म जब भी लन्दन पहुँचता, इस हीरेको अवश्य देखता। मनमे दु ख होना स्वाभाविक ही था। भारतीय इतिहासकी अनेक बातें उभर कर मानस पर छा गयीं।

शाहजहाँने तख्तेताऊस नामका सोनेका सिंहासन बनवाया। इसकी लम्बाई चौडाई १०×७ फीट थी और ऊँचाई १५ फीट। यह ठोस सोनेका था जिसमे बेशकीमती जवाहरात लगे हुए थ, और इसको बनानेमे सैकडो कारीगरोको ८ वर्ष लगे थे। उस सस्तीके जमानेमे इस पर सात करोड रुपये लगे, जो आजकी क्रयशक्तिके हिसाबसे तीन-चार सौ करोडके लगभग होगा। फारसके शाहने बादशाह जहाँगीरको एक अलभ्य मणि भेंटकी थी। वह भी इस सिंहासनमे जडी हुई थी। आज केवल उस मणिकी कीमतही कई करोड रुपये होगी। पता नहीं, अब वह किसी दूर देशमे है अथवा नादिरशाह या

अहमदशाह अब्दालीके वशजने उसको छिपा रखा है या फिर जमींदोज होकर पृथ्वीकी गोदमें सो रही है।

इस सदर्भमें मुझे टर्कीमें इस्ताम्बूलके म्यूजियममें भूतपूर्व सुलतानोंके खजानेके दो पन्नोंकी याद आ जाती है। एकका वजन था १५०० और दूसरेका ८०० ग्राम। मैंने कल्पना भी नहींकी थी कि इतने बडे पन्ने हो सकते है। क्यूरेटरसे कीमतके बारेमें पूछा तो उत्तर मिला कि दाम देकर विश्वका बडसे बडा धनी भी शायद ही इन्हें खरीद सके। जिस प्रकार आपके कोहेनूरका इतिहास रहा है, उसी ढगका इन पन्नोंका है।

हमारे देशमें रोम और ग्रीसकी तरह इतिहास लिखनेकी प्रथा नहीं थी इसलिए वाल्मीकि, पाणिनी और कालिदास जैसे विशिष्ट विद्वानोंके समयको लेकर केवल मन गढत अन्दाज लगाते है परन्तु मुगल बादशाहोंमें अपना रोजनामचा लिखनेकी आदत थी। उनके यहाँ अरब-फारसके सिवाय फ्रान्स और ब्रिटेनके विद्वान भी रहते थे, इसलिए उस समयके प्रामाणिक तथ्य और अक उपलब्ध है।

सन १६५८ मे बादशाह शाहजहाँके पास, जब वह औरगजेब द्वारा कैद कर लिया गया था, निम्नलिखित सपत्ति थी। छोटे बड तराशे और बिना तराशे हीरे ५० लाख, मानिक ६० लाख, पन्ना ६० लाख, और मोती ३६० लाख रत्ती थे। कुल मिलाकर सारा वजन ५३० करोड रत्ती होता है। आज इन सबकी

हीरा भेंट किया, जिसकी चमकसे दीवाने खास जगमगा उठा। उस समय तक गोलकुण्डाकी हीरोकी खानें विश्वमे सबसे बडी थीं।

बादशाह बडी देर तक हाथमे लेकर हीरा देखता रहा। भेंट मजूर करते हुए कहा, मीरजुमला मा बदौलत तुमसे बहुत खुश हैं। इस बेहतरीन हीरेका नाम हम कोहेनूर रखते है।

अपने लन्दन प्रवासमे मैंने देखा कि वही कोहेनूर ब्रिटेनके बादशाहके ताजमे जडा हुआ टावर आफ लन्दनके सग्रहालयमे रखा हुआ है। मै जब भी लन्दन पहुँचता, इस हीरेको अवश्य देखता। मनमे दु ख होना स्वाभाविक ही था। भारतीय इतिहासकी अनेक बातें उभर कर मानस पर छा गयीं।

शाहजहाने तख्तेताऊस नामका सोनेका सिंहासन बनवाया। इसकी लम्बाई चौडाई १०×७ फीट थी और ऊँचाई १५ फीट। यह ठोस सोनेका था जिसमे बेशकीमती जवाहरात लगे हुए थे, और इसको बनानेमे सैकडो कारीगरोको ८ वर्ष लग थे। उस सस्तीके जमानेमे इस पर सात करोड रुपये लगे, जो आजकी क्रयशक्तिके हिसाबसे तीन-चार सौ करोडके लगभग होगा। फारसके शाहने बादशाह जहाँगीरको एक अलभ्य मणि भेंटकी थी। वह भी इस सिंहासनमे जडी हुई थी। आज केवल उस मणिकी कीमतही कई करोड रुपये होगी। पता नहीं, अब वह किसी दूर देशमे है अथवा नादिरशाह या

अहमदशाह अब्दालीके वंशजने उसको छिपा रखा है या फिर जमींदोज होकर पृथ्वीकी गोदमें सो रही है।

इस संदर्भमें मुझे टर्कीमें इस्ताम्बूलके म्यूजियममें भूतपूर्व सुलतानोंके खजानेके दो पन्नोंकी याद आ जाती है। एकका वजन था १५०० और दूसरेका ६०० ग्राम। मैंने कल्पना भी नहींकी थी कि इतने बड़े पन्ने हो सकते हैं। क्यूरेटरसे कीमतके बारेमें पूछा तो उत्तर मिला कि दाम देकर विश्वका बड़से बड़ा धनी भी शायद ही इन्हें खरीद सके। जिस प्रकार आपके कोहेनूरका इतिहास रहा है, उसी ढंगका इन पन्नोंका है।

हमारे देशमें रोम और ग्रीसकी तरह इतिहास लिखनेकी प्रथा नहीं थी इसलिए वाल्मीकि, पाणिनी और कालिदास जैसे विशिष्ट विद्वानोंके समयको लेकर केवल मन गढ़त अन्दाज लगाते हैं परन्तु मुगल बादशाहोंमें अपना रोजनामचा लिखनेकी आदत थी। उनके यहाँ अरब-फारसके सिवाय फ्रान्स और ब्रिटेनके विद्वान भी रहते थे, इसलिए उस समयके प्रामाणिक तथ्य और अंक उपलब्ध हैं।

सन १६५८ में बादशाह शाहजहाँके पास, जब वह औरंगजेब द्वारा कैद कर लिया गया था, निम्नलिखित संपत्ति थी। छोटे बड़े तराशे और बिना तराशे हीरे ५० लाख, मानिक ६० लाख, पन्ना ६० लाख, और मोती ३६० लाख रत्ती थे। कुल मिला-कर सारा वजन ५३० करोड़ रत्ती होता है। आज इन सबकी

कीमत जोड़नेके लिए शायद कम्प्यूटरकी दरकार पड़े। हजारों तलवारें, कटार और दूसरे हथियार थे, जिनकी मूठोंमें बेशकीमती हीरे-जवाहरात जड़ हुए थे। तख्तेताऊसके सिवाय बादशाह और शाहजादोंके लिए ठोस सोनेके नौ सिंहासन और थे। सैंकड़ों सोने-चाँदीकी कुर्सियाँ थीं। जिस सोनेके हौजमें बादशाह गुसल करता था, वह ७×५ फीट लम्बा चौड़ा था। इसमें बेशकीमती हीरे-पन्ने माणिक जड़ हुए थे। आज इसकी कीमत भी ५०-६० करोड़के लगभग होगी।

इन सबके सिवाय सात सौ मन सोनेके बरतन थे, जो आजके हिसाबसे लगभग ६० करोड़के होते हैं। ये सब बातें भूल भुलैयाकी सी लगती है पर हैं सब ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित।

१६५८ की १० जूनको आगरा गरमीसे लोहेके उबलते लावाकी तरह तप रहा था। औरंगजेबका बड़ा बेटा महमूद सुल्तान पाँच हजार चुने हुए सिपाही लेकर लालकिलेमें गया। वहाँके सब पहरेदारोंको मौतके घाट उतार दिया और ६८ वर्षके बुजुर्ग दादा शाहजहाँको कैद कर लिया।

जिसकी टेढ़ी भृकुटीसे चारों शाहजादे और उनके पुत्र काँपते थे, जिस महमूद सुल्तानको शाहजहाँने गोदीमें खिलाया था, उसी १८ वर्षके नौजवान शाहजादेके सामने आज वह बिलख- बिलख कर रो रहा था।

कीमत जोड़नेके लिए शायद कम्प्यूटरकी दरकार पड़े। हजारों तलवारें, कटारें और दूसरे हथियार थे, जिनकी मूठोंमें बेशकीमती हीरे जवाहरात जड़े हुए थे। तख्तेताऊसके सिवाय बादशाह और शाहजादोंके लिए ठोस सोनेके नौ सिंहासन और थे। सैकड़ों सोने-चाँदीकी कुर्सियाँ थीं। जिस सोनेके हौजमें बादशाह गुसल करता था, वह ७×५ फीट लम्बा चौड़ा था। इसमें बेशकीमती हीरे-पन्ने माणिक जड़े हुए थे। आज इसकी कीमत भी ५०-६० करोड़के लगभग होगी।

इन सबके सिवाय सात सौ मन सोनेके बरतन थे, जो आजके हिसाबसे लगभग ६० करोड़के होते हैं। ये सब बातें भूल भुलैयासी सी लगती है पर है सब ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित।

१६५८ की १० जूनको आगरा गरमीसे लाहेसे उबलते लावाकी तरह तप रहा था। औरंगजेबका बड़ा बेटा महमूद सुलतान पाँच हजार चुने हुए सिपाही लेकर लालकिलेमें गया। वहाँके सब पहरेदारोंको मौतके घाट उतार दिया और ६८ वर्षके बुजुर्ग बादशाह शाहजहाँको कैद कर लिया।

जिसकी टेढ़ी भृकुटीसे सारे शाहजादे और स्वयं पुत्र काँपते थे, जिस महमूद सुलतानको शाहजहाँने गोदीमें खिलाया था, वही १८ वर्षका नौजवान शाहजादा सामने आकर यह खिलखिल खिलखिल कर गा रहा था।

सती मस्तानी

बुन्देलखण्ड पर मुगलो की आँखें लगी थीं। कइ बार चढाइ की परन्तु बहादुर बुन्देलों ने उन्हें पीछे ढकेल दिया। अन्त मे मुहम्मद खाँ बगश के सेनापतित्व मे फौज भेजी गयी। वह बडा दुर्धर्ष और कट्टर मुसलमान था। प्रत्येक बार जब महाराज छत्रसाल के राज्य पर चढ आता तो मन्दिरों को तोड मस्जिद बनवाता और हिन्दुओ पर नाना प्रकार के अत्याचार करता। महाराज उसके आक्रमण को विफल कर देते और फिर से मस्जिदो का तुडवा कर मन्दिर बना देते। पराजय और अपमान की ज्वाला से वह भुन उठा। बादशाह भी अधीर हो उठा।

जबरदस्त हमले के लिए पूरी योजना बनी। सन् १७२६ मे बहुत बडी फौज लेकर मुहम्मद खाँ छत्रसाल की राजधानी पन्ना तक बढ आया।

विशाल मुगल साम्राज्य की बडी सेना के मुकाबले शुरू से ही अस्त्र-शस्त्र और साधन बुन्दलो के पास कम थे। सख्या की दृष्टि से भी वे बहुत थोडे थे। उनका सम्बल था शौर्य, साहस और देशप्रेम। बार-बार के आक्रमण ने छत्रसाल की सेना को जर्जरित कर दिया। महाराज की अवस्था ७० वर्ष

अर्थाअनर्थं भावयनित्यं नास्तिततः सुखलेशः सत्यम्
पुत्रादपि धनभाजां सर्वत्रैषा विहिता नीतिः ॥

अर्थ ही अनर्थ है। सत्य है कि उसमें सुख लेश मात्र भी नहीं है। अधिक धन होने पर पुत्रोंसे भी भय बना रहता है। यही नीति सर्वत्र लागू है।

की थी। पहले का सा बल भी शरीर में नहीं रहा। सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह था कि इस बार के आक्रमण में बहुत से हिन्दू राजाओं और जागीरदारों ने मुसलमानों का साथ दिया।

महाराज ने देखा कि अन्तिम दिनों में शायद तुर्कों का दास होकर रहना पड़ेगा। बुन्देलखण्ड पर उनके ही जीवनकाल में धार्मिक स्थान के स्थान पर मुसलमानी दल निशान फहराने की आशंका से वे बेचैन हो उठे। पूना के श्रीमन्त पेशवा बाजीराव की वीरता और साहस की गाथाएं उन्होंने सुन रखी थीं। छत्रसाल ने उन्हें एक दोहा लिखकर भेजा—

'जा गति भई गजेन्द्र की सो गति पहुँची आज
बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी लाज।

पत्र मिलते ही पेशवा ने निर्णय ले लिया। लम्बी यात्रा थी फिर भी दक्षिण से अपनी अजेय मराठा सेना लेकर बीस दिन में ही आरछा पहुंच गये। मराठे और बुन्देलों ने मिल कर घेरा डाले हुए मुगलों पर आक्रमण करना शुरू कर दिया।

मराठे और बुन्देलों ने शत्रुओं पर निर्णायक विजय पायी। अपार युद्ध सामग्री छोड़ वे भाग खड़े हुए। मोहम्मद खाँ बंगश दूर के एक किले में जा छिपा और रात के अंधेरे में बुर्का ओढ़ कर भाग निकला।

एक रात बाजीराव को नींद नहीं आ रही थी। करवटें बदलते आधी रात हो गयी। उनका ध्यान बरबस अपनी माता, पत्नी और पूना की ओर चला जाता। परेशान होकर

छज्जे पर चले आये। ठण्डी हवा मे कुछ शान्ति मिली। सहसा एक मधुर रागिनी सुनाई पडी। स्वरो के उतार-चढाव और तान ने उन्हें मत्रमुग्ध कर दिया। खिंचे हुए उसी ओर बिना अगरक्षक के ही बढते गये।

राजप्रसाद की निजन वीथियो को पार कर वे एक जगह पहुँच गये। देखा, तन्मय होकर एक किशोरी सगीत साधना कर रही थी। जितना सुरीला कठ उतना ही सुन्दर रूप था। गीत की समाप्ति पर उसने वीणा एक ओर रख दी। एकाएक उसकी दृष्टि बाजीराव पर पडी—केवल इतना ही कह सकी "श्रीमन्त"।

दोनों की आँखें एक दूसरे मे खो गयीं। बाजीराव शौर्य के साथ बुद्धि, सुन्दरता और गुणग्राहकता के लिए सुविख्यात थे। कुछ क्षणों के लिए दोनों ही निर्वाक रह गये। उन्होंने धीरे से आगे बढकर अपना बहुमूल्य कठहार किशोरी के गले मे डाल दिया। लाजभरी झुकी पलको को लिए सपने की तरह वह ओझल हो गयी।

महाराज छत्रसाल ने विजयोत्सव दरबार किया। श्रीमन्त बाजीराव पेशवा को तृतीय युवराज के पद दिये जाने की घोषणा की एव राज्य के तृतीयाश का अधिकारी बनाया। सोने के थालो मे हीरे-मोती और जवाहरात की भेंट देते हुए उनका अभिषेक सम्पन्न हुआ। ज्येष्ठ युवराज से पाग, पेंच और तलवार बदली गयी।

विदा से कुछ दिनों पहले अपने निजी कक्ष में पेशवा के साथ बैठे वार्तालाप करते हुए महाराज ने कहा—तुमने समय पर पहुँच कर इस बुढ़ापे में मेरी और हिन्दू धर्म की लाज रख ली। एक बात और रखनी होगी।

इतना कहकर उन्होंने प्रहरी को स्मरण किया। कुछ ही क्षणों में एक रूपवती किशोरी ने कक्ष में प्रवेश किया। पेशवा चकित रह गये। उसी रात सपने में आकर हो जाने वाली वही रूपसी।

छत्रसाल ने भरी हुई आवाज में कहा—मैंने इसे पिता का सा प्यार किया है कहने को यह मुसलमान है किन्तु आचार-विचार और संस्कार में किसी भी हिन्दू से कम नहीं।

चितपावन ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के कारण पेशवा आचारवान और धर्मनिष्ठ थे। माता राधा बाई भी कट्टर धार्मिक थीं। उलझन में पड़े थे कि उनकी दृष्टि किशोरी पर पड़ गयी। छलछलाती आँखें और काँपते ओठ न जाने क्या कह गये।

महाराज ने बाजीराव का हाथ पकड़ लिया, कहने लगे—तुम सा कोई पात्र इस रत्न के लिए मिलेगा नहीं। अब मैं अधिक दिनों तक नहीं बचूँगा, यदि इसे कोई कष्ट हुआ तो मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी।

पशोपेश मे पडे पेशवा को छत्रसाल के अन्तिम शब्दों ने मानो जगा दिया। उन्होंने स्वीकृति दे दी।

महाराज ने राजसी धूमधाम एव हिन्दू रीति से मस्तानी का कन्यादान किया और उसे भारी दहेज के साथ विदा किया। मराठा फौज मे बाजीराव पेशवा का बडा अनुशासन और आदर था। किन्तु उन दिनो इस प्रकार के सबध उच्च कुल के ब्राह्मणो के लिए वर्जित थे। मराठा सरदारो मे काना-फूसी होने लगी। पेशवा के पहुचने के पहले ही पूना मे बातें नठ चढकर फैलीं।

राजधानी प्रवेश के समय पेशवा के आगमन पर न तो तोरण सजे और न अगवानी के लिए कोई आया। महल मे टोली के प्रवेश का आदेश भी नहीं मिला। श्रीमन्त समझ गये कि माता अत्यन्त रुष्ट है। भविष्य का आभास उन्हें हो गया। वे चरण स्पर्श के लिए गये परन्तु माता ने अपने पैर एक ओर हटाते हुए तीखे स्वर मे कहा—मराठो का श्रीमन्त पेशवा हिन्दू पद पादशाही का जहाँ गौरव बढाकर आया है, वहीं एक मुस्लिम नर्तकी को वधू बनाकर उसने कुल को कलकित किया है। इससे तो अच्छा था बाजी, तू मेरी कोख मे आता ही नहीं है। मुझे यह पाप तो वहन नहीं करना पडता।

बाजीराव चुपचाप भूमि पर मस्तक टेक वापस आ गये। पत्नी काशीबाई पति परायणा थीं। उस समय तक एका-

धिक पत्नी अथवा रक्षिता की प्रथा भी मराठों मे चल पडी थी, किन्तु विधर्मी स्त्री से सबध हेय माना जाता था। फिर भी उसने छोटी बहिन की तरह मस्तानी को अपने महल मे रखा।

इधर माता की प्रेरणा से पडितो की सभा बैठी। उन्होने निर्णय दिया कि तुर्कनी को पेशवा महल मे प्रवेश का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। विवश होकर बाजीराव ने शहर के बाहर शनिवार बाडा नाम का एक छोटा सा महल बनवा दिया। मस्तानी वहाँ शुद्ध हिन्दू आचार विचार से रहने लगी। अध्ययन एव भजन पूजन मे समय बिताती। बाजीराव के दुखी होने पर केवल एक ही उत्तर देती प्रेम सुख का मुखापेक्षी नहीं, वह स्वय मे आनन्द की अनुभूति है। आप सुखी रहे, इसी मे मेरे जीवन की सार्थकता है।

यद्यपि बाजीराव ने मराठों की शक्ति और कीर्ति बहुत बढ़ा दी किंतु उनका व्यक्तिगत जीवन उदासी से भरा था। वे पारिवारिक और धार्मिक अनुष्ठानों मे सम्मिलित नहा हो पाते। यहाँ तक कि भाई भतीजे के विवाह और उपनयन सस्कार म भी उनका प्रवेश वर्जित था। राजकाज, युद्ध और सरदारो के पारस्परिक विग्रह मे ऊबकर मस्तानी के पास जब कभी जाते तो उन्हें सांत्वना मिलती बच्चों की तरह कहते, सभी चाहते हैं, मैं श्रीमन्त पेशवा रहू पर कोई कभी यह नहीं सोचता कि मुझे बाजीराव रहने का भी अधिकार है। हँसकर मस्तानी कहती-क्यों, मैं तो हू ?

कठिन से कठिन परिस्थिति मे मस्तानी उनके साथ रहती। कई युद्ध स्थलो मे भी वह पेशवा के साथ गई। बाजीराव को उसके स्नेहिल व्यवहार से बडी शान्ति मिलती। अगले दस वर्षों मे उन्होने बहुत से विजय-अभियान किये। नये-नये राज्यो पर मराठो के गैरिक ध्वज फहराने लगे। कभी-कभी परिहास मे वे मस्तानी से कहते—बाजीराव ने बडी बडी बाजियाँ जीतीं, पर अपनी बाजी हार गयी।

वर्षों के कठिन परिश्रम और पारिवारिक क्लेश ने पेशवा के स्वास्थ्य पर असर दिखाना शुरू कर दिया। नर्मदा के तट पर रावल नामक गाँव मे भग्न हृदय बाजीराव बीमार थे। मराठा गौरव की दीपशिखा धीरे धीरे मलिन होती जा रही थी। काशीबाई, राजवैद्य, सामन्त और सचिव पास बैठे थे। श्रीमन्त कुछ कहना चाहते थे। अवरुद्ध कठ से अस्फुट स्वर निकले—मस्तानी ।

मस्तानी को खबर मिल चुकी थी किन्तु प्रियतम के अन्तिम दर्शन के लिए उसके अनुनय-विनय को ठुकरा दिया गया। वह पूना के पास के किसी किले मे राधाबाई की कैद मे थी। उसने सती होने की अनुमति माँगी वह भी नहीं मिली। चालीस वर्ष की अल्पायु मे पेशवा का देहान्त हो गया। पुराने वैर-भाव भूलकर पूना की सारी जनता के साथ कुटुम्बी, सरदार, सचिव और सामन्त शवयात्रा मे सम्मिलित हुए। सभी रो रहे थे। अनोखी सूझ-बूझ का योग्यतम नेता और योद्धा अब न रहा।

सुसज्जित चंदन की चिता पर शव लिटाया गया। मंत्रोच्चार के साथ अग्नि प्रज्वलित कर दी गयी। अपार जनसमूह देख रहा था कितनी निर्ममता से सुन्दर देह को भस्म करने के लिए आग बढ़ती जा रही है।

उस भीड़ के बीच से मुख पर अवगुंठन डाले शृंगार और आभूषणों से सजी एक युवती चिता की ओर सम्हलते कदम से बढ़ती गयी। स्वर्णथाल में कपूर, अबीर कुंकुम और पुष्प थे। यह सोचकर कि शायद श्रीमन्त को अंतिम श्रद्धांजलि देना चाहती है लोगों ने हटकर मार्ग दे दिया। पास पहुंचते ही वह चिता में कूद गयी। ब्राह्मण, सरदार, सामन्त 'रोको' 'रोको' कहते ही रह गये। तेज हवा में आग की लपटों ने खुद ही घेरा डाल दिया।

लोगों ने देखा, मस्तानी के चेहरे पर एक अपूर्व तेज था और बाजीराव का सर उसकी गोद में था।

स्नेह सूत्र

बात शायद बीसवीं शताब्दी के शुरू की ह। राजस्थान के किसी कस्बे मे राधेश्याम और रामस्वरूप दो सगे भाई थे। सम्पन्न परिवार था। व्यापार और धन-दौलत के अतिरिक्त दो-तीन गावा की जमींदारी थी। जमींदारी और व्यापार के सब काम का छोटा भाई राधेश्याम सभालता था। बड भाई के जिम्मे गाँवकी पच-पचायती, अपने धमादा खातेका काम आर परिवार वाला तथा पडोसियों की विभिन्न समस्याओं का समाधान करना था। दोनो भाइयों के प्रेम का देख कर लोग उन्हे राम-लक्ष्मण की जोडी बताते थे। उन दोनो के बीच मे रामस्वरूप के केवल एक ३ वप का लडका था। बच्चा अधिकतर अपनी चाची के ही पास रहता था। रात मे भी उसी के साथ सोता था। कभी कदास उसकी माँ ले लेती ता जोर-जोर से रोने लग जाता। वह हस कर कहती, 'छोटी वहू, तुमने किशन पर टोना कर दिया ='।

वास्तव मे, वह टोना का युग था। राधेश्याम की पत्नी सन्तान प्राप्ति के लिए नाना प्रकार के जप-तप, दवी-देवताओ की पूजा आदि करती थी।

एक बार बालक किशन बीमार पडा। लगातार ज्वर रहने से बहुत दुबला हो गया। वैद्य-डाक्टरो के अनेक उपचारो के

बावजूद बीमारी बढ़ती गयी। पड़ोस की एक महिला ने बड़ी बहू के मन में विश्वास जमा दिया कि तुम्हारी देवरानी बाँझ है इसलिये उसने बच्चे पर टोना कर दिया है। वैसे, वह देवरानी को बहुत प्यार करती थी। दोनों की आयु में पर्याप्त अन्तर था। वही अपनी पसन्द से उसे घर की बहू बना कर लायी थी। परन्तु दुर्भाग्य से उस दिन इस अनहोनी बात का उसने सच मान लिया।

पत्नी की बात में आकर रामस्वरूप ने दूसरे दिन छोटे भाई को बुला कर बहुत बुरा-भला कहा। क्रोध में मनुष्य की मति मारी जाती है। उसने यहाँ तक कह दिया कि तुम पति-पत्नी चाहते हो कि बच्चा न रहे तो सारी सम्पत्ति तुम्हें मिल जाये।

राधेश्याम बड़े भाई को पिता-तुल्य मानता था। कभी उसके सामने सिर उठा कर बात भी नहीं की थी। इस प्रकार अप्रत्याशित रूप से ऐसा लांछन सुन सुबक-सुबक कर रोने लगा। कहने लगा कि भैय्या जी, इतना बड़ा कलंक लेकर अब हम किस मुँह से यहाँ रह सकेंगे? थोड़ी देर बाद स्वस्थ होकर बड़े भाई के पैरों में गिर कर कहा कि हम आज ही नगर छोड़ कर गाँव के घर में चले जायेंगे। मुन्ना जितना आपको प्यारा है, उससे कम हम लोगों को नहीं। उसकी चाची तो उसके बिना एक घड़ी भी नहीं रह सकती। हमारे भाग्य फूट गये कि आपके प्रति मन में इस प्रकार के विचार आये। आपके चरणों की

सौगन्ध खा कर कहता हूँ कि आगे हम कभी इस घर की देहली पर नहीं पायेंगे।

अपना जन्मस्थान सभी को प्यारा होता है। अगर चाहता तो राधेश्याम घर का आधा हिस्सा लेकर वहीं रह सकता था, परन्तु उसको किसी प्रकार भी यह स्वीकार नहीं था कि उसके कारण से परिवार का अनिष्ट हो। विदा के समय पति-पत्नी ने दोनों भाभी-भैय्या के पैर छुए बहुत मन होने पर भी कमरे मे जाकर बीमार बच्चे के सिर पर हाथ नहीं फेर सके।

उनके जाने के बाद बड़ाभाई रामस्वरूप गुमसुम सा रहने लगा। कुछ इस प्रकार का मानसिक कष्ट हुआ कि उसने खाट पकड़ ली। थोड़ दिनों बाद बच्चा भला-चगा हो गया परन्तु बाप दिन पर दिन सूखने लगा। उसको लगातार खाँसी और ज्वर रहने लगा। उस समय तक क्षय रोग का निदान नहीं था।

पत्नी से बीमारी का कारण छिपा नहीं था परन्तु सकोच-वश गाँव जाकर देवर-देवरानी को मना कर लाने का साहस नहीं हुआ। उधर, आरम्भ मे तो राधेश्याम लोगों द्वारा बड़े भाई की बीमारी के समाचार मगवाता रहा परन्तु जब नहीं रहा गया तो गाँव से आकर हवेली के बाहर बैठ जाता और वैद्य-डाक्टरों से पूछ-ताछ कर चिकित्सा की व्यवस्था करता रहता। सौगन्ध खाई हुई थी, इसलिए बहुत इच्छा होते हुए भी घर मे जाकर अन्तिम घड़ी मे भी भाई की ` ।

सका। चलेवे (मृतक के क्रियाकर्म) के सारे कामों के लिए पति-पत्नी पास के एक घर में आकर ठहर गए। बारह गाँवों के गरीबोंका भोजन कराया गया। काशीसे पण्डितोंको श्राद्ध-कर्म के लिये बुलाया। इतना बडा आयोजन आज तक इस करने में कभी नहीं हुआ था। तेरहवें दिन पूरी बिरादरी का न्योता गया और चौदहवें दिन वे पुन अपने गाव चले गये।

समय बीतता गया किशन का बडी धूम धाम से विवाह हुआ। उसकी माँ बीमार रहने लगी थी। इसलिये चाचा-चाची ने दिन-रात परिश्रम करके सारे नेगचार बडी अच्छी तरह से निपटाये।

राजस्थानमे नई बहूसे पर छुआई और उसकी मुह दिखाई का नेगचार होता है। परिवार के और पास-पडोस के लोग उसके घर आकर कुछ न कुछ भट देते है।

जब वह पडोस के घर मे चाची जी के पर छूने गयी तो उन्होंने सन्दूक मे से एक डिब्बा निकाला और अपना सारा गहना जो उन्हें विवाह के समय मिला था-बहू को पहना दिया। कहा कि इस शुभ दिन के लिये मैंने भगवान से न जाने कितनी मनौतियाँ मानी और कितने व्रत उपवास किये। उन्होने मेरी लाज रख ली मेरा कलक मिट गया। पितरो के आशीवाद से मेरा किशन फले-फूले और तुम सदा सुहागिन रहो। दूधो नहाओ और पूतो फलो। इसके बाद उसका गला भर आया। शुभ घडी मे आँसुओ से कहीं अमगल न हो जाये इसलिये शीघ्र ही भीतर के कमरे मे चली गयी।

पिता का कर्ज़

राजस्थान में चूरू एक पुराना कस्बा है। आज से सवा सौ, डेढ़ सौ वर्ष पहले यहाँ एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार रहता था जिसका मालवा में बड़े पैमाने पर व्यापार था। जब अफीम को लेकर ब्रिटेन और चीन का युद्ध हुआ तो इनका घाटा लग गया, काम बन्द हो गया और देनदारी रह गयी।

इसके बाद परिवार के स्वामी सेठ उजागरमल को घर से बाहर निकलते नहीं देखा गया। कभी-कदास कोई आदमी उनसे मिलने भी गया तो उनका चेहरा नहीं देख पाया क्योंकि वे अपना मुंह चद्दर से ढके रहते थे। इसी शोक से उनका छोटी उम्र में ही देहान्त हो गया। परिवार में उनकी विधवा पत्नी और तेरह वर्ष का पुत्र रामदयाल रह गये।

गहने और जमीन-जायदाद बेचकर उजागरमल ने अपना बहुत-सा कर्ज तो चुका दिया था, फिर भी, मरते समय कुछ बाकी रह गया। अन्तिम समय में उन्होंने पत्नी और पुत्र रामदयाल को एक कागज दिया जिस पर कर्ज़दारों के नाम और रकमें लिखी थीं। पुत्र को उनका अन्तिम आदेश था कि मेरी आत्मा को तभी शान्ति मिल पायेगी, जब किसी दिन तुम यह कर्ज़ ब्याज समेत चुका दोगे।

दो वष याद रामदयालका विवाह हुआ। इस मौके पर विधवा माँ ने थोडा बहुत कर्ज लेकर पूरी बिरादरी का न्यौता दिया। बहू की अगवानी के समय किसी ने ताना कस दिया कि वाप का कर्जा तो चुका ही नहीं और विवाह मे इतनी धूमधाम है। किशोर रामदयाल को यह बात चुभ गयी और विवाह के कगन-डोरे खुल भी नहीं पाये थे कि उसने सुदूरपूर्व असम जाने का निश्चय कर लिया। माँ और पडोसियों ने रायदयाल को बहुत समझाया कि कुछ दिन ठहर जाओ और थोडे बडे हो जाने पर चले जाना पर उसने किसी की भी न सुनी और रोती विलखती माँ और बालिका बहू को छोडकर, कुछ लोगों के साथ, जो पूरब की यात्रा पर जा रहे थे, वह भी चल पडा।

उस समय की यात्रा मे तीन चार महीने लग जाते थे। ट्रेन कलकत्ते से कानपुर तक ही बनी थी। राजस्थान से कानपुर जाने मे २५—३० दिन लगते थे। कलकत्ता से नौका मे वैठकर असम जाने मे भी डेढ-दो महीने लग जाते थे। रास्ते मे पद्‌मा नदी पडती थी जिसके तेज बहाव मे कभी-कभी नौकाएँ डूब जाती थीं। इसके सिवाय, जल दस्युओ का भी डर बना रहता था, इसलिये कई आदमी एक साथ मिलकर और पूरा बन्दोबस्त कर असम यात्रा पर जाते थे। एक बार जाकर लोग ८-१० वष की मुसाफिरी करके लौटते थे। रास्ते इतने सकटमय थे कि बहुत से लाग ता वापस ही नहा आ पाते थे। यात्रा के समय रामदयाल के पास सबल स्वरूप एक धोती,

एक लोटा और कुछ चना-चबैना था और था दृढ विश्वास एव साहस।

असम की आवहवा बहुत ही नम रहने के कारण वहाँ मलेरिया और काला-ज्वर का प्रकोप बना रहता था। पर व्यापार मे गुजाइस थी, इसलिए लोग पानी की जगह चाय पीकर रहते। बुखार हो जाने पर दवाइयाँ खाते रहते। कुनैन का उस समय तक अविष्कार नहीं हुआ था।

रामदयाल को राजस्थान से तिनसुकिया (असम) पहुचने मे चार महीने लग गये। वहाँ जाकर उसने फेरी का काम शुरू किया। सुवह कन्धे पर कपड लादकर गावो मे निकलता और शाम को एक या दो रुपया कमाकर अपने डेरे पर वापस आ जाता।

इस समय तक वहाँ मारवाडियो की कुछ दुकानें हो गयी थीं और यह आम-रिवाज था कि नया आया हुआ कोई भी व्यक्ति निस्सकोच उनके बासे मे खाना खा सकता था। जब अच्छी कमाई होने लगती तो अपनी अलग व्यवस्था कर लेता। इसके सिवाय, पहले से बसे हुये मारवाडियो से व्यापार मे भी वाजिब सहायता और प्रोत्साहन मिलता रहता था। रामदयाल को इनका पूरा सहयोग मिला।

कडी मेहनत और ईमानदारी से दस वर्षों मे उसने इतना धन कमा लिया जिससे वह अपने पिता का पूरा कर्ज व्याज

बड़े सकट मे भी उसे सबसे बडा सतोप और सहारा इसी बात का था कि उसने पिता का सारा कर्ज व्याज सहित चुका दिया था।

रामदयाल के पिता ने उसे केवल एक कागज दिया था जिस पर लेनदारो के नाम और रकमे लिखी थी। उस समय न तो स्टाम्प के कागज पर ही कर्ज की लिखा-पढी होती थी और न कोई गवाह या जामिन ही होते। परन्तु वे लोग सबसे बडी लिखा-पढी और गवाह-जामिन तो ईश्वर को मानते थे और पिता-पितामह का कर्ज चुकाये बगैर सार्वजनिक उत्सवा मे भी कभी-कदास ही शामिल होते थे। ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे कि ३०-४० वष बाद तक पुत्र और पौत्रों ने अपने पिता और पितामह के कज चुकाए है।

यही कारण ह कि हाल के वर्षों तक हमारे पूर्वजो के, बिना मात्रा के हरफो मे लिखे बही-खातो की अदालत मे भी साख और इज्जत थी।

꧁

राजा और रंक

राजस्थान के बूंदी राज्य मे हाडा राजपूतो का शासन था। सन् १७५० ई० में महाराज उमेद सिंह यहाँ राज्य करते थे। छोटी आयु मे ही पिता की मृत्यु हो जाने से इन्हें राजगद्दी मिल गयी। आपको शिकार खेलने का बडा शौक था। प्राय ही १०-१५ मुसाहबों और शिकारियों को साथ लेकर पहाडो और जगलो मे शिकार के लिए चले जाते।

माघ का महीना था। एक दिन महाराज अपने सरदारो और शिकारियो के दल के साथ पास के पहाडो मे शिकार के लिये गये। दिन भर कुछ भी हाथ नहीं लगा। शाम होते-होते एक बडे चीतल को देखा तो राजा ने अपना घोडा उसके पीछे छोड दिया। दौडते दौडते जगल मे रास्ता भूलकर दूर निकल गये। सभी साथी पीछे छूट गये।

रात हो गयी और भयकर तूफान के साथ ओले और वर्षा शुरू हो गयी। रास्तो मे चारो तरफ पानी जमा हो गया। ऊपर से बर्फीली हवा साँय-साँय करके चल रही थी।

ऐसी भयकर सर्दी में महाराज ठिठुर कर बेहोश हो गए किन्तु घोडा बहुत समझदार था। वह उन्हें अपनी पीठ पर

लादे घूमता हुआ एक झोपडी के द्वार पर आया और हि
हिनाने लगा। जब कुछ देर तक किवाड नहीं खुले तो घोड
दरवाजे पर पैरों की टाप लगाई। हाथ में दीपक लिए एक वृ
बाहर आया और कुछ क्षणों में सारी परिस्थिति समझ
बेहोश युवक को पीठ पर लादकर भीतर ले गया। कीमत
कपडे और गहने देखकर वह यह तो समझ गया कि यह अवश्
ही कोई बडे घर का युवक है, परन्तु उसने स्वप्न में भी यह न
सोचा कि स्वय महाराज उसके अतिथि बने है।

झोपडी में उसकी किशोरी पुत्री रूपमती के सिवाय और
कोई न था। पिता-पुत्री दोनों ने मिलकर युवक के भीगे वस्त्र
उतारे और उसे आग के पास लिटा दिया। चम्मच से मुह
खोलकर गरम दूध पिलाने लगे। बहुत प्रयत्न करने पर भी
युवक की बेहोशी दूर नहीं हुई। शरीर ठंडा ही बना रहा। डर
लगा कि वह कहीं मर न जाय। एक क्षण को वृद्ध विचलित सा
हुआ किन्तु वह अनुभवी था, वैद्यक का ज्ञाता भी। उसने पुत्री
को बहुत सकुचाते हुये कहा-' बेटी, इसके शरीर में गरमी लाने
का अब एक ही उपाय है। तुम इसकी शैय्याचारिणी बनो,
इसके शरीर को अपने शरीर की गर्मी पहुँचाओ।" बेटी को
लज्जित देखकर वृद्ध ने दृढ स्वरों में कहा-,घर आये अतिथि के
प्राण बचाना हमारा कर्त्तव्य है। इससे बडा पुण्य पृथ्वी पर नहीं
है। तुम सकोच त्यागकर धर्म का पालन करो अन्यथा नर हत्या
का पाप हम दोनों के मत्थे चढेगा,"

उच्च आचार-विचार वाली कुमारी कन्या के लिए जिसने पिता के सिवाय किसी पर-पुरुष को छुआ तक नहीं था, अपने पिता की यह आज्ञा बहुत ही कठोर थी। गहरे मानसिक द्वन्द के उपरान्त वह उनके आदेश को मानते हुये मेहमान को भीतर ले गयी।

बहुत देर बाद युवक के शरीर में गरमी आयी। उसने अपने आपको एक किशोरी की नग्न बाहों में पाया तो विचलित हो उठा। जब सुबह हुई तो कुमारी रूपमती स्त्री बन चुकी थी।

महराज ने अपने वृद्ध मेजबान के कुल, जाति आदि की जानकारी ली तो ज्ञात हुआ कि वह चारण सरदार है, अपनी स्त्री के किसी सामाजिक अपराध से दुखी होकर एकमात्र कन्या के साथ लोगों की दृष्टि से दूर १४ वर्षों से इस निर्जन गाँव में रहने लगा है। परन्तु अब उसे अपनी जवान पुत्री के विवाह की चिन्ता है।

दूसरे दिन, सुबह महाराज के साथी उन्हें खोजते हुए इसी झोपडी के पास आये, बाहर खड़े अश्व ने हिनहिनाकर स्वामी के अन्दर होने का संकेत दिया। महाराज को सुरक्षित पाकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।

राजा ने वृद्ध को बहुत सा धन उपहार में देना चाहा, परन्तु बाप-बेटी दोनों ने नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया कहने लगे कि हमने जो कुछ किया वह सब कर्त्तव्य के वश किया है, न कि धन के लोभ में।

विदा होते समय महाराज ने वृद्ध के समक्ष उसकी पुत्री को अपनी रानी बनाने का प्रस्ताव रखा। एक बार तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ, परन्तु जब हीरे जड़ी अगूठी पहना दी गयी तो उसकी आँखों में हर्ष के आसू आ गये।

तीन चार महीने बीत गए। इस बीच बेटी के कहने से दो बार पिता बूदी गए। महाराज से भेंट हुई, कन्या के विवाह की उन्हें याद दिलाई तो वे क्रोधित हो उठे। कहा—"आदमी को अपनी हैसियत देखकर सबध की बात करनी चाहिये। तुम लोग चाहो तो सौ-दो सौ रुपये महीने का वसीका राज्य से मिल सकता है। फिर कभी मत आना, नहीं तो अपमानित होकर जाना पड़ेगा।"

आखिर, एक दिन रूपमती ने अपने पिता को सकोच त्याग कर सारी बात कह दी और बता दिया कि उसे महाराज का गर्भ है। यह सुनकर वृद्ध को कुछ ऐसा सदमा पहुचा कि वह थोड़े दिनो में ही मर गया।

समय पाकर रूपमतीने एक बहुत ही सुन्दर बालक को जन्म दिया। सेवा-सुश्रूषा के लिए देहाती स्त्रियाँ थीं जो इस पितृहीन युवती को प्यार करती थीं।

पूछने पर रूपा बराबर यही कहती कि उसका पति एक बहुत बड़ा राजा है और जल्द ही उसे राजधानी ले जायेगा।

एक दिन उसने सुना कि महाराज आमेर की राजकुमारी से विवाह करके बारात लिए लौट रहे हैं। यद्यपि रूपमती ने राजधानी जाने की एक प्रकार से सौगंध खा ली थी, पर उस दिन मन को कड़ा करके, बच्चे को गोद में लेकर वह बारात का जुलूस देखने नगर की ओर चल दी।

सारे शहर में अपूर्व सजावट हुई थी। चारों तरफ तोरण-वन्दनवार बंधे थे। शहनाइयाँ बज रही थीं, पटाखे छूट रहे थे, पुरनारियाँ मधुर गीत गा रही थीं।

रूपमती ने देखा गाजे-बाजे सहित महाराज की सवारी आ रही है। सोने के हौदे से सजे हाथी पर महाराज और उनके पीछे रथ में नव-विवाहिता महारानी। लोग गर्व से एक दूसरे को कह रहे थे कि महाराज कितने प्रतापी हैं तभी तो आमेर की राजकुमारी से सम्बन्ध हुआ है, आदि।

लोगों के धक्कों से किसी प्रकार बचती हुई रूपमती अपने शिशु को लेकर राजा के सामने जा पहुँची। महाराज ने उन्हें क्षण भर के लिए देखा और मुँह फेर लिया।

थोड़ी देर बाद भीड़ में शोर मचा, कुछ हलचल हुई। लोगों ने देखा कि अतीव सुन्दर नवयौवना अपने शिशु के साथ जमीन पर कुचली पड़ी थी। कसूमल ओढ़नी थी और हाथ में एक बेहतरीन हीरे की अंगूठी, चारों तरफ ताजे लहू की धार बह रही थी। उनमें से कुछ लोग कह रहे थे—"हमने इसे, दौड़कर हाथी के पैरों के नीचे जाते देखा था'।

लाशों को रास्ते से अलग हटा दिया गया। बाजे और नगाड़े फिर जोरों से बजने लगे। आखिर किसी पगली के पीछे इतने बड़े उत्सव में व्यवधान क्यों आये ?

छज्जों से महाराज के हाथी पर पुष्पों की वर्षा हो रही थी। 'महाराज की जय हो', 'अन्नदाता घणी खम्मा' की आवाजों से आकाश गूँज रहा था।

*

चन्दरी बुआ

राजस्थान मे पुराने जमाने मे ऐसी प्रथा थी कि एक ही गाँव मे शादी-विवाह नहीं होते थे। लडकी को दूसरे गाँव मे देते और दूसरे गाँव की लडकी को बहू बनाकर लाते थे। यहाँ तक होता था कि अगर किसी गाँव मे बारात आती तो वर-पक्ष के गाँव की जितनी भी लडकियाँ वहाँ व्याही होतीं, सबका मिठाइयाँ भेजी जाती थी।

अपने गाँव की लडकी को चाहे किसी भी जाती की हो, आयु के अनुसार भतीजी, बहिन या बुआ कहकर पुकारा जाता था। मुझे याद है कि हमारे घर के पास मुसलमान लुहारो का एक घर था, हम उन सबको चाचा, ताऊ या चाची, ताई कहकर पुकारते थे।

अब गाँव, कस्बो मे परिवर्तित हो गए है और यातायात के साधन सुलभ होने से आवागन भी बढ गए है, इसलिए यह प्रथा कम होती जा रही है।

इस कथा की नायिका चन्दरी बुआ का जन्म राजस्थान की बीकानेर रियासत के एक गाँव मे आज से करीब १२ वर्ष पहले एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ था।

जब चन्दरी १२ वर्ष की हुई तो उसका विवाह हुआ। पास के गाँव से बारात आयी और सारे काय धूम-धाम से सम्पन्न हुए।

उसका पिता साधारण स्थिति का ब्राह्मण था, परन्तु उन दिनों विवाह-शादियों में घर वालों को कुछ विशेष नहीं करना पड़ता था। गाँव के पुरुष और स्त्रियाँ सारे कामों को आपस में बँटवारा कर लेते थे। प्रति घर से एक-दो रुपए टीके या दाना के रूप में लिये जाते, जिससे माँ-बाप के लिए खर्च का बोझ कम हो जाता था।

विवाह तो बचपन में हो जाते, पर गौना तीन या पाँच वर्ष बाद होता था। इससे पहले वह ससुराल नहीं जाती जाती थी। *चन्दरी के पति का देहान्त गौना होने के पूर्व ही हो गया, फिर* वह ससुराल नहीं गयी और मायके में ही रहने लगी।

पहले तो शायद बेटी या बहिन के नाम से पुकारी जाती होगी, पर मैंने जब होश सभाला, तब तक वह प्रौढ़ हो चुकी थी और उसे बुआ का पद मिल चुका था। उसके माँ-बाप स्वर्गवासी हो चुके थे। वह सारे मुहल्ले की बुआ कहलाने लगी थी।

दान-दक्षिणा से उसे प्रारम्भ से ही ग्लानि थी। इसलिए, बावजूद सबके साथ अच्छे सम्बन्धों के, वह श्रम करके ही अपना जीवन-निवाह करती थी। सुबह ४ बजे उठकर चक्की पीसने बैठ जाती और सूर्योदय तक ८ से १० सेर तक अनाज पीस लेती। इससे प्रतिदिन २ से २॥ आने की कमाई हो जाती। इसे

कभी काम का अभाव न रहता, क्योंकि एक तो काम मे स्व-च्छता रखती तथा दूसरे अनाज को साफ करके पीसती तथा पिसाई में आटा घटाती न थी।

जब कभी हमारी नींद पहले खुल जाती तो चन्दरी बुआ के भजन तथा चक्की की आवाज सुनाई पडती। उन दिनो एलार्म घडियाँ तो सुलभ थी नहीं, अत जिसे कभी मुहूर्त साधकर पर-देश जाना होता या पहले उठना होता, वह चन्दरी बुआ को समय पर जगाने को कह जाता और वह उसे नियत समय पर जगा देती। उस समय तारो को देखकर समय का ज्ञान बडी-बूढी स्त्रियो को रहता था।

उसकी आवश्यकताएँ कम थीं। इसलिए दो-ढाई आने मे सामान्य जीवन-निर्वाह हो जाता था। चन्दरी बुआ ने इससे अधिक कमाने की आवश्यकता नहीं समझी। दिन मे मुहल्ले के बच्चो की देखभाल करती तथा कोई बीमार होता तो उसकी सेवा करती रहती। उन दिनो प्रसव का काम सयानी स्त्रियाँ ही सभालती थीं। कठिन समय मे भी चन्दरी के आ जाने से घर वालो को और जच्चा को सान्त्वना व साहस मिल जाता।

उसने जीवन का सारा प्रेम और ममत्व दूसरो के बच्चो पर उडेल दिया था। मुहल्ले के बच्चे सारे दिन उसे घेरे रहते। किसी को पतग के लिए लेई चाहिए तो किसी को अपनी गुडिया के विवाह के लिए रग-बिरगे कपड। उसके दरवाजे से निराश जाते किसी को नहीं देखा गया।

सगीत की शिक्षा के बिना ही उसे ताल और स्वर का यथेष्ट ज्ञान था। विधवा होने के कारण विवाह-शादी के गीत तो नहीं गाती, परन्तु भजन और 'रतजगा' (रात्रि-जागरण) उसके बिना नहीं जमते थे। मीरा और सूर के पदों को इतनी लवलीन होकर मधुर रागिनी से गाती कि सुनने वाले भावविभोर हो जाते।

जब वह काफी वृद्ध हो चली तब भी मैंने उसे देखा था। उस समय अनाज पीसना तो उसके वश की बात नहीं थी, फिर भी कुछ छोटा-मोटा करती रहती थी। वह इतनी बूढी हो चुकी थी कि उसके हाथ और गर्दन काँपने लग गये थे और आवाज में हकलाहट-सी आ गयी थी।

प्रतिवर्ष गर्मी की मौसम में लोग हरिद्वार और बद्रिकाश्रम जाते थे। चन्दरी बुआ से लोगों ने बहुत बार आग्रह किया, परन्तु उसका एक ही जवाब होता कि मुझ गरीब और अभागिन के भाग्य में तीर्थ-यात्रा कहाँ है, यह सब तो भाग्यशाली लोगों को मिलता है।

एक दिन उसने मुझे बुलाया और कहने लगी—"आजकल स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, पता नहीं कब शरीर छूट जाय। मेरे मन में अपनी ससुराल के गाँव में कुआ बनाने की साध है। वहाँ एक ही कुआ है। इसलिए गर्मी में गायें और ढोर तो प्यासे रहते ही हैं, मनुष्यों को भी पूरा पानी नहीं मिलता।

3878

तुम पता लगाकर बताओ कि कुँए पर कितना खर्च बैठेगा। मैं सोचने लगा कि बुढ़ापे में बुआ का दिमाग खराब हो गया है। आजकल दोनों वक्त का खाना तक तो जुटा नहीं पाती, इस पर भी कुआ बनाने की धुन लगी है।

बात आई-गई हो गयी, परन्तु १०-१२ दिन बाद देखता हूँ कि लाठी टेकती बुआ सुबह ही सुबह हाजिर है। मन मे अपने ऊपर ग्लानि और क्षोभ हुआ कि जिसके स्नेह की छाया मे बचपन के इतने वर्ष विताये, जिससे नाना-प्रकार के छोटे-मोटे काम लिए, बहुत रात तक कहानियाँ सुनी, उसके एक छोटे से काम पर भी मैने ध्यान नहीं दिया।

मैंने कहा, "वहाँ पानी बहुत गहरा है, इसलिए कुए पर दो-ढाई हजार रुपये खर्च होगें। यदि कुई (छोटा कुआ) बनायी जाय तो शायद डेढ हजार तक मे बन सकेगी।"

मेरा उत्तर सुनकर बुआ के झुर्रियो से भरे चेहरे पर एक गहरी उदासी छा गयी मन-ही-मन कुछ हिसाब-सा लगाने लगी। दूसरे दिन मुझे अपने घर आने को कहकर चली गयी।

अगले दिन जब मै उसके यहाँ पहुचा तो देखा कि वह मेरा इन्तजार कर रही है। थोडी देर इधर-उधर देखकर भीतर की एक कोठरी मे ले गयी। खाट के नीचे से एक पुराना डिब्बा निकाला और उसे खोलकर मेरे सामने उलट दिया।

रानी विक्टोरिया, एडवर्ड और जार्ज पंचम की छाप के पुराने रुपये थे तथा कुछ रेजगारी थी। थोड़े-से चाँदी के गहने और सोने की मूरत थी, जो शायद उसकी माँ ने उसके विवाह के समय उसको दी होगी।

मैं रुपये गिन रहा था और पिछले ६०-७० वर्षों का इतिहास मेरे मानस में तैर रहा था। सोच रहा था, इस वृद्धा की सारी उम्र की गाढ़ी कमाई का यह पैसा है जो उसने कठिन जीवन बिताकर यहाँ तक की तीर्थयात्रा की बलवती इच्छा को दबाकर इकट्ठा किया है। आज जीवन के सन्ध्याकाल में सारा का सारा परोपकार में लगा देना चाहती है। गिनकर मैंने बताया कि लगभग ६००) रुपए हैं। ३००) रुपये के गहने होंगे। इतने में काम बन जायगा, जो कुछ थोड़ी कमी रहेगी, उसकी व्यवस्था हो जायगी, कोई चिन्ता की बात नहीं है।

वह बोली, "बेटा, तेरे फूफे के निमित्त कुआँ बनेगा। इसमें दूसरों का पैसा नहीं ले सकूँगी। नहीं होगा तो एक मजदूर कम रख कर कुछ काम मैं कर दिया करूँगी।" मैंने पूछा, *"बुआ कुए पर किसके नाम का पत्थर लगेगा"*। अपनी धुंधली आँखों को कुछ फैलाने की चेष्टा करते हुए बुआ ने जवाब दिया कि "नाम की इच्छा से पुण्य घट जाता है फिर मानुष तो स्वयं क्षणभंगुर है, उसके नाम का मूल्य ही क्या ?'

मुझे इस अपढ़ वृद्धा के तर्क पर आश्चर्य के साथ श्रद्धा हो

रही थी, यह कुआ बनाने के परोपकारी काम के लिए सर्वस्व लगाकर भी न तो अपना और न अपने पति के नाम का पत्थर लगाने की इच्छा रखती है-जबकि आज १ लाख लगाकर ५ लाख की इमारत या सम्था पर नाम लगाने की खींच-तान धनवान और विद्वानो मे लगी रहती है। उद्घाटन-समारोह किस मत्री या नेता मे करायें, इस पर भी काफी सोच-विचार होते है। तय नहीं कर पा रहा था कि कौन बडा दानी है और किसका दान ज्यादा सात्विक है।

कुछ दिनो बाद उस गाव मे गया तो कुआ बन रहा था और चन्दरी बुआ भी मजदूरा के साथ टोकरी ढो रही थी। उसकी लगन और परिश्रम देखकर दूसरे मजदूर-कारीगर भी जी जान से काम मे जुटे थे।

किसी ने कहा, "बुआ, तुम्हारे कुए का पानी तो बहुत मीठा निकला है, परन्तु तुम तो बहुत दिन नहीं पी सकोगी।" वह बोली, भैय्या मेरा इसमे क्या है ? तुम सब लोगो मे रहकर कमाया हुआ पैसा था, वह भले काम मे लग गया। दूसरो के कुओ से सारी उम्र पानी पिया है, इसलिए इस छोटे से प्रयत्न के द्वारा मने अपना ऋण चुकाने का प्रयास किया है। मेरी आखिरी इच्छा है कि जब मेरे प्राण निकलें तो गगाजल की जगह इसी कुए का पानी मेरे मुह मे डाल देना।

कुआ बनकर तैयार हो गया, परन्तु चन्दरी बुआ थक कर

बीमार हो गयी। जिस दिन हनुमान जी का जागरण और प्रसाद हुआ वह बेहोश-सी थी।

जागरण के आस-पास से देहात के काफी लोग इकट्ठे थे। भजन-कीर्तन चल रहा था, थोडी देर बाद वहीं सबके सामने बुआ का देहान्त हो गया।

आज वह गाव बडा हो गया है और दूसरे कुए भी बन गये है, परन्तु चन्दरी के कुए के पानी के समान मीठा पानी किसी का भी नहीं है।

—,—

उतार चढाव

उन्नीसवीं सदी के अंतिम चरण की बात है। कराची के एक मध्यमवर्गीय सिन्धी परिवार मे हरनाम नाम का बालक था। मा बचपन मे ही मर चुकी थी। बाप ने प्रौढावस्था मे फिर से एक गरीब घर की लडकी से विवाह कर लिया। उसके दो सौतेले बहन-भाई भी हो गये थे।

हरनाम की शादी-शुदा अपनी एक सगी बडी बहन थी। परन्तु उसे कभी त्योहार पर भी पीहर नहीं बुलाया जाता था। कभी-कभी छुपकर भाई की पाठशाला मे आती और कुछ चीजें दे जाती। घर मे छोटे भाई बहन के लिये विशेष अवसरों पर नये कपडे और तरह-तरह की मिठाइयाँ बनती, परन्तु हरनाम को कोई नहीं पूछता। बेचारा बालक ललचाई आशा से देखता रहता। कभी कदास, वे दोनों इसे कुछ देना चाहते तो मा उन्हें मना कर देती।

एक दिन, किसी साधारण से कसूर पर विमाता ने हरनाम को बहुत पीटा। पिता भी पत्नी के डर से कुछ नहीं बोला। भूखा-प्यासा बचा घर से भागकर समुद्र के किनारे खडे किसी भारवाही जहाज मे जाकर छिप गया।

थोडी देर बाद जब जहाज रवाना हुआ तो उसे वस्तुस्थिति का भान हुआ और सुबक-सुबक कर रोने लगा। परशियन आयल कम्पनी का जहाज था। ज्यादातर मल्लाह अरब थे, दो-चार अफिसर भी थे। जब उन्होने १२-१३ वर्ष के एक अति सुन्दर बालक को इस स्थिति मे देखा तो आश्चर्य चकित रह गये। धीरे-धीरे सारी बातो की जानकारी ली। जहाज का कराची वापस जाना सम्भव नहीं था। बालक पर कप्तान का स्नेह हो गया। उसने इसे अपनी कैबिन मे रख लिया। ईरान पहुचकर कप्तान ने उसे एक धनी ईरानी परिवार मे नौकर रखा दिया। हरनाम की बुद्धि कुशाग्र थी। थोड दिनो मे ही उसे अरबी, फारसी और अंग्रेजी बोलने का अच्छा अभ्यास हो गया।

इन दिनो, ईरान मे तेल कम्पनी के बहुत से अधिकारी थे। परशियन आयल कम्पनी का बडा साहब वहा ब्रिटेन की तरफ से सर्वोच्च राजदूत भी था।

एक दिन साहब और उसकी पत्नी टहलते हुये किसी अरबी शब्द के बारे मे बहस कर रहे थे। हरनाम उधर से गुजर रहा था। उसने क्षमा मागते हुये विनयपूर्वक कहा कि मेम साहिबा का जुमला सही है।

अब तो हरनाम पर उन दोनो की पूर्ण कृपा हो गयी। उसे, उन्हीं के बगल मे रहने, खाने की सुविधा मिल गयी। हाथ-

खर्च के लिये दो सौ रुपया महीना दिया जाने लगा। काम था, मेम साहिबा को अरबी और फारसी पढाना।

इसी बीच उसने अपनी एक गल्ले-किराने की दूकान भी करली थी।

प्रथम महायुद्ध मे ईरान, मध्य पूर्व का सप्लाई केन्द्र बना। करोडो रुपये महीने का सामान वहा से वितरण होने लगा। तेल कम्पनी का बडा साहब निर्देशक नियुक्त हुआ।

अधिकाश सामान के वितरण का काम मिला हरनाम दास एण्ड कम्पनी को। सन १९१८ ई० तक हरनाम दास करोडपति सेठ बन गया। वहीं चार-छ मुताह (कन्ट्राक्ट मेरिज या अल्पकालीन विवाह) कर लिये। इन बीबियो के अलावा उसके रगमहल मे एक से एक सुन्दरी दासियाँ थी। सैकडों नौकर-चाकर, मुनीम—गुमाश्ते घर और आफिस का काम देखते। उसके दरवाजे पर अनेक अतिथि और प्रतिनिधि आते रहते, सबका यथायोग्य आदर-सत्कार होता।

सयोग से एक दिन एक भारतीय साधु घूमता हुआ वहाँ जा पहुँचा। स्वदेश के सन्यासी की दूसरों की अपेक्षा अधिक खातिरदारी होनी स्वाभाविक ही थी। एक महीने तक किसी राजा-महराजा का सा आयोजन उनके लिये हुआ। विदाई की दक्षिणा मे कीमती शाल-दुशाले तथा अच्छी रकम नकद दी गयीं।

पन्द्रह वर्ष के लम्बे समय के बाद, एक साधु महाराज हरिद्वार के पास मुनि की रेती मे एक बड़े-पकौडी की दूकान पर खड़े होकर, दूकानदार को वे बड़े ध्यान से देख रहे थे। महाराज को प्रेम से नाश्ते का निमन्त्रण मिला। पहले से ही ५-४ सन्यासी प्रसाद पा रहे थे। दूकान पर ग्राहकों की अच्छी भीड़ थी।

दूकानदार ने पूछा कि महराज आप इतने ध्यान से मुझे क्यों देख रहे थे ?

सन्यासी ने १५ वर्ष पहले के ईरान प्रवास की अपनी कहानी सुनाकर कहा कि सेठ हरनामदास का चेहरा आपसे एकदम मिलता-जुलता है।

जब उन्हें पता चला कि वे उस हरनामदास से ही बातें कर रहे है तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

जो कहानी उन्हें सुनाई गई, वह इस प्रकार थी —

आपके चले जाने के एक वर्ष बाद बड़े साहब का तबादला हो गया और छोटे साहब ने काम सम्हाला। मैंने कभी उसकी परवाह नहीं की थी, इसलिये वह और उसके मुहलगे लोग एवं कर्मचारी मुझसे जलते रहते थे। कुछ ही दिनों बाद मुझ पर जालसाजी का मुकदमा चलाया गया जिसकी सजा होती मौत।

जल्दी से व्यवस्था करके, मुनीमों को काम सम्हलाकर मैं ४-५ लाख की सम्पत्ति लेकर अपने सचिव के साथ ईरान से छद्मवेश में एक जहाज से रवाना हुआ। रास्ते मे मेरा

सचिव सन्दूक लेकर न जाने कहाँ उतर गया। मैं जब बम्बई बन्दरगाह पहुचा तो मेरे पास थोडे से रुपये और एक बहुमूल्य हाथ-घडी बची थी।

घडी बेचने के लिये दो-तीन दूकानो मे गया। दूकानदार मेरी मली भेष-भूषा और बढी हुई दाढी देखकर सन्देह करने लगे कि शायद मैं घडी चुराकर लाया हू। केवल ५०), ६०) रुपये तक देन को तैयार हुए। मैंने क्रोध मे आकर घडी को समुद्र मे फेंक दी।

जगह–जगह मजदूरी करता हुआ, सयोग से यहाँ आकर बडे-पकौडी की दूकान कर ली। थोडे दिनो तक तो मन मे सताप रहा, फिर एक दिन एक महात्मा आये। उनका उपदेश था, "बच्चा, धन और मान मे सच्चा सुख नही है। ईश्वर के बन्दो की सेवा करो, शान्ति मिलेगी।' तब से महात्माओ को प्रसाद देकर जो बच जाता है उसी से दो जून की खुराक आराम से मिल जाती है। सुबह ६ बजे से रात के १० बजे तक मेहनत करने से शरीर स्वस्थ रहता ह और मन भी नाना चिन्ताओ से मुक्त है। भगवती गगा का तट ह और साधु महात्माओ का सग-लाभ, सचमुच, बहुत आनन्द मे हूँ।

सन्यासी ने प्रसाद पाकर हरनामदास को प्रणाम किया और कहा कि वास्तव मे ही आप सुख-दुःख के समदर्शी-सम-भोगी है।

सन १६६१ म हरनामदास की मृत्यु हुई। मेरे मित्र स्वर्गीय श्रीराम शर्मा (सम्पादक, विशाल भारत) के घर पर एक दो बार उनसे मुलाकात हुई थी। गरीबी होने पर भी आदतें पहले जैसी ही थी। एक दो-कम्बल या कोट पास मे होता तो वह किसी जरूरतमन्द को दे देता। कई दिनो तक कडाके की सर्दी भुगतने के बाद फिर बना पाता। परन्तु कभी उसके चेहरे पर दीनता के भाव नहीं दिखाई दिये।

❀

आत्मीयता

बात पुरानी है परन्तु बहुत पुरानी भी नहीं क्योंकि ४०-५० वर्ष पहले ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने सेठ जी को देखा था। उनका अपना गाँव तो राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र में था, परन्तु ज्यादातर रहते थे बम्बई में। वहाँ बड़े पैमाने पर रूई और आढ़त वगैरह का कारोबार था।

वर्ष में एक बार गाँव आते तो गरीब और जरूरतमन्दों में महीनों पहले से चर्चा शुरू हो जाती। गाँव के सैकड़ों व्यक्ति दो-चार कोस अगवानी करने के लिए आते। सेठजी भी छोटे-बड़े सबको उनके नाम से सम्बोधित करके राजी-खुशी का हाल पूछते। इतने बड़े व्यक्ति से अपना नाम सुनकर लोगों के मन में गुदगुदी सी होती और वे अपने को भाग्यवान मानते।

जितने दिन वे वहाँ रहते, प्राय रोज ही कभी हनुमानजी के प्रसाद में तो कभी सत्यनारायण भगवान की कथा उद्यापन के उपलक्ष में गाँव के लोगों को भोजन के लिए बुलाते रहते। ब्राह्मणों का प्रति-घर एक रुपया एक धोती और एक साड़ी भेंट दी जाती। यद्यपि आज के बड़े धनिकों के अनुपात में उनके पास रुपया कम था, परन्तु उन दिनों चीजें बहुत सस्ती थीं और उनका मन बहुत ऊँचा था। इसलिए जितनी आय होती उसका अधिकांश दान-धर्म में खर्च कर देते।

उनके एक मात्र लड़के का विवाह देश के गाँव मे ही होना निश्चित हुआ। उन दिनों छपे हुए निमत्रण-पत्र भेजने की प्रथा नहीं थी। नाई या ब्राह्मण गाँव के सब घरो मे जाकर न्यौता-बुलावा देते थे। परन्तु जो गोत्र भाई थे उनको न्यौता देने सेठजी स्वय गये। वैसे उनके साथ पाच-दस दूसर व्यक्ति हमेशा रहते ही थे।

सयोग से, उनकी बिरादरी मे एक घर ऐसा भी था जिसके भुने हुए चने, मुरमुरे की दुकान थी। लोगो को बड़ा ताज्जुब हुआ जब इतने बड सेठ एक गरीब भाई की दुकान पर जाकर रखी हुई मूज की खाट पर बैठ गए।

दो-तीन बार निमत्रण की याद दिलाने के बाद भी सामने वाला व्यक्ति चुप रहा। सेठजी उनकी चुप्पी का मतलब समझ गए। उन्होने कहा 'भाई सुबह से घर से निकला हुआ हूँ, प्यास लग रही ह, थोड़ा सा पानी मगरा दो। दुकानदार जब लोटे म पानी लेकर आया तो सेठजी ने हँसकर कहा, कि "तुम इतना ता जानते ही हो कि खाली पेट पानी पीने से वायु हो जाती है इसलिए थोड़ा सा गुड और चने मुरमुरे खाकर पीऊगा।' उसने सहमते हुए ये दाना चीज लाकर दीं, जिन्हें खाकर बड़े प्रेम से सेठजी ने पानी पीया।

पास खड़े हुए लोगों ने देखा कि उस गरीब की आखो म हर्ष की अश्रुधारा बह चली। इतने बड व्यक्ति उनके दरवाजे

पर बड प्रेम से चना मुरमुरा खा रहें थे। उसने हाथ जोडकर कहा "पूज्यवर, भोज मे शामिल होने का मन तो नहीं था क्या- कि मेरा ऐसा ख्याल था कि मेरे यहाँ काम पडने पर आप आयेंगे नहीं। परन्तु मेरी धारणा गलत निकली इसलिए म लज्जित हूँ और हम सपरिवार भोजन के लिए आपके यहाँ आयगे।"

कहा जाता ह कि दावत चार-पाँच दिनो तक चलती रही। आसपास के गाँवो से हजारो व्यक्ति आये। सबका यथायोग्य आदर सत्कार किया गया।

विवाह के कामो मे व्यस्त रहते हुये भी सेठजी का ध्यान मे यह बात आयी कि घर की भगिन 'भूरी' की जगह काम करने के लिए कोई दूसरी ही आ रही है। उसे बुलाकर पूछा तो कहने लगी कि आपकी भगिन की लडकी के विवाह पर उसे रुपये की अटक पड गई थी इसलिए मैंने एक सौ रुपया उधार देकर आपका घर गिरवी रख लिया ह। उसकी बात सुनकर सेठजी बहुत गुस्सा हुए और उन्होंने उसी समय 'भूरी' को बुला भेजा।

बम्बई से बीसो दोस्त-मित्र शादी मे आये हुए थे, उन सबके सामने ही सेठजी न कहा, "भूरी काकी, भला तुमने यह गलत काम क्या किया? जब-जब तुम्हारे यहाँ से समाचार गये तब तुम्हें बम्बई से रुपये भिजवा दिये थे,। भूरी ने कुछ-सह- मते हुए से स्वीकार किया कि पहली तीना लडकियो के विवाह

के रुपये तो आपके यहाँ से आ गये थे, उस समय आपके काका भी जीवित थे इस समय कुछ जल्दी में थी, अच्छा घर और वर मिल रहा था इसलिए जीवणी से रुपये उधार लेकर धापी (लड़की) का विवाह कर दिया, उसी की एवज मे आपका घर गिरवी रखना पड़ा, चार-छ ह महीनों म छुड़ालूँगी।

एक गरीब भगिन के प्रति सेठजी द्वारा 'काकी' का सम्बोधन सुनकर उपस्थित लोगों को आश्चर्य होना स्वभाविक था, भूरी भी बिना झिझक के अपने स्वर्गीय पति को सेठजी का काका बता रही थी।

जीवणी किसी तरह भी विवाह से पहले घर छोड़न को तैयार न थी, किसी तरह समझा-बुझाकर उसे २००) रु० देकर वापस भूरी को नाम सौंप दिया गया।

आजकल की मान्यताओं और तहजीब के आधार पर ये बातें अटपटी सी लगेंगी, परन्तु उस समय तन की छुआछूत रखते हुए भी लोगों के मन मे प्यार था, एक-दूसरे के दुख-सुख मे शामिल रहते और आत्मीयता के साथ आपस म सम्बोधन भी चाचा, ताऊ, मामा, इत्यादि का था।

*

पाप का धन

कुछ वर्ष पहले बम्बई मे अशरफ भाई नाम का, जवाहरात का एक दलाल था। धनवान तो नहीं, परन्तु नेक और मेहनतकश इतना था कि व्यापारियो का उस पर पूर्ण विश्वास था। इसीलिये वे बहुत रुपयों का माल उसे बेहिचक सौंप देते थे। एक बार, एक सेठ के यहाँ हीरा की खरीदारी थी। अशरफ भाई सेठ की पसन्द के लिए एक पुडिया ले गया। सेठ ने कहा, "पुडिया छोड जाओ, दो एक दिन मे जवाब दूँगा।"

सेठ काफी धनी और नामी-गरामी था। अशरफ ने पुडिया छोड दी और घर लौट आया। रास्ते मे उसे ख्याल आया कि एक और छोटी पुडिया जिसमे १५ बेशकीमती हीरे थे, सेठ के वहीं छूट गई। वह उल्टे पैरो भागा-भागा सेठ की कोठी पर पहुँचा और बहुत ही सकोच के साथ बोला, सेठ जी मैंने अभी जो पुडिया आपके पास छोडी है, उसमे एक छोटी पुडिया और थी, भूल से वह भी उस बडी पुडिया में रह गई है। कृपया देख कर मुझे लौटा दें। सेठ जी ने अपनी आलमारी से पुडिया निकाल कर ज्यो की त्यों अशरफ के सामने रख दी। काफी उलट-पुलट कर देखनेके बाद भी उसको छोटी पुडिया नहीं मिली, अशरफ के पैरों तले से जमीन खिसक गई। वह रूधे गले से

सिर्फ इतना ही बोल पाया, "सेठ जी, म ता मर गया। जिस जाल्दी से वे हीरे लाया था, उसे क्या जवाब दूँगा ?

सेठ ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा "भाई तुम अच्छी तरह याद करो, जल्दी मे कहीं भूल गये होगे, घर जाकर तालाश करो। मेरे यहाँ तो जो पुडिया तुम दे गये थे, वैसी की वैसी तुम्हारे सामने ह। अभी हडबडाये हुये हो, आश्वस्त होकर शान्ति से घर मे ढूढोगे तो कहीं मिल जायेगी।

अशरफ ने कहा, "सेठ जी वह छोटी पुडिया इसी बडी पुडिया मे थी, एमा मुझे याद ह। इसे छोड कर जैसे ही म आपके यहाँ से गया मुझे रास्ते मे ही याद आई और वापस यहाँ आया हू। आप अपनी आलमारी मे फिर से देख लें।" सेठ ने अलमारी खोल कर अशरफ को दिखा दी, वहाँ कोई पुडिया नहीं थी।

हताश और चिन्तित अशरफ वहाँ से अपने घर आ गया। मन की तसल्ली के लिए उसने अपने यहाँ भी खोज-बीन की पर पुडिया नहीं मिलनी थी, नहीं मिली। वह रोने लगा। खाना-पिना सब छूट गया। दो एक दिन निकल गए। हिम्मत कर के फिर वह सेठ के यहाँ गया और गिडगिडा कर कहने लगा, "सेठ जी, मुझ गरीब पर रहम कीजिए। पुडिया आपके यहीं छूटी है। हो सकता है, आप कहा रखकर भूल गए हो। एक बार फिर देख लीजिए।" सेठजी को अशरफ की इन बातो मे गुस्सा आ गया। उनकी नियत पर एक मामूली दलाल शक

करे यह असहनीय था। डाँट कर उन्होंने उसे कोठी से बाहर निकाल दिया।

अब अशरफ की आखों के सामने अधेरा छा गया, लेकिन वह हताश नहीं हुआ। वह उस जौंहरी के पास गया, जिससे कीमती हीरों की पुडिया ली थी। बहुत ही स्पष्ट शब्दों में उसने सारी बात बता दी। सेठ पर अपना शक भी जता दिया।

जौंहरी अशरफ को बहुत समय से जानता था। उसकी ईमानदारी और नेकनियती में भी शक करने की गुजायश नहीं थी। वह उसे ढाढस देते हुए बोला, "घबराने की कोई बात नहीं कहीं इधर-उधर रख कर भूल गए होंगे, या सेठ के यहाँ कहीं भूलसे रखी पडी होगी, दस-पाँच दिन में मिल जायगी। अशरफ को सन्तोष तो नहीं हुआ, परन्तु करता भी क्या? घर आ गया।

लेकिन मन का चैन नहीं मिला। ३-४ दिन बाद ही वह फिर जौहरी के पास पहुँचा और बोला—"भाई साहब, वह पुडिया तो मिली नहीं। मैं जानता हूँ कि इस समय उन हीरों की कीमत इतनी अधिक है कि उसे चुकाना मेरे बस की बात नहीं। बडी कृपा होगी, यदि आप उसकी लागत कीमत मुझसे ले लें। अधिकाश तो अभी चुका दूँगा, बाकी रकम का रुक्का लिख दूँगा।

जौहरी ने धीरज से सब कुछ सुना और अशरफ को सलाह दी कि तुम एक बार पुन सेठ के यहाँ जाओ, शायद पुडिया

मिल जाए अशरफ ने दिल कड़ा किया और एक बार फिर सेठ जी के घर पहुंचा और उनके पैर पकड़ कर रोने लगा कि सेठ जी म बाल-बच्चा वाला आदमी हूँ, वे सब बरबाद हो जाएंगे। आइंदा कौन मेरा विश्वास करेगा ? कौन मुझे जवाहरात सौंपेगा ? मेरा धधा हो चौपट हो जाएगा। आप एक बार फिर तलाश लें। सेठ ने सब कुछ सुना और उसे पहले की भाँति इस बार भी दुत्कार कर घर से निकाल दिया।

इसके बाद अशरफ को इतना सदमा पहुँचा कि वह विक्षिप्त सा रहने लगा। कभी-कभी रात मे चौंक कर उठ बैठता और रोने लगता। जौहरिया से अशरफ की यह अवस्था छिपी नहीं थी, उन्होंने सेठ से बातचीत की इन दोनों के बीच एक पच नियुक्त कर दिया।

पच के सामने अशरफ ने अपना बयान देते हुए बताया कि जिस दिन मैं सेठ जी के पास हीरे रखकर गया था उस दिन और कहीं नहीं गया। १५ हीरों की पुड़िया उस बडी पुड़िया मे थी, ऐसा मुझे याद है। सेठ जी के यहाँ पुड़िया छोड कर घर आ रहा था कि रास्ते में ही दूसरी पुड़िया की याद आई और उन्हीं पैरा लौटकर सेठजी की कोठी पर आया। मुझे यकीन ह कि पुड़िया वहीं रह गई ह। पञ्च ने प्रत्यक्ष प्रमाण मागा तो उसने बताया कि न तो मेरे पास कोई तीसरा प्रत्यक्ष गवाह है और न मैंने इन्हें अपनी जानकारी मे वह पुड़िया ही दी थी। इधर, सेठ ने अपने जवान लडके के सिर पर हाथ रखकर सौगन्ध

खाई कि मेरे पास इसकी कोई दूसरी पुडिया नहीं आई थी। फैसला अशरफ के खिलाफ हो गया।

अचानक अशरफ सेठ के पैरो पर गिर पडा और कहने लगा "यह आपने क्या किया ? आपका चेहरा बताता है कि हीरे आपके पास है। क्यों आपने इकलौते जवान बेटे के सिर पर हाथ रखकर इतनी बडी कसम खाई ? खुदा का दिया आपके पास सब कुछ है।

सयोग से तीन-चार दिनो बाद ही सेठ के लडके को गर्दन तोड (मैनेनजाइटीज) बुखार हो गया और वह दूसरे दिन ही चल बसा। उस घर मे तो शोक हुआ ही, परन्तु अशरफ भी दुखी होकर रोने लगा कि शायद उसके कारण से यह सयोग बना।

दो-तीन दिन के बाद सेठ हीरे की पुडिया लेकर अशरफ के पास आया और उसके गले लगकर बिलख-बिलख कर कहने लगा "अशरफ भाई, मेरे मन मे लालच समा गया और मैने बेटे से अधिक धन को तौला किन्तु भगवान के घर मे देर है, अधर नहीं। मेरी पत्नी एक प्रकार से विक्षिप्त सी हो गयी है और जोर-जोर से चिल्लाती है कि मेरे ही पापाचार ने बेटे के प्राण ले लिये।'

दान

एक दिन किसी मित्र के साथ एक सभा देखने गया वहाँ के कमरों की शीशे जालियों पर बड़े-बड़े अक्षरों में उनके द्वारा प्रदान की घोषणा लिखी हुई थी। जब मैंने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा तो वे कहने लगे कि पिछले वर्ष यह चारों पंखे हमने ही दिये हैं। मुझे ऐसा लगा कि वे यहाँ आने वालों में से अधिकांश लोगों से यही बात दोहराते हैं। मैंने हँसकर कहा कि यह तो इतने बड़े बड़े अक्षरों के विज्ञापन से ही पता चल जाता है। देखा कि मेरी बात सुनकर वे कुछ झेंप-से गये थे।

वैसे दान देकर नाम बड़ाई सभी व्यक्ति चाहते हैं। परन्तु इसकी भी एक सीमा होनी उचित है। आज, अधिकांश दानी सौ देकर पांच सौ का नाम चाहते हैं परन्तु आज से चार सौ वर्ष पहले अकबर बादशाह के प्रधान मन्त्री अब्दुल रहमान रहीम को किसी ने पूछा था कि आप दान देते समय आँखें नीची क्यों रखते हैं ? इस पर उस दानवीर का जवाब था कि-

"देनहार कोउ और है भेजत है दिन रैन।
लोग भरम हम धरैं याते नीचे नैन॥"

खानखाना अब्दुल रहीम अद्भुत दानी थे परन्तु उस तरह

के शुद्ध व्यक्ति विरले ही होते है। इस सन्दर्भ म विभिन्न समय के तीन चित्र उपस्थित करता हूँ।

देश के प्रसिद्ध नेता श्री प्रकाशजी के पूर्वजो मे दो सौ वर्ष पहले इसी प्रकार के दानवीर हो गये है। उनके यहाँ बीसों नौकर, मुनीम-गुमाश्ते थे, जिनका वेतन था, एक रुपया से दस रुपया माहवार। एक बार लगातार दो वर्षो तक अकाल पडा, चीजो के दाम महँगे होते गये। सर्वसाधारण के भूखो मरने की नौबत आ गयी। शाहजी ने एक दिन तीन-चार मुनीमो को बुलाकर कहा कि बहुत दिनो से तहखाने मे पड़ी रहने के कारण अशर्फियाँ गीली हो गयी है इसलिये उनको धूप में सुखा लो। शाम को तौलने पर अशर्फियाँ उतनी ही रहीं, भला सोने की क्या सुखता? शाहजी ने बनावटी गुस्सा करते हुए उनको कहा, "तुम लोग कुछ काम करना नहीं जानते, कल इनको अच्छी तरह से सुखाओ। इशारा स्पष्ट था। दूसरे दिन अशर्फियाँ एक पाव कम थीं, शाहजी खुश थे। सूखी हुई अशर्फियाँ वापस तहखाने रख दी गयीं। इसी तरह, जब तक वे जीये, जरूरतमन्दो को गुप्त-रूप से हर प्रकार की सहायता देते रहे। यहाँ तक की एक हाथ का दिया दूसरे हाथ को भी पता नहीं चलता। लोग उन्हें झक्की समझते और प्यार और हंसी मे 'झक्कडशाह' कहने लगे। इनके परिवार वालों ने बडाबाजार के प्रसिद्ध मनोहरदास कटरा के साथ-साथ धर्मतल्ला के मैदान मे मनोहरदास तालाब बनवाया था। इसके चारो तरफ की छतरियो मे

आज भी सैकड़ों व्यक्ति धूप और वर्षा में आश्रय लेते हैं और इनके द्वारा छोड़ी हुई गोचर भूमि में सैकड़ों जानवर चरते रहते हैं।

इस प्रसंग में, रामगढ़ (शेखावाटी) के एक सेठ की बात याद आ जाती है। पौष-माघ में, इस क्षेत्र में बहुत ज्यादा सर्दी पड़ती है। कभी-कभी तो रात में बाहर रखा हुआ पानी जम कर बर्फ हो जाता है। ऐसी ही एक रात में सेठ जी ने गीदड़ों की 'हुँआ-हुँआ' सुनी। दूसरे दिन पण्डितों को बुलाकर पूछा तो उन्होंने बताया कि ज्यादा सर्दी के कारण वे सब ठिठुर रहे हैं। गीदड़ों की संख्या पूछने पर चौदह-सौ, पन्द्रह सौ बता दी और उतनी ही रजाइयों की आवश्यकता भी। सेठ जी ने थोड़े गुस्से से कहा कि महाराज ऐसा अंधेर क्यों करते हैं। पन्द्रह सौ में पाँच सौ बच्चे भी तो होंगे, उनको अलग रजाई की क्या दरकार है? वे तो माँ-बाप के साथ ही सो जायेंगे।

खैर, दो-तीन दिनों में ही एक हजार रजाइयाँ भरवाकर पण्डितों की मार्फत भेज दी गयीं। सेठ जी मित्रों और सेठानी को हँसकर कह रहे थे कि मुझे ठगना सहज नहीं है, देखो किस प्रकार पाँच सौ रजाइयों की बचत कर ली!

दूसरी बात फिर गीदड़ों की दर्द भरी पुकार सुनकर सेठ जी की नींद उचट गयी। पण्डितों को बुलाकर पूछा गया तो उत्तर मिला कि श्रीमान! रजाइयों से सर्दी तो मिट सकती है परन्तु पेट की भूख नहीं, बेचारे कई दिनों से भूखे हैं इसलिये रो रहे

हैं। दूसरे दिन बहुत-सा हलुआ पूड़ी बनवाकर भेज दिया गया। परन्तु अगली रात फिर वही आवाजें आयीं। लिहाजा, फिर पण्डितो को बुलाया गया। इस बार हँसते हुये उन्होने कहा—"सेठ जी! वे अच्छी तरह खा-पीकर आराम से रजाइयाँ ओढ़कर बैठे हैं। आपको आशीवाद दे रहे हैं और रोज इसी तरह देते रहेंगे।

मुनीमा ने सेठ जी को बहुतेरा कहा कि इन पण्डितों ने आपको ठग लिया है, भला, कहीं गीदड़ भी रजाइयाँ ओढ़ते है या पगत लगाकर हलुआ पूड़ी खाते है? परन्तु सेठ जी किसी तरह यह स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। शायद, मन मे तो वे भी जानते थे। परन्तु उनको इस प्रकार के कार्यों से एक नैसर्गिक आनन्द मिलता था और इस बहाने गाँव के गरीब ब्राह्मणो के पास कुछ चीजें पहुँच जाती थीं।

ये बातें सौ डेढ सौ वर्ष पहले की हैं, परन्तु इन दिनों मे भी ऐसे व्यक्ति हुए है। मेरे मित्र श्री महावीर त्यागी ने भारत सरकार के तत्कालीन खाद्य मन्त्री स्वर्गीय रफी अहमद किदवई की एक घटना सुनायी थी। जिसे सुनकर वहाँ बैठे हुये मित्रों की आँखें गीली हो गयी।

एक दिन किदवई जी की नई दिल्ली की कोठी मे ५-६ मित्र बैठे थे, एक पुराना काग्रेस कार्यकर्त्ता आकर उदासी भरे लहजे में कहने लगा—"रफी भाई! लड़की बडी हो गयी है, विवाह तय हो गया है, तीन हजार की जरूरत है इससे कम में

किसी तरह भी काम पार नहीं पड़ेगा।" रफी साहब के पास अपना तो था ही क्या ? परन्तु उनके कुछ ऐसे मित्र थे जो उनकी ऊल-जलूल फर्माइशों को पूरी करते रहते थे। खैर, उसको तीन हजार रुपये दिला दिये।

उसके जाने के बाद स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने कहा—"रफी तुम भी अव्वल दर्जे के बेवकूफ हो, फिजूल में रुपये ठगा बैठे। उस साले की शादी तो हुई ही नहीं, फिर यह बेटी कहाँ से आ टपकी ?' किदवई जी ने मंजूर किया कि वे भी जानते हैं कि न तो उसकी शादी हुई है और न उसके बेटी ही है। फिर तो त्यागी जी ने किदवई जी को बुरा-भला कहना शुरू किया—"वजारत से कुल बाइस सौ रुपये मिलते हैं, वे तो नवाब साहब पाँच चार दिनों में खर्च कर दिया करते हैं।" फिर मित्रों से मांग तांगकर इन लफंगों को देते रहते है। भला, यह भी कोई बात हुई ?"

देखा गया कि किदवई जी की आँखों में आँसू आ गये, कहने लगे, "भाई मेरे, यह बेचारा जरूर किसी आफत में पड गया होगा तभी तो बेटी की शादी का नाम लेकर रुपया मांगने आया था। भला, में उसको बेईमान साबित करने बैठता या मुसीबत मे थोडी सी सहायता करा देता ? जिनसे दिलाता हूँ, वे तो लखपति-करोड़पति है। उनके लिए १०-२० हजार में क्या फर्क पडता है।"

कहते हैं कि जब पंडित नेहरू स्वर्गीय किदवई जी के गाँव गये और उन्होंने टूटे खपरैलों का उनका छोटा-सा मकान देखा तो उन्हें रुलाई आ गयी। चारों तरफ गरीबी और अभाव नजर आ रहा था। उन्होंने बेगम से पेंशन लेने को बहुतेरा कहा परन्तु उसका जवाब था, "जवाहर भाई, मुझे ऐसे शख्स की बेवा होने का फख्र हासिल है जिसने अपनी सारी जिन्दगी फाका—मस्ती में गुज़ार दी परन्तु उम्र भर दोनों हाथों से जरूरतमन्दों को दिया ही दिया। भला, अब मैं जिन्दगी के आखिरी दिनों में सरकार से पेंशन लेकर क्या करूँगी ? आखिर मेरा अकेली का खर्च ही कितना है ?"

ॐ

बलजी भूरजी

आज से सत्तर अस्सी वर्ष पहले राजस्थान के शेखावाटी अचल मे बलजी भूरजी धाडेतो (डाकुओ) का बड़ा दबदबा था। लोग उनके नाम सुनकर ही कापने लगते। ऐसे भी घटनाए सुनने मे आयीं कि १००-१५० बारातिया के हथियारो से लैस दल को बलजी-भूरजी के ५-६ साथिया के सामने अपना सामान और धन दौलत रख देना पडता था।

जो भी हो, उनका एक नियम था, उन्होने कभी ब्राह्मण, हरिजन, गाव के बहन बेटी अथवा दु खी दरिद्र को नहीं सताया। इनके प्रति वे इतने सदाशय रहे कि कई बार तो प्राणों की बाजी लगाकर या गिरफ्तारी की जोखिम उठाकर भी वे गरीब ब्राह्मणो की कयाओ के विवाह मे मायरा (भात) भरने के लिये आया करते थे।

कुछ वर्षों बाद, उनके नाम का नाजायज फायदा उठाकर नानिया नाम का एक रूँगा (राजस्थान की एक नीच जाति) अपने को बल्जी बता कर निरीह लोगों को सताने लगा। इस बात की चर्चा बलजी-भूरजी तक भी पहुची, किन्तु उन्होने इसे गम्भीरता से नहीं लिया।

इसी बीच एक वारदात हो गयी। बिसाऊ नाम का कस्बा

शेखावाटी के उत्तरी कोने मे है। यहां के सेठ खेतसीदास पोद्दार अत्यन्त सरल और धर्मप्राण व्यक्ति थे। उनके दान-पुण्य की चर्चा पास पडौस के अचल मे फैली हुई थी। लोग उनका नाम बड आदर के साथ याद किया करते थे जरूरतमन्दो को वे गुप्तरूप से सहायता करते, नाम या शोहरत की उन्होने परवाह कभी की नहीं।

एक दिन सेठ जी अपने चीलिये ऊट पर सवारी कर पास के गाँव मे रिश्तेदारी मे जा रहे थे। उनके इस ऊट की चर्चा आस-पास गावो और कस्बो में थी। वह सवारी मे जितना आरामदेह था, उतना ही चाल मे चील की तरह तेज था इसीलिये उसका नाम चीलीया पड गया था। आमतौर से सेठजी के साथ सफर मे हमेशा एक-दो ऊट या घोडे और दो-चार सरदार रहते थे। किंतु, सयोग की बात ह कि उस दिन वे अकेले ही थे

पौष की सध्या था। हल्की सर्दी पडने लगी थी, झुटपुटा हो चला था। सेठजी ने देखा कि कुछ दूर रास्ते के किनारे एक अर्धनग्न वृद्ध उन्हें रुकने का सकेत कर रहा है। तेजी से ऊट बढाकर वे उसके पास पहुचे।

पूछने पर पता चला कि वह भी उसी गाँव जा रहा है जहाँ सेठजी जा रहे थे। पैर मे मोच आ गयी इसलिये लाचारी से बैठ जाना पडा। जाना जरूरी है, यदि सेठजी उसे साथ ले लें तो बडी कृपा हो।

सेठजी ने ऊट को जैका (बैठा) लिया और सहारा देकर वृद्ध को अपने पीछे बैठाकर ऊट को आगे बढाया।

थोडी देर मे ही उन्हें पीछे से जोर का एक झटका लगा। वे ऊट पर से नीचे गिर पडे। दौडते हुये ऊट पर से गिरने के कारण एक बार तो उन्हें गश आ गया किन्तु किसी तरह से वे सम्हल गये। एक पैर की घुटने की हड्डी टूट गयी, पीडा जोरों से बढने लगी।

ऊट स्वामीभक्त था और समझदार भी। बहुत मारपीट और खींचातानी पर भी वह आगे नहीं बढा। अड गया और टरडाने (आवाज करने) लगा।

सेठजी ने देखा, ऊट के सवार की सफेद दाढी-मूछें हट चुकी थीं, उसकी शक्ल बडी भयावनी दिखाई दे रही थी। असह्य पीडा से वे विकल हो रहे थे फिर भी स्थिति समझने में उन्हें देर नहीं लगी। उन्होंने सवार से कहा "तुम्हारा परिचय जानना चाहूगा।

डाकू ने मूछों पर हाथ फेरते हुये प्रसन्नता से अट्टहास करते हुए कहा—"मैं बलजी का आदमी हूँ, उनका मन इस ऊट पर बहुत दिनो से था, पर मौका नहीं लग रहा था। अब आप या तो इस ऊट को अपने संकेत से मेरे साथ जाने के लिये राजी कर दें, नहीं तो मुझे आपको इस दुनिया से उठा देना पड़ेगा।"

सेठजी बडे ममाहित हुये, उन्हें बलजी-भूरजी से इस प्रकार के धोखे की कल्पना नहीं थी। उन्हें सहसा विश्वास भी नहीं

हो पा रहा था। उन्होने कहा कि बालाजी-भूरजी डाकू जरूर है पर इस ढग की धोखेबाजी उन्होंने की हो, ऐसा सुनने में अब तक नहीं आया। मुझे इस बात मे कुछ धोखा सा लगता है। खैर, तुम जो कोई भी हो तुम्हें जीण माता की सौगन्ध है कि आजकी इस घटना की बात कहीं भी न कहना। तुम चाहो तो ऊट के साथ सौ-दो सौ रुपये और दे दूगा।

डाकू ने देखा कि उसका पाला एक अजीब आदमी से पडा है। ऊट तो जा ही रहा है, कुछ रुपये देने को तैयार है। ताज्जुब तो यह है कि इस घटना के बारे मे चुप रहने की शर्त रखता है।

कुछ असमजस से उसने सेठजी से शर्त को समझाने के लिए कहा। सेठजी ने बताया कि वे डरते है कि इस घटना की चर्चा यदि फैली तो भविष्य मे लोग अपरिचित वृद्धो या असहाय राहगीरो की सहायता करने से डरेंगे। उन्हें इसमे धोखा नजर आएगा। मनुष्य का अपनी ही जाति पर से विश्वास उठ जाएगा। तुमने बेकार ही इतना सब किया। तुम्हें ऊट इतना अधिक पसन्द था, मुझसे यू ही माँग लेते।

इतनी बातें सुनने पर भी डाकू ने सेठजी से ऊट को चलाने के लिये इशारा देने को कहा। सेठजी ने इशारा किया और ऊट चल पडा। डाकू ने उन्हें उसी घायल हालत मे बियावान जगल मे छोड दिया।

दूसरे दिन सेठजी को ढूढते हुए लोग वहाँ पहुचे और उन्हें घर ले गयें। क्या हुआ, ऊट कैसे गया, इसकी चचा को उन्होंने टाल दिया।

असलियत बहुत दिनों छिपाये छिपती नहीं। बलजी-भूरजी को सेठजी के ऊट गायब हो जाने की खबर लग गयी और यह भी पता चला कि नानिया रूगा के पास वह ऊट है। वे सारी बातें समझ गये।

कुछ ही दिनो बाद सेठजी का ऊट उनके नोहरे मे बधा हुआ मिला। उसके गले मे बधी एक दफ्ती पर लिखा था—"सेठ खेतसीदासजी को बलजी-भूरजी की भेंट। वे डाकू जरूर है पर धोखेबाज नहीं।'

ठीक इसी के दूसरे दिन नानिया रूगा की लाश मुझलू के पास की पहाडी की तलहटी मे पायी गयी।

भूरी की नानी

बात बहुत पुरानी है पर लगता जैसे कल की हो। भूरी की नानी जाति से वैश्य, दुबली-पतली-सी काठी, साँवले रंग और साधारण नाक-नक्शे की थी। प्रौढ़ अवस्था पार कर वह बुढ़ापे की ओर बढ़ रही थी। प्रात ४ बजे से रात्रि के १० बजे तक काम करती रहती। अपना काम तो था ही क्या ? परन्तु लोग उसकी कमजोरी पहचान गये थे। "नानी तुम्हारे बिना यह काम पार नहीं पडेगा' बस इतना कहना ही पर्याप्त था। फिर तो वह काम में जी-जान से जुट जाती और रात दिन एक कर देती।

नानी की बेटी या दोहिती 'भूरी' को शायद ही किसी ने देखा था। दोनो बहुत पहले ही मर गयी थीं। परन्तु भूरी का नाम सुनकर उसे ३० वर्ष पहले की एक बालिका की याद आ जाती और आँखें गीली हो जातीं। अब तो वह बच्चों से लेकर प्रौढ़ों तक सब की नानी बन गयी थी।

प्रति वर्ष गर्मी मे गाँव के लोग बदरी-केदार की यात्रा पर जाते। रास्ते बीहड थे। आवागमन के साधनों के अभाव मे नाना प्रकार के कष्ट झेलने पडते थे। परन्तु "गया बदरी काया सुधरी" की एक ऐसी मान्यता थी कि बिमार और वृद्ध व्यक्ति भी इस विकट और दुर्गम यात्रा के लिये तैयार हो जाते थे।

महीना पहले से ही साथ ले जाने वाले सामान की तैयारी होने लग जाती जैसे गरम कपड़े, छाता मूसा साग, पीने मीठे पक्वान, लौंग, जावित्री, जायफल, आदि। पास पड़ोस के लोगो से मिलकर क्षमा-याचना भी कर ली जाती कि शायद वापस आना न हो सके।

उन दिना नौकरा का २) रु० माहवार वेतन भी लोगों को भारी लगता था। अत यात्रा मे सब लोग आपस म मिलकर सारा काम कर लेते थे। वैसे तो एक गाव के यात्रिया की सख्या ४०-५० तक हा जाती थी परन्तु वे सब ५-७ दलो मे बँट जाते। यात्रा के बहुत दिनों पहले से ही भूरी की नानी से लोग वचन ले लेते कि वह उनके साथ आयगी। क्योंकि, सिवाय खाने के उसे और कुछ देना नहीं पड़ता था और काम करती चार आदमियों के बराबर। इसके सिवा कई बार उत्तराखण्ड की यात्रा कर चुकी थी, अत एक अच्छे 'गाइड' का काम कर देती थी। कौन सी चट्टी मे ठहरने की सुविधा है, कहाँ देखने योग्य क्या क्या है—यह सब उसे भली भाँति मालूम था।

नानी जिनको पहले वचन दे देती उनके ही साथ जाती। उसके बाद नजदीक के सम्बन्धियों के दबाव पर भी अपनी बात नहीं बदलती।

लगभग ३० वष पहले हम लोग बदरी-केदार गये थे। भूरी की नानी को हमने पिछले वष से ही कह रखा था-इसलिये वह हमारे दल के साथ थी।

ऋषिकेश से ही पैदल, टट्टू पर अथवा डाडी मे जाना पडता था। उन दिनों साबित रुपये को भुनाना आज के एक सौ के नोट के बराबर होता था। सामान ढोने के लिये लोग कुली नहीं करते। अपना-अपना बोझा स्वय लेकर चलते थे। शुरू के दिनो मे तो सभी राजी-खुशी जाते परन्तु बाद मे किसी को दस्त, किसी को बुखार या किसी को सिर-दर्द की बीमारी हो जाती। तब नानी अपनी गठरी के अलावा बीमार व्यक्तियों का बोझा भी जिद करके ले लेती।

सात-आठ मील चलने के बाद लोग जब लोग चट्टी पर पहुचते तो थकावट से चूर-चूर होकर लेट जाते। जितने ज्यादा पैर दुखते, उससे कहीं अधिक पेट की भूख बडी हुई होती। ऐसी हालत मे खाना बनाना भी एक समस्या थी। परन्तु नानी को कहने की आवश्यकता नहीं पडती। चूल्हे पर दाल चढाकर आटा गूँधने बैठ जाती। कभी-कदास हमलोग पूछते, "नानी, कितनी बार बदरी आ चुकी हो ?" उत्तर मे वह दोनों हाथो की ८ या ६ अगुलियाँ दिखा देती। वह कहती की मुँह से कहने पर 'पुन्न' घटता है।

जैसे-जैसे ऊपर पहुँचते सर्दी बढने लगती। नानी के पास ओढने के दो कम्बल और बिछाने की एक चादर थी। जोशी मठ पहुचने के पहले ही उसने अपना एक कम्बल किसी दक्षिणी साधु को दे दिया। जब हम जोशीमठ पहुँचे तब रात हो गयी थी। थोडी वर्षा भी शुरू हो गयी थी। चट्टी के बरामद मे

एक वृद्धा सर्दी से ठिठुर रही थी। भूरी की नानी ने अपना बचा हुआ कम्बल उसको ओढा दिया। साथ वालों ने इस पर उसे बहुत बुरा-भला कहा।

सर्दी से बचाव के लिये साथ की एक महिला ने उसे अपना एक कम्बल उधार दे दिया।

जहाँ भी हमलोग पहुँचते, पता नहीं क्यों भूखे व नगे लोग उसे ही घेरे रहते। हनुमान चट्टी पहुचते तब तक सर्दी बहुत बढ गयी थी। नानी ने उधार लिया हुआ कम्बल एक गरीब महिला यात्री को दे दिया। जिसका कम्बल था वह गाली-गलौज पर उतर आयी। "पास नहीं धेला, चली है दानी-कर्ण बनने को।" दूसरे लोग शायद बीच-बचाव करते परन्तु वे सब भी नानी की इस आदत से खिंचे हुये थे।

वैसे रसोई बनाते समय दोनो वक्त दो-चार व्यक्तियों को चुपचाप रोटी दे देती थी और यह बात बर्दाश्त भी कर ली जाती। लेकिन धीरे-धीरे किसी की जाकेट कम होने लगी तो किसी की चद्दर, जिन्हें नानी दूसरे जरूरतमन्द लोगों को चुपके से दे देती थी।

मैंने देखा कि उसे लोग चोट्टी तक कहे जा रहे थे और वह सबके कटु-वाक्य चुपचाप सुन रही थी। उसकी आँखों से अश्रु धारा बह रही थी।

अगले दिन नानी को दल से एक प्रकार अलग सा कर दिय गया। जब दूसरे साथी पीछे रह गये, मैंने उससे पूछा कि उसने

ऐसा काम क्यों किया ? थोडी देर बाद उदास मनसे कहने लगी, "इन लोगा के पास तो जरूरत से ज्यादा कपड है पर जिनको दिया गया है वे सर्दी से ठिठुर रहे थे। बच्चों के साथ भला वे इस प्रकार की ठढक कैसे सह पाते ? मैं देश जाकर मजदूरी करके इन सबकी कीमत चुका दूँगी।

सोचने लगा कि नानी ने न तो मार्क्स पढा है और न एन्जिल्स्। फिर पता नहीं किस प्रकार से इन अपरिग्रह व समता के सिद्धान्तों का उसे ज्ञान हो गया। शायद, मानवीय सवेदना सिद्धान्तों की मुखापेक्षी नहीं होती। सहज करुणा की अनुभूति किसी भी पुस्तकीय ज्ञान से बडी है।

लौटते समय भी वह रसोई वगैरह का काम तो उसी प्रकार से करती रही, परन्तु अब उसमे वह उत्साह नहीं रह गया था। सदैव उदास, डरी डरी और सहमी हुई-सी रहती। जब भी दो-चार व्यक्ति कोई बात करते तो वह समझती कि उसकी ही चर्चा हो रही है।

हरिद्वार आने पर कुछ लोग मथुरा-वृन्दावन चले गये, कुछ वापस राजस्थान। सबने आपस मे एक दूसरे से क्षमा-याचना की, आलिंगन किया। परन्तु नानी सबसे अलग एक कोने मे खड़ी थी, उससे बातचीत करने की शायद किसी ने जरूरत ही नहीं समझी। लोगों ने यह भी नहीं पूछा की उसके पास वापस देश जाने के लिये खर्चा है या नहीं!

जायें। उन दिनों पुत्र का देना अपमानकारी बात मानी जाती थी खास करके माता किसी प्रकार भी तैयार नहीं होती चाहे उसके यहाँ पूरा खाना कपड़ा भी न हो।

बहुत आरज़ू मिन्नत के बाद भी उन लोगों को निराश वापस लौटना पड़ा।

फतहपुर (शेखावाटी) के पास एक टीले पर नाथ सम्प्रदाय के एक महात्मा रहते थे। सब प्रकार से निराश होकर एक दिन वे उनकी शरण में गये और पैर पकड़कर रोने लगे।

कहते हैं कि नाथजी महाराज वचन सिद्ध थे। उन्होंने कहा कि अकाल का वर्ष है। भूखे-नंगे बच्चों का पालन करो, भगवान तुम्हारी सुनेगा।

अपने गाँव आकर वे एक बड़े नोहरे मे गरीबों के भूखे बच्चों को खिलाने पिलाने लगे। दोनों पति-पत्नी सारे दिन उनकी देख-भाल करते रहते। होली दिवाली पर उनके लिए नये कपड़ और मिठाई बनाते।

भगवान की कृपा से एक वर्ष के भीतर ही उनके घर में पुत्र जन्म हुआ। उस अवसर पर सेठजी ने जी खोलकर दान-धर्म और पूजा-पाठ किया। सारे गाँव मे मिश्री बादाम भेजे।

बच्चे को लेकर वे नाथजी की सेवा मे गये। महाराज ने कहा कि आप दोनों की अवस्था भगवान के भजन करने की है। ससार की मोह-माया मे जितना कम पड़ोगे उतना ही अच्छा है।

सेठ-सेठानी उस समय इतने हर्ष विभोर थे कि नाथजी की इस गूढ बात पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया।

सुख के दिन बीतते देर नहीं लगती। देखते-देखते निहारी सोलह वर्ष का हो गया, बहुत ही सुन्दर, स्वस्थ, शिक्षित और विनयी।

दीपावली के बाद वे प्रतिवर्ष महाराज के पास धोक खाने को निहारी के साथ जाते थे। उस बार उन्होंने जब उसके विवाह करने की आज्ञा चाही तो नाथजी ने टाल-मटोल कर दी और कहा कि इतनी जल्दी क्या है?

लाड-प्यार का इकलौता बालक था। सेठ-सेठानी कभी उसे आँखों से ओझल नहीं होने देते। कभी-कदास उसका पेट या सिर दुखने लगता तो वैद्य-डाक्टरों से घर भर जाता। परन्तु कहते हैं कि मृत्यु सौ रास्ते बना लेती है।

राजस्थान में जिस दिन अच्छी वर्षा हो जाती है, लोग हर्ष विभोर होकर जोहड-तालाब में कितना पानी जमा हुआ है, यह देखने को जाते हैं। पानी को सिर से लगाकर आचमन करते हैं।

ऐसे ही एक दिन बिहारी मित्रों के साथ गाँव के जोहड़े पर गया था। आचमन करते समय पैर फिसल गया और क्षण भर में ही जलमग्न हो गया। बहुत बड़ा तालाब भी नहीं था, परन्तु साथियों के बहुत प्रयत्न करने पर भी कुछ फल नहीं निकला।

सेठ-सेठानी का बुरा हाल था। पागल से हो गये, तालाब में डूबने के लिये जिद करने लगे, लोगों ने मुश्किल से पकड़ रखा।

दूसरे दिन दोनों महाराजजी के टीले पर आकर उनके पैर पकड़कर बैठ गये। धाड़ मार कर रोते हुए कहने लगे कि आपने हमें इस बुढ़ापे में उल्टा दुखी कर दिया, इससे तो अच्छा होता कि हमारे पुत्र पैदा ही न होता।

महाराज ने समझाने का प्रयत्न किया कि जो कुछ होता है सब ईश्वर की इच्छा से होता है, मनुष्य को उसे शिरोधार्य करना ही चाहिये। बिहारी से तुम्हारा इतने दिनों का ही सम्बन्ध था।

बहुत विनती-प्रार्थना पर महाराज ने कहा कि गरीब और अनाथ बच्चों के लिये एक स्कूल खोलकर उनकी पढ़ाई और रहने-खाने की व्यवस्था करो, शायद उन सब में तुम्हें बिहारी मिल जाय।

सेठ जी ने अपने एक मकान में इस प्रकार के छोटे बच्चों का एक स्कूल खोल दिया। दोनों पति-पत्नी दूसरे सारे कामों को छोड़कर सुबह से शाम तक उनकी शिक्षा, देख-भाल और खाने पिलाने की व्यवस्था करने लगे।

बच्चे उनसे इतने हिल-मिल गये कि उन्हें 'माताजी, 'पिताजी' कहने लगे। वे कभी उनकी गोद में आकर बैठ जाते

तो कभी पीछे से आकर आँखें वन्द कर देते। कभी कदास कोई वच्चा बीमार हो जाता तो उनके हाथ से दवा लेने की जिद करने लगता।

सदा की भाँति, दीपावली के वाद वे दोनों दर्शन और चरणस्पर्श के लिये महाराज के पास गये। उन्होंने पति-पत्नी को सुखी रहने का आशीष दिया और हाल चाल पूछा।

सेठ-सेठानी का उत्तर था, "महाराज आपके आदेश का हम पालन कर रहे है। अव हम सुखी है, परम सुखी। हमें पाठशाला के बच्चों मे अपना बिहारी मिल गया है।"

❀

लक्ष्मी बहन

बचपन मे देखते थे कि माँ और चाची जब बडी-बूढियों के पैर छूतीं तो उन्हें सात पूत की माँ होने की आशीष मिलती हमारे मोहल्ले मे एक माँजी थीं। उसके सात लड़के, उनकी बहुएँ और बहुत से पोते-पोतियाँ थीं।

वार-त्यौहार पर सधवा स्त्रियाँ उनसे आशीवाद लेने के लिये जाती थीं, क्योंकि सात पुत्रों की माँ होना उस समय गौरव और शुभ--लक्षणों की बात मानी जाती थी।

ऐसा लगता है कि उन दिनों जमीन के अनुपात मे जन--सख्या बहुत कम थी। यान्त्रिक खेती थी नहीं, इसलिए हर प्रकार के उत्पादन के लिए ज्यादा आदमियो की आवश्यकता रहती थी। इसके सिवाय, छोटे-छोटे राज्य थे, जिनमें आपस मे आये दिन लडाइयाँ होतीं और उनमें भी लडने के लिए सिपाहियो की जरूरत रहती।

विधवा और बाँझ महिला को अशुभ माना जाता था। परदेश विदा होते समय यदि सयोग से कभी इस प्रकार की स्त्री रास्ते मे मिल जाती तो बुरा मुहूर्त समझ कर वह यात्रा स्थगित कर दी जाती। विदा के समय सगी चाची या ताई भी अगर

विधवा होती तो सामने आकर आशीष नहीं देती थी। इसी सन्दर्भ मे उन दिनों की एक घटना मुझे याद है।

हमारे मोहल्ले मे लक्ष्मी बहन सर्वमान्य और सर्वप्रिय थी। छोटे-बडे सब उसका आदर करते थे। अपने माता-पिता की वह पहली सन्तान थी। उसके बाद लगातार पाँच पुत्र हुए और घर मे धन-सम्पदा भी बढ़ती गयी।

उन दिनो, लडकियो के विवाह बचपन मे ही हो जाते थे। परन्तु लक्ष्मी अपने पिता की लाडली बेटी थी। इसलिए, वे १४ वर्ष तक उसे बालिका ही समझते रहे। आखिर, बहुत खोज-बीन के बाद एक सम्पन्न परिवार मे शादी तय हुई। विवाह में माता-पिता ने दिल खोलकर खर्च किया। वर-पक्ष को बहुत बडे दहेज के सिवाय, लडकी को कीमती गहने-कपड़ो से लादकर विदाई दी। उसकी सास का तो विवाह से पहले देहान्त हो गया था। ससुराल मे जेठानियाँ थीं। उसके रूप और धन से उनको ईर्ष्या होने लगी। उसे हर समय उनके कटु वचन सुनने पडते। उन सबको खुश करने के लिए वह रात-दिन काम मे जुटी रहती। पीहर से जो चीजें आतीं, वे सब उनके पास ही भेजती, परन्तु उनको इसमे भी लक्ष्मी के पिता के धन का दिखावा नजर आता।

तीन-चार वर्ष तक जब उसके सन्तान नहीं हुई तो उन्होंने देवर के कान भरने शुरू कर दिये कि वह बाँझ है। दूसरी

शादी करनी चाहिए। पति अपनी बीमारी के बारे में जानता था। परन्तु पुरुष भला अपना दोष कब स्वीकार करता है ?

लक्ष्मी जब पीहर आती तो बहुत ही उदास और मुरझायी हुई रहती। माता और भौजाई के बहुत पूछने पर भी बात टाल देती। थोडे दिनों बाद क्षय रोग से उसका पति मर गया। उस समय तक यह रोग असाध्य-सा माना जाता था। अठारह वर्ष की अवस्था में लक्ष्मी विधवा होकर रोती-बिलखती पिता के घर आ गयी। उसके बाद भी दो-एक बार ससुराल गयी थी। परन्तु उसके साथ वहाँ बहुत अशोभनीय व्यवहार किया गया, तरह-तरह की भद्दी गालियाँ दी गयीं। शुरू से ही वह स्वाभिमानी स्वभाव की थी और मान-सम्मान के वातावरण में पली थी। इसलिए सारे गहने और कपडे उन्हें सौंपकर केवल एक साडी पहने पिता के घर आ गयी। इसके बाद, ससुराल वालों ने कभी खोज-खबर नहीं ली।

कुछ वर्षों बाद माता-पिता का देहान्त हो गया। अब लक्ष्मी बहन ही उस सम्पन्न परिवार की वास्तविक मालकिन थी। भाई और भाभियाँ उसकी हर इच्छा को आज्ञा की तरह मानकर चलते।

सुबह से शाम तक साधु-सन्यासी, गरीब और जरूरतमन्द उसे घेरे रहते। सबको प्रेमपूर्वक उत्तर देती और सहायता करती। अपनी कोई सन्तान नहीं हुई, परन्तु गरीब ब्राह्मणों की कन्याओं के बहुत से विवाह सम्पन्न कराये, जिसमें कन्यादान

अपने हाथों कराया। विवाह के बाद भी वार-त्यौहार पर उनको बुलाती रहती।

राजस्थान के उस इलाके में कई बार अकाल पड जाते थे। उन दिना लक्ष्मी बहन को उसके भाइयो के आसामी घेरे रहते। किसी को अपने कर्ज की अदायगी मे मोहलत चाहिये तो किसी को नया कर्ज। उसके पास से निराश होकर शायद ही कोई लौटता था। कभी कभी भाई नाराज भी होते, परन्तु बहन की बात टालने की हिम्मत उन्हें नहीं होती। अपने माँ बाप से बच्चे नहीं डरते थे, पर क्या मजाल कि बुआ के सामने कुछ भी गलत सही बात करें या झगडा-झमट करें। कभी-कदास आपस मे लड लेते तो दोनों पक्ष उसके पास शिकायत लेकर पहुँचते।

समय पाकर भतीजे का विवाह मडा। बारात पास के गाँव मे जाने को थी। निकासी पर वर की घुडचढी के समय आरती करने का नेग बुआ का होता है। वर को उसने ही पाल-पोसकर बडा किया था। वह उसे अपने पेट के जन्मे पुत्र से भी ज्यादा प्रिय था। स्वय विधवा और निस्सन्तान थी, इसलिए अमगल के डर से आरती के लिए उसने किसी दूर के सम्बन्ध की बुआ को बुला लिया था। यहाँ तक तो सब ठीक चल रहा था, परन्तु एक बार वह अपने भतीजे को वर राजा के वेश में सेहरा पहिने हुए देखना चाहती थी। मन मे बहुत दिनो से इसकी साध थी।

सारे नेगचार होने के बाद जब बारात की विदा का समय

आया तो प्रथा के अनुसार घोडी पर चढ़ने के पहले घर बड़-बूढ़ों के पैर छूने लगा। माता पिता के पैर छू कर वह जब बुआ की तरफ आने लगा तो उसके पिता ने रोक लिया। वहन को भी गुस्से में बुरा-भला कह दिया, "इस शुभ वेला में तुम्हें कुछ तो ख्याल रखना चाहिये था। असगुन करने को हर समय बीच में आ जाती हो।"

शायद, एकान्त में समझा कर कहने से वह स्वय ही नहीं आती, परन्तु सैकडा सगे सम्बन्धियों के बीच इस प्रकार के अनधारे अपमान से बुआ का हृदय तिलमिला गया। उसे लगा जैसे वह सिंहासन से उतार कर कीचड़ में गिरा दी गयी है। थोडी देर तक तो फटी-फटी आँखों देखती रही, फिर जोर-जोर से रोते हुए कहने लगी—"वर्षों से तुम्हारे घर में रात दिन मेहनत करती रही हूँ। सर्दी गर्मी की परवाह किये बिना तुम्हारे बच्चों का पाल पोस कर बडा किया है। आज मैं कुलक्षणी और अमगली हो गयी! इसलिए अपने गिरधारी की बारात भी नहीं देख सकती! जिसको मैंने बीस वर्ष तक पाला पोसा है, भला उसका मैं अमगल चाहूँगी? इसके पहले ही मेरी आँखें न फूट जायेंगी!" रोते हुए वह अचेत होकर कटे वृक्ष की तरह गिर गयी।

उसके प्रति लोगों के मन में अटूट श्रद्धा भक्ति थी। इस अप्रत्याशित काण्ड से उन सबके मन में भय सा समा गया। अब तो भाई भी बहुत ही पछता रहे थे, परन्तु कही हुई बात तो

वापस आ नहीं सकती। बारात का मुहूर्त टला जा रहा था, परन्तु वर अन्य मन के साथ बुआ के पास बैठकर बच्चों की तरह रोने लग गया था। बहुत समझाने-बुझाने पर भी उठना नहीं चाहता था। थोडी देर बाद लक्ष्मी बहन को चेत होने पर वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ। सुसंस्कृत और प्रतिष्ठित घराने की बेटी थी। अच्छे-बुरे की पहचान भी पूरे तौर पर थी। शीघ्र ही एक नतीजे पर पहुंच गयी। वर को उठाकर छाती से लगाकर विदा होने का आदेश देकर जल्दी से कमरे में जाकर किवाड बन्द कर लिये।

❀

हजारी दरोगा

राजस्थान के बीकानेर राज्य मे उस समय एक प्रसिद्ध राजा का शासन था। खुशामदी लोग कहते थे कि चोर-डाकू राज्य की सीमा मे घुसने की हिम्मत नहीं करते, अन्नदाता के पास घूसखोर अफ़सरो की शिकायत पहुँचते ही उन्हें बेइज्जत करके निकाल दिया जाता था, आदि। वैसे, इन सब बातो मे कुछ तथ्य भी था। जो भी हो, उन दिनों जनता को अपने अधिकारो के बारे मे जानकारी नहीं थी। यहाँ तक कि तहसीलदार को भी अन्नदाता और मालिक कहकर पुकारते थे। बड ओहदे आमतौर पर राजपूत छुटभैयो को दिये जाते, चाहे वे पढ़े-लिखे बिल्कुल न हों।

ठाकुरो के गाँव मे दूसरी जातिवाले घोड या ऊँट पर चढ़कर नहीं जा पाते थे। बेगार मे मजदूरी ली जाती थी। किसी ठाकुर के मरने पर गाँव के बडे-बूढ़ो को भी सिर मुँडाना पडता था।

दूसरे सब देशो मे गुलामी प्रथा समाप्त हो गयी थी, परन्तु हमारे राजस्थान मे दरोगा जाति के रूप मे बहुत बाद तक यह प्रथा चालू रही। राजाओ और ठाकुरो के विवाह मे दरोगा लडकियो को दहेज मे दिया जाता था। नाम मात्र के लिए

उनके विवाह तो कर दिये जाते, परन्तु वे आमतौर पर कुँवर साहब की उप-पत्नी के रूप मे रहती थीं।

बीदासर के पास के गाँव का एक बड़े ठिकाने का जागीरदार राज्य मे ऊँचे ओहदे पर था, महाराज का मुँह-लगा था, उसे हर प्रकार के अत्याचार करने की छूट थी। लोग तो यहाँ तक कहते थे कि उसके सात खून माफ है। इसी गाँव मे हजारी नाम का दरोगा का लड़का था। बचपन से ही कुश्ती-दंगल लड़ता था। घर मे गाय-भैंस थीं, खाने पीने की कमी नहीं थी। १८ वर्ष की उम्र मे ही पास-पड़ोस मे उसके बल-पौरुष की ख्याति फैल गयी।

एक दिन पास के कस्बे मे एक राजपूत पहलवान आया। पैर मे साँकल डाले सात दिन तक घूमता रहा, किसी की हिम्मत साँकल रोकने की नहीं हुई। लोग हजारी के बाप के पास जाकर कहने लगे कि गाँव की इज्जत का प्रश्न है। हमेशा के लिए यह बात चालू रह जायगी कि अमुक गाँव मे कोई भी मर्द नहीं था। बहुत डरते हुए उसने बेटे को उनके साथ भेज दिया। कस्बे मे जाकर हजारी ने पहलवान के पैर की साँकल रोक ली—जिसका अर्थ था, उससे दंगल करना।

कुश्ती के दिन आस-पास के गाँव के भी हजारों व्यक्ति जमा हो गये। वे सब सहमे-से-थे, कहाँ तो दैत्य-सा पहलवान और कहाँ बेचारा हजारी! जिसकी अभी मसें ही नहीं भीगी थीं।

जोड़ शुरू होते ही लोगों ने देखा कि हजारी ने पहलवान को सिर पर उठा लिया और थोड़ी दूर तक इधर-उधर घुमाकर बड़े जोर से एक तरफ फेंक दिया। फिर तो भिड़ने की हिम्मत ही उसकी नहीं हुई। शर्मिन्दा-सा एक तरफ के रास्ते से बाहर चला गया। वहाँ जो राजपूत सरदार मौजूद थे, उन्होंने इसमें अपनी जाति का अपमान महसूस किया। एक दरोगा के छोरे ने नामी राजपूत घराने के सरदार की हजारों व्यक्तियों के सामने बेईज्जती कर दी! वे लोग ठाकुर साहब के पास शिकायत लेकर गढ़ में पहुँचे। परन्तु उस समय लोगों का रुख देखकर बात आयी-गयी कर दी गयी। फिर भी, वे सब मौका देखकर बदला लेने की ताक में रहने लगे।

थोड़े दिनों बाद हजारी का विवाह हुआ। प्रथा के अनुसार बहू रावले में ठकुरानी जी के पैर छूने गयी। नयी बहू बहुत ही सुन्दरी थी। संयोग से ठाकुर साहब ने उसे देख लिया और खवास को उसे रात में हाजिर करने को कहा। जाति-बिरादरी के लोगों के बहुत समझाने पर भी हजारी बहू को रावले में भेजने को तैयार नहीं हुआ। खवास को एक प्रकार से धमकाकर अपने घर से निकाल दिया। दूसरे दिन गढ़ में उसकी बुलाहट हुई। उसने खवास को गाली—गलौज दी, इसकी कैफियत माँगी गयी। उसका कहना था कि महाराज आप तो मेरे पिताजी की आयु के हैं और गाँव के मालिक होने के कारण हमारे पिता तुल्य है, इसलिए मेरी पत्नी आपकी पुत्री के समान

है। परन्तु इस खवास ने बहुत ही गन्दी बातें कही, इसलिए मैंने भी इसे गस्से मे कुछ कह दिया था।

एक दरोगा के लडके की ठाकुर साहब के सामने ऊँची नजर करके यह सब कहने की हिम्मत न्स जमाने मे अभूतपूर्व घटना थी। कुछ पुरानी अदावत थी ही, मुसाहिबो ने कहा कि महाराज यह तो आँखें दिखाता है और अपनी पत्नी को आपकी पुत्री बनाकर स्वय जँवाई बनता है। इसलिए इसकी आँखें निकाल देनी चाहिए।

ठाकुर साहब गहरे नशे मे थे, हुक्म हुआ, "इसकी आँखो मे लोहे की गरम सलाखें डाल दी जायें।"

उसी समय उसे पकड कर बाँध दिया गया। लोहे की बडी-बडी सलाखें गरम की गयीं और गाँव के सैकडो लोगो के सामने उसकी आँखो मे भोंक दी गयीं। बाप-माँ और पत्नी एक कोने मे खडे उसकी करुणा-भरी चीख-पुकार सुनकर सुबुक रहे थे।

महाराजा को सूचना दी गयी, परन्तु वहाँ से भी न्याय नहीं मिला, क्योंकि ठाकुर उनका ए० डी० सी० था।

हजारी के घरवालो ने सोचा कि अब बहू की इज्जत भी शायद ही बच पाये, इसलिए सब दूसरे गाँव मे जाकर रहने लगे।

बीदासर के एक सेठ उस ठाकुर के मित्र थे। एक दिन वे उनकी न्याय-प्रियता की प्रशसा करते हुए कहने लगे कि हजारी

को दण्ड तो कुछ कड़ा जरूर दिया गया, परन्तु इन छोटी जातिवालो को सिर पर चढ़ाना भी अच्छा नहीं रहता। पद और उम्र मे वे मेरे से बड़े थे, परन्तु मुझे उस दिन कुछ ज्यादा ही गुस्सा आ गया था इसलिए कह बैठा, "आप शायद ठाकुर साहब की हुक्म-उदूली नहीं करते और गावले मे अपनी बहू को भेज देते।' मैंने देखा कि वे मेरी बात सुनकर बहुत ही क्रोधित हो गये है।

मैंने हजारी को सन् १९५७ के शुरू मे देखा था। राजाओ के राज्य समाप्त हो चुके थे। वे भी साधारण लोगो की तरह वोट माँगते फिर रहे थे। उस समय वह ५०-५५ वर्ष का हो गया था। झुर्रियो से भरे चेहरे पर एक असीम शोक की छाया नजर आती थी। दु ख और सन्ताप ने उसे असमय मे ही वृद्ध बना दिया था। पत्नी दूसरे के घर झाड़ू बर्तन का काम करके कुछ कमा लेती थी, जिससे दोनो किसी तरह उदर-पूर्ति करते थे।

विवाह होते ही जो घटना हो गई थी, उससे कुछ ऐसी ग्लानि उन दोनो के मन मे हुई कि उन्होने प्रतिज्ञा कर ली कि ठाकुरों के लिये गुलाम बच्चे पैदा नहीं करेंगे और वे वानप्रस्थियो की तरह रहने लगे।

मेरे साथ उसी कस्बे के कुछ कार्यकर्ता थे, उनका हजारी से अच्छा सम्पर्क था। उनके साथ हजारी के घर गया। जीवनचर्या

के बारे में पूछताछ की। शुरू में तो उस की पत्नी को थोडो सी झिझक हुई, परन्तु कुछ देर के बाद ऐसा लगा कि बहुत दिन पर्दे की ढँकी हुई परत उधेडने में दिल का बोझ हलका हो रहा है। कहने लगी, उस दिन इसकी करुणा भरी चीख सुनकर म तो बेहोश हो गयी थी। होश आया तो देखा कि बडी-बडी सुन्दर आँखों की जगह खून से भरे दो गड्ढे हो गय है। शायद लोहे की सलाखों में कुछ जहर जैसी चीज थी। पास में साधन भी नहीं था कि कुछ दवा पानी करते। किसी तरह नीम के पानी और पत्तों की सेंक से ३-४ महीनों में घाव भरे। इसी दुःख से मेरे सास-ससुर की मृत्यु हो गयी। भला हो, इन गाँव वालों का, जिन्होंने हमें सहारा देकर बचा लिया। मेरे पति को उस घटना से कुछ इस तरह का सदमा पहुंचा कि बराबर रोगी रहने लगा। इस समय भी कभी कभी बरसात की रातों में आँखों में टीस चलती है तो दर्द से चिल्ला उठता है। ठाकुर के तीन तीन जवान बेटे है, गाव की बहू-बेटी की जब चाहे इज्जत ले लेते है। जमींदारी चली गयी, परन्तु जमीनें तो है ही। इसके सिवाय पहले का भी बहुत है। लोग कहते हैं कि परमात्मा के घर मे न्याय है, परन्तु मुझे तो इसका विश्वास नहीं होता।

मैंने देखा कि बात करते हुए, उसकी आँखों से अश्रुधारा बह चली थी।

राजा भी चुनाव लड रहा था, उसी गाँव मे उसकी मीटिंग थी। लोगों ने स्वागत मे तोरण दरवाजे बनाये थे। 'अन्नदाता

की जय', 'पणी गम्मा' आदि कह रहे थे। कांग्रेसी शासन से राजाओं का राज्य अच्छा बता रहे थे। मेरे मन में हुआ कि हजारी को और उसकी बहू को ले जाकर उन सबके सामने मंच पर उपस्थित करूँ।

परन्तु पैंतीस वर्ष पहले की घटना पर अब हजारी को रोष नहीं रह गया था। उसका कहना था कि पूर्व-जन्म के पाप थे, जिससे दरोगा की जाति में हमने जन्म लिया, इसमें दूसरे किसी का क्या दोष दिया जाय ?

अनायास ही उस रागद्वेष रहित समदर्शी के प्रति मेरा सिर झुक गया।

❀

हरखू की माँ

बात शायद ५०-५५ वर्ष पहले की है। उस समय राजस्थान के प्राय: प्रत्येक गाँव में किसी बट या पीपल के वृक्ष पर या किसी सूने कुएँ की सारन (सहन) में भूत-प्रेत या जिन का निवास माना जाता था। गाँव में बहुत से ऐसे व्यक्ति मिल जाते जो कसम खाकर कहते कि उन्होंने अपनी आँखों से एक रात अमुक स्थान पर सफेद कपड़े पहने बड़-बड़े पैरों वाले, वृक्ष की सी ऊँचाई के एक भूत को देखा था।

भूत-भूतनी के सिवाय प्रत्येक कस्बे या गाँव में एक दो डाकी या डाकिन भी होते थे। मुझे अपने गाँव की एक घटना अब भी अच्छी तरह याद है। हरखू की माँ वहाँ डाकिन के रूप रूप में प्रसिद्ध थी। उस समय वह प्रौढावस्था में थी। स्वास्थ्य भी साधारणतया ठीक था। परन्तु लोग डरते थे, इसलिए किसी घर में उसे काम-काज मिलता नहीं था। कमाने वाला कोई था नहीं; भीख माँगकर किसी तरह अपना निवाह करती थी। जब मोहल्ले में आती तो सारे घरों में पहले से ही आने की खबर फैल जाती। स्त्रियाँ बच्चों को छिपा लेतीं और घर के दरवाजे पर से ही जल्दी से अनाज या रोटी देकर वापस कर देतीं। हम बच्चे सहमें हुए से उसे जाते हुए पीछे से देखने का प्रयत्न करते।

उन दिनों गाँवों में डाक्टर-वैद्य तो थे नहीं। बच्चों को 'डब्बा' या अन्य किसी प्रकार की बीमारी होने पर हरलू की माँ पर सन्देह जाता। दो तीन सयाने व्यक्ति जाकर उसका थूक लाकर बच्चों पर छिड़कते थे। उनमें से बहुत से तो अपने-आप ठीक हो जाते, मगर कुछ रोगों के कारण मर जाते। मरने वालों की जिम्मेदारी हरलू की माँ समझी जाती। हरलू की माँ ने भी इस अपमानित जीवन से एक प्रकार का समझौता-सा कर लिया था क्योंकि जीवन-यापन के लिए किसी न किसी प्रकार से अन्न वस्त्र की व्यवस्था करना तो जरूरी था ही।

कई वर्षों बाद अपने गाँव गया था। दूसरी बातों के साथ-साथ हरलू की माँ की भी चर्चा आयी तो पता लगा कि वह बहुत दिनों से बीमार है इसलिए भिक्षा के लिए नहीं आ पाती। उसे नजदीक से जानने की जिज्ञासा तो बहुत वर्षों से थी ही और मेरे लिए अब उसका कोई भय भी नहीं रह गया था इसलिए, लोगों के मना करने पर भी एक मित्र के साथ उसके घर मिलने के लिए गया।

वह गाँव से बाहर एक झोपड़ी में रहती थी। वहाँ जाकर देखा कि एक टूटी सी खाट पर लेटी हुई थी। दो-चार मिट्टी के और अलुमिनियम के बर्तन इधर-उधर बिखरे हुए पड़े थे। कई दिनों से शायद सफाई नहीं की गयी थी इसलिए कूड़ा-करकट भी फैला पड़ा था।

दो तीन बार आवाज देने पर उठी और फटी-फटी आँखों

से हमें देखने लगी। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि कोई उसे भी पूछने के लिए आ सकता है! दुखी मनुष्य को जब सान्त्वना मिलती है तो वह वित हो जाता है। हमें देखकर वह रोने लगी। कुछ कहना चाहती थी, परन्तु हिचकियां बँध गयीं अत कह न सकी। फ्लास्क मे चाय ले गये थे, एक बडे कटोरे में पीने को दी, सब पी गयी। शायद बहुत भूखी-प्यासी थी।

मैंने अपने मित्र को मोहल्ले में से किसी एक मजदूर को लाने के लिए भेजा परन्तु कोई भी उसके पास आने को तैयार नहीं हुआ। मेरे साथ कलकत्ते से एक नौकर आया हुआ था। उसे साथ लेकर शाम को पुन उसके यहाँ गया। साथ में गरम दूध, दलिया तथा साधारण ताकत की औषधि ले गया। जितनी राहत उसे पथ्य और दवा से नहीं मिली, शायद उससे ज्यादा इस बात से मिली कि उस उपेक्षिता के प्रति भी किसी की सहानुभूति है।

दूसरे दिन समझा बुझाकर एक वैद्यजी को ले गया और चिकित्सा शुरू की। उचित पथ्य और दवा की समुचित व्यवस्था से थोड़े दिनों में ही वह स्वस्थ हो गयी। फिर तो कई बार वहाँ गया, उसके प्रति एक आत्मीयता सी हो गयी थी। मन में एक कचोट-सी भी थी कि इस असहाय के साथ अन्ध-विश्वास के वशीभूत होकर, समाज और गाँव के लोगो ने एक बहुत बडा अन्याय किया है।

एक दिन मैंने कहा, हरखू की माँ! मैं तुम्हारे बारे में कुछ

जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ, अगर बुरा न मानो तो मुझे अपने जीवन की सारी बातें बताओ। थोड़ी सी हिचकिचाहट के बाद जो इतिहास उसने बताया, वह इस प्रकार है—

"जब मैं १३ वर्ष की थी तब अमुक गाँव के ठाकुर साहब की बाई-सा के विवाह में दायजे में दे दी गयी। उनकी ससुराल में आकर मेरा विवाह वहाँ के एक दरोगा के लड़के के साथ कर दिया गया। हम दोनों पति-पत्नी रावले की चाकरी में रहते थे। साधारण खाने पहिनने को मिल जाता था। पति कँवर साहब का काम करता और मैं कवरानी जी का।"

"कुछ वर्षों बाद हमें एक बच्चा हुआ, प्यार का नाम रखा गया हुग्गू। एक बार गाँव में हैजा फैला। मेरा पति भी इस से अछूता न बचा। गाँव का एकमात्र वैद्य दूसरे बड़े लोगों की चिकित्सा में लगा हुआ था। बहुत आरजू-मिन्नत करने पर भी वह मेरे पति को देखने नहीं आया और दवा-दारू के अभाव में वह मर गया। रावले में खबर भेजी गयी परन्तु वहाँ से कोई भी श्मशान तक साथ जाने के लिए नहीं आया क्योंकि हैजे के रोग से मृत व्यक्ति की छूत लग जाने का डर जो था। मैंने दो-चार पड़ोसियों की सहायता से किसी प्रकार उसकी दाह क्रिया की। घर आने पर बच्चे को भी दस्त और उल्टी होते हुए पाया। दवा के नाम पर भगवान का नाम लेकर प्याज का रस देने की तैयारी कर ही रही थी कि ठाकुर साहब के यहाँ से बुलावा आ गया। बहुत रोने गिड़गिड़ाने पर भी छुटकारा नहीं

मिला। कवरानी जी की चोटी-कंघी करके जब मैं भागती हुई घर लौटी, तो मेरा हरखू सारे दुःखों को भूलकर सदा के लिए सोया हुआ मिला। इसके बाद मैं पागल-सी रहने लगी, रात-दिन हरखू को पुकारता रहती। थोड़ दिनों के बाद ही फिर से मुझे रानी के काम पर जाना पड़ा। हम दरोगे एक प्रकार से ठाकुरों के जर-खरीद गुलाम की तरह थे।"

"संयोग से उन्हीं दिनो कँवरानी जी के दोनों पुत्र मर गये। मुझ कुलक्षणी समझ कर वहाँ से निकाल दिया गया और फिर मैं इस कस्बे मे आकर मेहनत मजदूरी करके निबाह करने लगा। मुझे बच्चों से कुछ इस प्रकार का मोह हो गया था कि बिना मेहनताने के ही मोहल्ले के बच्चों का काम करती रहती, उन सबमें मुझे अपने हरखू की झलक मिल जाती थी।"

शायद पूर्व-जन्म मे मैंने बड़े पाप किये थे। एक दिन एक बच्चे को मैं उसकी माँ से लाकर खेला रही थी कि थोड़ी देर मे ही ऐंठा आकर उसका देहान्त हो गया। उसके बाद तो मैं गाव में डाकिन के नाम से बदनाम हो गयी। औरतें मुझे देखते ही बच्चा को छिपा लेती। गाँव के बड़े बच्चे पीछे से पत्थर मार कर चिढ़ाते। 'हरखू की माँ डाकिन है' पहले तो लोगों के घर मे कुछ काम मिल जाता था, अब वह भी बन्द हो गया। पचास वर्ष हो गये तबसे भीख माँगकर ही किसी प्रकार अपना यह पापी-पेट पालती हूँ। परन्तु आज भी जब मैं किसी छोटे बच्चे को देखती हूँ तो मुझे अपना हरखू याद आ जाता है।"

उसने खाट के नीचे से एक टीन का गोल डिब्बा निकाला और उसमें से गोट लगे हुए टोपी-कुरते निकाल कर दिखाने लगी। वे सब उसके हरखू के थे। दो छोटे छोटे चाँदी के कड़े और एक हनुमान जी की मूर्ति भी थी। यह सब दिखाते दिखाते अपने-आपको और ज्यादा न रोक सकी। उसके धीरज का बाँध टूट गया और आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। वह जोर से रोते हुए कहने लगी, "परमात्मा जानता है, मैंने गाँव में किसी का कोई नुक्सान नहीं किया। फिर भी पिछले ४० वर्षों से इन लोगों ने मुझे बदनाम कर रखा है और मेरा इतना बड़ा अपमान करते आ रहे हैं, अब और सहा नहीं जाता। दुनिया में इतने लोग मरते हैं पर मुझ अभागिन को मौत भी नहीं आती।"

बहुत भारी मन से मैं उस दिन उसे सान्त्वना देकर घर लौटा था। दो तीन दिन बाद ही आवश्यक कार्य से मुझे अपने गाँव से रवाना होना पड़ा। कलकत्ता आकर अनेक प्रकार के झंझटों में फँसकर हरखू की माँ की बात भूल गया। तीन-चार वर्ष बाद जब मैं पुनः गाँव गया तब पता चला कि हरखू की माँ की गाँव के लोगों ने दिन दहाड़े हत्या कर दी।

घटना इस प्रकार बतायी गयी कि एक दिन गाँव के एक प्रतिष्ठित सेठ का बच्चा बीमार हो गया। संयोग से उसके पहले दिन हरखू की माँ उनके यहाँ रोटी लेने गयी थी। अतः उस पर उनका शक जाना स्वाभाविक था। चार-पाँच व्यक्ति उसके यहाँ गये और एक कटोरी में थूकने के लिए कहा। उस दिन उसे भी

कुछ इस प्रकार की जिद हो गयी कि वह थूकने को तैयार ही नहीं हुई।

निरीह बुढ़िया का थूक निकलवाने के लिए उनमें से दो तीन व्यक्तियों ने जोर से उसका गला दबाया और कमजोर वृद्धा भला कहाँ इतना जोर-जुल्म सह पाती? झाग और थूक के साथ-साथ उसके प्राण भी निकल गये।

घर आकर देखा गया कि बच्चा भला-चगा खेल रहा है। परन्तु गाँव के समझदार लोगों की धारणा थी कि अगर उससे जबरन थूक नहीं लिया जाता तो शायद बच्चे की जान नहीं बचती। डाक्टर और पुलिस को किसी प्रकार राजी करके मामला दबा दिया गया। उस गरीब औरत के लिए किस को पड़ी थी कि सेठ जी से बैर मोल लेते?

थोड़े दिन बाद सेठ जी के यहाँ बच्चे के स्वास्थ्य लाभ की खुशी में हनुमान जी का प्रसाद भोज हुआ। गाँव के पचासों व्यक्ति दाल चूरमा खाते हुए हरखू की मा की मौत के बारे में इस प्रकार से बातें कर रहे थे, जैसे वह एक साधारण सी घटना थी। मैं भी निमत्रण में तो गया था, परन्तु किसी प्रकार भी भोज में सम्मिलित न हो सका। मुझे वहां तो हवा में उस वृद्धा के अन्त समय की चीख-पुकार सुनायी पड़ रही थी।

❀

"जाको राखे साइयां"

चाहिए। एक तो कश्मीर मे मेरा छोटा भाई सपरिवार पहले से गया हुआ था, दूसरे उन्होंने कभी कश्मीर देखा नहीं था।

मई की २३ तारीख को हम पठानकोट एक्सप्रेस से रवाना हुए। मेरे पास एक नयी एम्बेसेडर कार के सिवाय ४५ माडल की एक स्टूडीबेकर स्टेशन वैगन थी।

पत्नी ने उस पुरानी गाडी के बदले मे नयी एम्बेसेडर ले जाने को कहा, परन्तु मैने देखा कि उस बडी गाडी मे सारा सामान और सब लोग आराम मे चले जायेंगे। गाडी भी बेचनी है, क्यों नहीं उसी से यह काम ले लिया जाय। इसलिए, इसे रवाना होने से दो दिन पहले नौकरो के साथ पठानकोट भेज दिया।

पठानकोट स्टेशन पर मोटर तैयार मिली। सयोग से वहीं पर हमारे वयोवृद्ध मित्र श्री मुनीश्वरदत्त उपाध्याय, एम पी मिल गये। मोटर मे जगह थी, इसलिए उन्हे भी साथ बैठा लिया।

जम्मू से आगे जब चढाई शुरू हुई तो मोटर हर पाँच मील पर गरम होने लगी, हम पानी डालते रहे। कभी कभी सब मिल कर ठेलते भी रहे, यद्यपि उपाध्याय जी काफी वृद्ध थे, परन्तु सकोचवश वे भी इसमे सहायता देते। ३०-३५ मील आने के बाद एक कडी चढाई पर वह अडकर रुक गयी। बहुत प्रयत्न करने पर भी आगे नहीं बढ रही थी। पास के गाँव मे एक छोटा सा मोटर मरम्मत का कारखाना था। थोडी देर मे ही बहुत से लोग इकट्ठे हो गये। उनमे से दो एक मिस्त्री भी थे। वे हँसकर कहने

लगे कि सेठ जी इस मोटर को तो आपको विन्टेज कार रैली (बहुत पुरानी मोटरों की दौड़ प्रतियोगिता) में भेजनी चाहिए थी। कहाँ यह पहाड़ों की कड़ी चढ़ाई और यह बेचारी बूढ़ी गाड़ी! मुझे इसी बात पर गुस्सा और क्षोभ हो रहा था, परन्तु चुपचाप सुनने के सिवाय चारा भी क्या था।

पत्नी भी उलाहना देने लगी कि आपने सोचा नहीं मोटर खराब हो जायगी, इसलिए इस खटारा को मेरे मना करने पर भी ले आये। उन दिनों [illegible] था इसका विचार ही नहीं किया।

आखिर एक घण्टे की कड़ी मेहनत के बाद गाड़ी रवाना हुई। पहले और दूसरे गेयर में चलाते हुए, दूसरे दिन शाम तक किसी प्रकार श्रीनगर पहुँच गये। १०-१५ दिन वहाँ रहने के बाद समाचार मिले कि दिल्ली में वर्षा हो गयी है। हमने वापिस आने का प्रोग्राम बनाया।

पत्नी और राजू की इच्छा थी कि हवाई जहाज से चलें, परन्तु मैं फिजूल में ५००) रु० खर्च करना नहीं चाहता था। उन्हें समझाया कि आते समय तो मोटर की खराबी के कारण रास्ते के दृश्य नहीं देख पाये थे। परन्तु अब ठहरते हुए चलेंगे। स्टुडीबेकर को वहीं छोड़कर हम लोग वहाँ से एक नयी एम्बेसेडर से रवाना हुए।

बठोर के पास पहुँचे, तब शाम हो गयी थी। रास्ते के किनारे

कोट-पैंट पहने एक युवक खडा था। उसने हाथ से गाडी रोकने का संकेत किया। हमने गाडी रोक ली। कहने लगा कि बडी कृपा होगी, अगर आप मुझे अगले गाँव तक पहुँचा देंगे। मै अपना ठेकेदारी का काम सम्हालने आया था। यहाँ देरी हो गयी। ट्रक सब पहले ही जा चुकी है। हमारे पास जगह थी। युवक के वेष-भूषा और बात-चीत का भी प्रभाव पडा, उसे मोटर मे बैठा लिया।

हमारा ड्राइवर पहाडो के लिए नया था, गाडी धीरे धीरे चला रहा था। थोडी देर बाद युवक ने कहा कि मेरा इस तरफ मोटर चलाने का नित्य का अभ्यास है, अगर आप कहें तो मैं चलाऊँ। ड्राइवर को भी आराम मिल जायगा और बठोर कुछ जल्दी पहुँच जायगे।

हमें ऐसा लगा कि युवक का वह रास्ता पूरी तौर पर जाना हुआ था। ३५ ४० मील की स्पीड से वह मोटर चला रहा था। मोडने की भी उसे अच्छी तरह जानकारी थी।

थोडी देर बाद गहरा उतार आया, गाडी की स्पीड बढी। एक घुमावदार मोड आयी और युवक से गाडी बेकाबू होकर सामने के खड्ड की तरफ तेजी से बढी।

आसन्न मृत्यु को सामने पाकर मनुष्य का मन किस प्रकार का हो जाता है, इसका उस दिन मुझे पता चला। सामने तीन चार हजार फीट गहरा खड्ड अजगर की तरह मुँह बाये था और गाडी उसी

तरफ बढ़ी जा रही थी। उस कड़ी सर्दी में भी हम सब पसीने से तर थे। आँखों के आगे अंधेरा छा गया और होश हवास गुम हो गये।

हमारे दादाजी कहा करते थे कि संकट के समय राम का नाम लेने से कष्ट कट जाते हैं। मुझे उनकी बात याद आयी और मैंने जोर-जोर से राम का नाम लेना शुरू किया। जीवन में शायद ही कभी इतने सच्चे मन से प्रभु का नाम लिया होगा।

हम सब आँखें मीचे मृत्यु की राह देख रहे थे। कुछ ही क्षण बीते होंगे कि गाड़ी को एक जोर का धक्का लगा। आँखें खोलीं तो देखा कि सड़क के किनारे मरम्मत करने के लिए पत्थरों के छोटे टुकड़ों का ढेर है और गाड़ी उनमें फँस गयी है। किसी प्रकार साहस कर नीचे उतरे, तब भी शरीर काँप रहा था, सिर चक्करा रहा था। देखा गाड़ी के आगे का हिस्सा थोड़ा सा टूट गया है रेडियेटर में से सारा पानी निकल गया है।

एक मील पर ही बठोट था, किसी प्रकार पैदल वहाँ पहुँचे। रात में एक होटल में ठहरे। युवक बहुत ही सहमा हुआ और शर्मिंदा था, परन्तु उसे बुरा भला कहने से क्या फायदा था—आखिर वह भी तो साथ में ही मरता? दूसरे दिन कुलियों को भेजकर गाड़ी ठेलकर बठोट लाये। वहाँ एक कारखाने में उसकी मरम्मत करायी। एक दिन इसके लिए रुकना पड़ा।

रास्ते में हम लोग आपस में बात करते रहे कि मारने वाले से बचाने वाला बड़ा है "जाको राखे साँइयाँ मार सकै नहिं कोइ।"

अछूत

सेठ रामजीलाल अपने कस्बे में ही नहीं, बल्कि प्रान्त भर मे प्रसिद्ध थे। उनके विभिन्न प्रकार के पाँच छ कारखाने थे, जिनमे हजारो मजदूर काम करते थे। विदेशो के साथ आयात-निर्यात का करोडो रुपयों का कारोबार था व्यापार के सिवाय सार्वजनिक-क्षेत्र मे भी अच्छा नाम था। उनके द्वारा सचालित कई स्कूल, कालेज, छात्रावास और अस्पताल थे। निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव थे, इसलिए, उन्होंने अपनी हवेली के पास ही श्रीनाथजी का एक विशाल म न्दर बनवाया था, जिसमे घर के हर व्यक्ति के लिए नित्य दोनो समय जाकर प्रसाद लेना जरूरी था।

सब तरह से सम्पन्न और सुखी परिवार था, परन्तु सन्तान नहीं होने से पति पत्नी दुखी रहते थे। एक बार वे कुम्भ के पर्व पर यात्रा के लिए हरिद्वार गये। वहीं उन्हें दो वर्ष का एक बच्चा सेवा-समिति के स्वयसेवकों द्वारा मिला। सेठानी तो लडके को गोद मे लेते ही निहाल हो गयीं। उसका गौर-वर्ण और सुन्दर रूप रग देखकर ही अनुमान लगा लिया कि जरूर किसी कुलीन घराने का है।

अपने गाँव आकर बहुत धूम धाम से गोद के नगचार किये गये। हजारों व्यक्तियों का भात किया गया। इस अवसर पर एक अस्पताल और एक कालेज की नींव डाली गयी। बच्चे का सुन्दर सा नाम रखा गया, गोपाल कृष्ण। उस समय लोगों ने भी ज्यादा पूछ-ताछ की जरूरत नहीं समझी।

बच्चे का आना कुछ ऐसा शुभ हुआ कि एक वर्ष के भीतर ही उनके एक पुत्री हुई। धन दौलत भी रात दिन बढ़ती गयी।

इसी प्रकार १७/१८ वर्ष आनन्द से व्यतीत हो गये। गोपाल और छोटी बहन सुमन दोनों कालेज में पढ़ते थे। आपस में सगे भाई बहिन से भी ज्यादा प्यार था। गोपाल पढ़ने के सिवाय खेल कूद में भी हमेशा प्रथम या द्वितीय रहता। एम० ए० में उसे कालेज में प्रथम स्थान मिला।

एम० ए० करने के बाद पढ़ने के लिए वह विदेश जाना चाहता था, परन्तु सेठ जी शादी करके उसे व्यापार में लगा देना चाहते थे। सुमन ने अपनी एक सुन्दर और सम्पन्न सहेली का चयन भी कर लिया था—यहाँ तक कि उसको कई बार अपने घर बुलाकर गोपाल और माता-पिता को दिखा भी दिया था। एक तरह से बात पक्की हो गयी थी केवल नेगचार होने बाकी थे।

उसी वर्ष बीकानेर के उत्तरी हिस्से में बड़ा अकाल पड़ा। हजारों व्यक्ति अपने गाँव छोड़कर पशुओं के साथ मालवा की तरफ जाने लगे।

सेठजी ने अपने कस्बे में उनके विश्राम के लिए व्यवस्था कर

रखी थी। एक दो दिन वहाँ रहकर सुस्ता लेते थे। दूसरे स्वय-सेवकों के साथ-साथ गोपाल और सुमन भी इस काम मे दिलचस्पी लेते थे। एक दिन व इसी प्रकार के एक यात्री दल की व्यवस्था कर रहे थे कि उनमे से एक अधेड-सा व्यक्ति गोपाल को घूर-घूर कर देखने लगा थोडी देर मे अपनी पत्नी को भी बुला लाया।

सुमन ने हँसकर कहा कि दादा इस प्रकार आप क्या देख रहे हो और आपकी आँखों मे आसू क्यो है ? थोडी देर तो वृद्ध चुप रहा, फिर सहमते हुए कहा—"बाइ सा मेरा लडका रामू आज से १८ वर्ष पहले हरिद्वार के कुम्भ मेले मे गुम हो गया था। उसका रग भी इसी तरह साफ था। उसके दाए गाल पर भी इसी प्रकार का निशान था। कुँवर साहब को देखकर हमे अपने खोये हुए पुत्र को याद आ गयी है।"

घर जाकर सुमन ने पिता जी को जब यह बात कही तो देखा गया कि उनके चेहरे पर उदासी छा गयी थी।

रात मे उस वृद्ध को बुलाकर पूछताछ की गयी तो पता चला कि वे लोग जाति के चमार हैं। उस वर्ष कुम्भ स्नान करने के लिए गये थे। वहीं उनका एकमात्र पुत्र भीड मे खो गया, जिसका आजतक पता नहीं चला। लडके के कुछ और भी चिह्न था क्या ? यह पूछने पर उसने कहा कि उसके दायें हाथ मे चोट का एक निशान था।

यह सब बातें गोपाल और उसकी माँ भी सुन रही थी। उस

समय वृद्ध को १००)-२००) रुपये देकर उसे यह कह कर विदा कर दिया कि तुम्ह इस प्रकार की फिजूल बातें नहीं करनी चाहिए। अच्छा हो कि तुम लोग कल यहां से चले जाओ।

परन्तु ऐसी बातें छिपी नहीं रहतीं। लोगों को अपना हर्ज करके भी दूसरो के छिद्र ढूँढने का शौक रहता है। यह बात धीरे-धीरे सारे क्षेत्र मे फैल गयी।

इधर सेठ जी और सेठानी दोनों कमरा बन्द करके भीतर जा बैठे। बहुत कहने सुनने पर भी भोजन के लिए बाहर नहीं निकले।

गोपाल हर प्रकार से योग्य और समझदार था। वस्तु स्थिति उसकी समझ मे आ गयी थी। वह एक निश्चय पर आकर दूसरे दिन सुबह सुमन के पास जाकर कहने लगा, "बहिन जी, जो कुछ होना था, वह तो हो गया। परमात्मा जानता है कि उसमे मेरा कुछ कसूर नहीं है। फिर भी, मेरे कारण आप लोगों को इतना बड़ा अपमान सहना पड़ा। अब किसी तरह पिताजी और माताजी को भोजन कराने का उपाय करो, वे कल से ही भूखे प्यासे है।"

सुमन ने देखा कि जो भाई उससे हमेशा हंसी-मजाक करता रहता कभी सुमन और कभी देवी कहकर पुकारता था, वह आज 'बहिन जी' कह रहा है और सहमा-सा थोड़ी दूरी पर बैठा हुआ है।

उन दोनों ने बहुत अनुनय विनय करके कमरे का दरवाजा खुलवाया। देखा कि एक दिन मे ही पिताजी वृद्ध से लगने लगे

हैं। माता एक तरफ अचेत पड़ी हुई है। अन्य दिनों की तरह आज गोपाल ने पिता के पैर नहीं छुए। कुछ दूरी से ही कहा, "पिताजी, मेरा आपका सम्बन्ध इतने दिनों का ही ईश्वर को मजूर था। अब आप हिम्मत करके मुझे विदा दें। माता जी का बुरा हाल है, उन्हें भी सान्त्वना दें। आपने जितना लिखा-पढ़ा दिया है, उससे २००), ३००) रु० माहवार आसानी से कमा सकूँगा।"

बहुत देर का रोका उद्वेग एक बरसाती नाले के बाँध की तरह टूट गया। इतने बड़े प्रतिष्ठित सेठ, छोटे बच्चे की तरह जोर-जोर से रोने लगे। कहने लगे, "मैं भले ही चमार हो जाऊँगा, परन्तु किसी हालत में भी तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। हो सकता है, तुमने जन्म अछूतों के घर में लिया हो परन्तु भला कोई बता दे तो कि तुम जैसे धार्मिक और निष्ठावान युवक ऊँची जातिवालों में भी कितने हैं? राम तो १४ वर्ष के लिए ही वनवास गये थे, परन्तु तुम मुझे इस बुढ़ापे में सदा के लिए छोड़कर जाना चाहते हो।"

इधर हवेली में सुबह से ही किसी-न-किसी बहाने सगे सम्बन्धी आकर इकट्ठे हो गये थे और झूठी सहानुभूति दिखा रहे थे। सब कुछ जानते बूझते हुए भी 'क्या हुआ?' 'कैसे हुआ?' आदि, पूछ रहे थे। साथ में, उन चमारों में से भी कुछ को ले आए थे।

थोड़ी देर में ही गोपाल उन सबके सामने जाकर कहने लगा कि आपने जो कुछ सुना है, वह सब सत्य है। मैं कोलायत के चमारों का लड़का हूँ। इसी समय घर और आपका गाँव छोड़कर जाने को

तैयार हूँ। कृपा करके आप सेठजी को क्षमा कर दें। उन्होंने ज
कुछ किया, बिना जानकारी के किया है। फिर, बड़े से बड़ कसूर क
भी प्रायश्चित तो होता ही है, वह सब वे विधि पूर्वक करेंगे।

परन्तु सेठजी किसी तरह भी गोपाल को छोडने को तैयार नह
थे। आँसू की धारा बह रही थी, उसे जबरन्स्ती गले लगा कर कहने
लगे, "सुमन भी कपड़े बाँधकर तुम्हारे साथ जाने की तैयारी कर रही
है, फिर भला हम अकेले इस घर मे रह कर ही क्या करेंगे? तुम्हा
साथ ही चलेंगे। किसी दूसरे गाव मे जाकर चमारो क साथ
रह लेंगे।"

गोपाल चाहता तो सेठजी के इन स्नेहपूर्ण उद्गारो का लाभ उठा
सकता था, परन्तु उसने सुमन और सेठ जी को अनेक प्रकार से
समझा बुझाकर वहाँ से विदा ली। दूसरे दिन ही यात्री-दल के साथ
मालवा के लिए रवना हो गया। बहुत अनुनय विनय के बावजूद
घर से दो चार धोती-कुर्त्तो क सिवाय अन्य कोई भी वस्तु साथ मे
नहीं ली।

विदा के समय एक प्रकार मे सारा गाव ही उमड पडा था। कल
तक इस घटना मे लोग ईर्ष्यायुक्त रस ले रहे थे, परन्तु आज वे सब
फूट फूट कर रोते हुए देखे गये।

परोपकार

आज से पचास-साठ वर्ष पहले राजस्थान मे बड़े शहरों के सिवाय अन्यत्र कहीं भी डाक्टर नहीं थे। अगर कोई धनी व्यक्ति ज्यादा बीमार हो जाता तो इलाज के लिए जोधपुर या बीकानेर से डाक्टर को बुलाया जाता। हमारे कस्बे मे एकबार एक सेठ के इलाज के लिए कलकत्ता से आशु बाबू नाम के एक बंगाली बड़े डाक्टर आए थे। इन्हें देखने के लिए स्थानीय लोगों के अलावा बहुत से ग्रामीण भी आये थे क्योंकि, एक सौ रुपया प्रति दिन की फीस उस समय एक अद्भुत और अनोखी बात थी।

बीमारियाँ तो उस समय भी होती थीं परन्तु डाक्टरी इलाज का प्रचलन नहीं के बराबर था। सर्दी, जुकाम, सिर-दर्द और यहाँ तक कि मलेरिया और मियादी बुखार मे कालीमिर्च और लौंग की चासनी या दसमूल का काढ़ा दे दिया जाता। अधिकांश रोग इन्हीं देशी जडी बूटियों से ही दूर हो जाते।

वैद्यों के अलावा हर मोहल्ले मे एक दो सयानी स्त्रियाँ रहतीं जिनकी कोथली (थैली) मे जच्चा और बच्चा दोनो के लिए दवायें रहतीं। बीमार के घरवालों को इन्हें बुलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। खबर पाकर वे स्वयं ही पहुँच जातीं और रोगी की सेवा

मे लग जाते। किसी प्रकार की फीस या औपधि के मूल्य का तो प्रश्न ही नहीं था। बल्कि ऐसे मौकों पर पुराने बैर बदले भी समाप्त हो जाते।

थोडे वर्षो बाद, शायद सन १९३० के लगभग, एकाध डाक्टर भी आ गए थे, जिनके गले मे या कोट के ऊपर की जेब मे रबर का स्टेथिस्कोप पडा रहता। फीस अधिकतम दो रुपया होती किन्तु उस समय लोगों को यह भी अखरती थी। इसलिए अधिकांश रोगी झाड-फूँक या स्थानीय वैद्य जी का सहारा ही लेते।

वैद्य का बेटा अपने आप वैद्य हो जाता। आयुर्वेद की डिग्रियाँ तो नहीं थी परन्तु बडो द्वारा प्राप्त नाडी और औपधि का ज्ञान उन्हें यथेष्ट रहता। आजकल की तरह थूक-खून और मूत्र की परीक्षा के साधन न होने पर भी नाडी ज्ञान द्वारा ये लोग रोग का सही निदान कर देते। कुछ एक पुश्तैनी वैद्यों के पास विश्वसनीय और कीमती आयुर्वेदिक दवायें अच्छी मात्रा मे पायी जातीं जिनका असर अचूक होता।

शायद, सन् १९३६ की बात है। हमारे कस्बे और आस पास के गाँवों मे बडे जोर का हैजा फैला। प्रतिदिन २०, ३० आदमी मरने लगे। लोगों मे घबराहट फैल गयी। जिनके पास साधन थे वे दूर के गाँवों मे और कस्बों मे अपने सगे सम्बन्धियों के यहाँ चले गये। यहाँ तक कि डाक्टर और वैद्य भी गाँव छोडकर चले गये, क्योंकि जिनसे फीस मिलने की आशा थी, वे तो पहले से ही जा

चुके थे। बच गये थे गरीब लोग जिनके पास फीस तो क्या दवा के नाम भी नहीं थे। इतना ही नहीं, रोग का प्रकोप ज्यादा बढ़ा तो घरवाले भी रोगियों को छोड़कर भागने लगे।

घर घर में रोगी पड़े थे और डाक्टर-वैद्यों में केवल एक ही रह गये थे, कविराज बृजमोहन गोस्वामी। यद्यपि परिवार वालों ने और मित्रों ने उनसे बहुत आग्रह किया कि वे कस्बा छोड़ दें, आखिर अकेले कर ही कितना पायेंगे ? साथ ही, जान भी जोखिम में रहेगी। उनका जवाब था कि मेरे पितामह और पिता माने हुये वैद्यराज थे। उन्होंने कभी संकट के समय रोगी को नहीं छोड़ा। यहाँ तक कि गरीबों के लिये दवा के सिवाय कभी कभी पथ्य की भी व्यवस्था अपने पास से की। इस समय अगर मैं भागकर चला जाऊँगा तो इन असहायों का क्या होगा ? मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, एक दिन होगी ही, फिर कर्त्तव्य विमुख होकर अपकीर्ति की मृत्यु क्या हो ?

हैजे का सबसे ज्यादा प्रकोप था चमारों और भंगियों के मुहल्लों में। वीरान गाँव, भयावह गलियाँ, सूने घर और मुर्दों की सड़ाध से पूरा गाँव श्मशान सा नजर आता था। गोस्वामी जी सुबह ६ बजे उठते और दोपहर १२ बजे तक बीमारों को देखते रहते। फिर खाना खाकर बिना सुस्ताये रात के १० बजे तक वही कार्यक्रम चालू रहता। उस समय तक हैजे के इन्जेक्शन और एलोपैथिक दवायें ईजाद हो चुकी थीं पर वहाँ न तो इन्जेक्शन देने वाले डाक्टर या कम्पाउन्डर थे और न दवाफरोश ही। वैद्यजी

को तीन चार हिम्मतवाले युवकों ने साथ दिया। मना प्याज का रस निकाल कर मटके भर लिये और ऊंटो का मूत्र भी बड़ी मात्रा में इकट्ठा कर लिया। रोगियों को भगवान का नाम लेकर वे स्वयं औषधि पिलाने लगे और इनसे ही चमत्कारिक लाभ होने लगा।

उस समय राजस्थान में छुआछूत बहुत थी। गोस्वामी जी परम वैष्णव थे, परन्तु उन्हें तो इन भंगी चमारों में वास्तविक हरि के दर्शन होने लगे। बहुत बार तो उनके मल मूत्र भरे कपड़े धोने पड़ते और जगह की सफाई भी करनी पड़ती। बीमार माता और छोटे बच्चों को गोदी में उठाकर सुलाना पड़ता। जान और माल का मोह छोड़ भी दें तो भी नाम और यश की कामना तो रहती ही है और इसी के चलते ऐतिहासिक बलिदान हुए हैं। परन्तु उन बीमार इलाके में न तो समाचार-पत्रों के सम्वाददाता थे जो इस सेवा कार्य को प्रचार प्रसार देते और न वैद्य जी ही अपने नाम और काम का ढिंढोरा पीटना चाहते थे। उन्होंने तो अपना कर्तव्य समझ कर ही मृत्यु का आलिंगन करना स्वीकार किया था।

उनका शरीर भारी था, वृद्धावस्था हो चली थी। रात को थक कर चूर हो जाते परन्तु जैसे ही थोड़ा सा खा पीकर सोने को जाते कि रोती हुई कोई महिला आती और अपने बच्चे की उल्टी दस्त की बात कह कर गिड़गिड़ाने लगती। वैद्य बृजमोहन का मनुष्यत्व जाग उठता और वे प्रभु का नाम लेकर उसी समय

चल देते। सारी रात बाहर ही बीत जाती। इस प्रकार कई बार हुआ। एक कहावत है कि जाको राखे साइयां मारि सके न कोय। महामारी समाप्त हो गयी, लोग वापस आने लगे। उन्होंने देखा कि गोस्वामी जी सही सलामत है। हाँ, शरीर से काफी थक गये है, एक प्रकार टूट से गये है।

आसपास के कस्बो के लोग उन्हें देखने आने लगे। उनके सार्वजनिक अभिनन्दन का प्रस्ताव रखा गया परन्तु उन्होंने नम्रतापूर्वक इससे मनाही कर दी। उनका कहना था, "मैने अपना कर्त्तव्य पालन किया है। यही तो भारतीय परम्परा रही है और यही भगवान धन्वन्तरि की आज्ञा है। बचाने वाला तो ईश्वर है मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ।"

कुछ दिनों बाद गोस्वामी जी बीमार पड़े। सैकड़ों व्यक्ति रोज उनके दर्शन को आते। लेकिन आयु समाप्त हो चुकी थी वैद्य जी का देहान्त हो गया। सारे गाव मे, विशेषकर हरिजनो और गरीबो की बस्ती मे शोक छा गया। उनके दाह कर्म मे इतने स्त्री और पुरुष गये जितने आजतक किसी भी व्यक्ति के नहीं गये थे।

———

मजदूर से मालिक

बात पुरानी है, परन्तु बहुत पुरानी नहीं। यही कोइ साठ सत्तर वर्ष पहले की होगी। उस समय खत्री समाज का कलकत्ते के व्यवसाय वाणिज्य में विशिष्ट स्थान था, बडी-बडी अंग्रेजी आफिसो की बेनियनशिप इनके पास थी। उस समय तक देश मे कारखाने बहुत कम बन पाये थे इसलिए अधिकारा आवश्यक वस्तुए विदेशा से खास कर ब्रिटन से आयात की जाती थीं। १६१० ११ ई० तक भी पालकी गाडी और फिटन गाडियो का युग था। शौकीन रईसो के पास दो घोडा की गाडियाँ तो थीं ही, परन्तु किसी किसी के यहाँ ४ घोडो की भी थी, जिन्हें चौकडी कहा जाता था। कोचवान और साईस की पोशाक बहुत ही आकर्षक होती थी। उन वेलर घोडा की फिटनो के सामने आज की बडी से बडी मोटरो का भी कोइ मुकाबला नहीं है।

सेठ निस्कामल घोडो की रास थामे अपनी सोने की नक्काशी की हुई सुन्दर फिटन मे बैठे हुए जिधर से निकलते तो लोग घर के भीतर से दौडकर देखने को बरामदे मे आ जाते। कहा जाता है कि उनके घोडों को बेहतरीन गुलाब और केवडा जल से स्नान कराया जाता था और जिधर से उनकी गाडी निकलती, वहाँ सुमधुर सुगन्ध का समा बँध जाता था। ऐसे थे सेठ निष्कामल खत्री,

कार तारक कम्पनी के वेनियन और सर्वेसर्वा। यद्यपि उनकी वार्षिक आय १-१॥ लाख से ज्यादा नहीं थी, चूँकि प्रथम महायुद्ध र पहले वस्तुए बहुत सस्ती थीं और प्रचुर मात्रा में दैनिक आवश्यक चीजें उपलब्ध थीं, इसलिये उस समय आज से पाँच प्रतिशत की आय मे भी लोग अच्छी तरह से रह सकते थे।

सेठ बहुत देर से सोकर उठते। उसके बाद ताश-शतरञ्ज से फुरसत मिलने पर जब वे खा-पीकर आफिस आते, तब तक २-॥ बज जाते। वे आफिस का काम स्वय बहुत कम देखते थे। उनके साथ कई दलाल और दूसरे लोग काम करने वाले थे। उनमे से गिरधारीलाल नामक एक १५ वर्ष का मारवाडी लडका भी था। इसका मासिक वेतन था १४ रु० और काम बाजार के पुर्जा चुका लाने का। न चौदह रुपयो मे ही गिरधारीलाल को अपने छोटे भाई और विधवा माँ का खर्च चलाना पडता था। यद्यपि अभाववश स्कूल और कालेज की पढाई तो नहीं हो पायी थी फिर भी, वह शुरू से ही परिश्रमी और होशियार के सिवाय सुन्दर और सुशील भी था।

पुर्जे चुकाने के सिलसिले मे उसे दुकानदारों के पास प्राय नित्य ही जाना पडता था, इसलिए विभिन्न तरह के कपडों के दाम उसे याद हो गए थे। सेठ के कुछ अपने बधे हुए दुकानदार थे, जिन्हे किसी कारणवश बाजार से कुछ सस्ते दर पर कपडा दिया जाता था। एक दिन बड़ी नम्रता से उसने **सेठ का**

ध्यान किसी एक सौदे के बारे मे आकर्षित किया जो लाभदायक भाव से कुछ नीचे मे हुआ था।

उसे बडा दुख हुआ जब सेठ ने शाबासी देने के बजाय उसे धमका दिया कि उसका काम केवल पुना चुका लाना है, उसे इन सब बातो से कोई प्रयोजन नही रखना चाहिए।

आफिस के बड़े साहब का ध्यान गिरधारीलाल के व्यवहार और परिश्रम की ओर गया। वह कभी कभी उसको अपने कमरे मे बुलाकर बातचीत करने लगा। उस समय के अधिकाश अग्रेज व्यापारी साधारण हिन्दी और बगला बोल लेते थे। सेठ को यह मेल जोल अच्छा नही लगा और उसने गिरधारीलाल को साहब से मिलने की मनाही कर दी।

गिरधारी स्वामी-भक्त था, उसे साहब से कुछ आशा-भरोसा का सवाल भी नहीं था इसलिए वह उनसे अलग सा रहने लगा।

कुछ दिनो बाद एक दिन साहब ने उसे बुलाकर नहीं मिलने का कारण पूछा। चूँकि वह किसी प्रकार भी मालिक की शिकायत नहीं करना चाहता था इसलिए उसने सच्ची बात न बताकर दूसरे कामो मे फँसे रहने का बहाना कर दिया। इतने मे ही सेठ निर्मलजी वहाँ आ गए। साहब को इस मामूली 'छोकरे' से हँस हँस कर बाते करते देखकर उन्हें बहुत गुस्सा आया परन्तु उस समय कुछ बोले नहीं। दूसरे दिन गिरधारीलाल को घर पर

बुला कर एक सौ रुपया देते हुए सेठ ने उसे नौकरी से अलग कर दिया और कहा कि आइन्दा वह आफिस की तरफ न आये।

यद्यपि उस समय एक सौ रुपया उस गरीब युवक के लिए बहुत बडी राशि थी, परन्तु उसने नम्रतापूर्वक रकम वापस कर दी, क्योंकि बिना कमाई का पैसा वह नहीं लेना चाहता था। उसने सेठ को विश्वास दिलाया कि मैंने आपका नमक खाया है, मेरे से आपका किसी प्रकार का अहित नहीं होगा।

घर आने पर माँ के पास जाकर उसे रुलाई आ गयी। उसे नौकरी से क्यों छोडा गया, इसका वह कोई कारण नहीं बता सका। अपने पुत्र की ईमानदारी और मेहनत पर माँ को पूरा भरोसा था। फिर भी, उसने यही सीख दी, "बेटा, कुछ न-कुछ तो गल्ती हुई ही है, नहीं तो तुम्हें मालिक क्यो छोडते? खैर, अपने शरीर मे उनका नमक है, इसलिए उनकी बुराई हो, ऐसा काम कभी मत करना।'

सेठ निकामल का कपड बाजारमे इतना दबदबा था कि उनके छोडे हुए व्यक्ति को रखने का किसी को साहस नहीं होता था। इसलिए, बेचारा युवक रोज इधर-उधर घूम-फिर कर वापस घर आ जाता। जो कुछ पास मे था, वह समाप्त हो गया और अन्त मे उन लोगो के भूखे रहने की नौबत आ गयी।

गिरधारीलाल को विश्वास था कि साहब के पास जाने पर

कुछ न कुछ काम जरूर मिल जायगा, किन्तु मालिक ने आफिस में जाने की मनाही जो कर दी थी।

दस पन्द्रह दिन बाद साहब ने सेठ से पूछा तो उसने बीमार होने का बहना कर दिया।

कुछ दिन और बीत जाने पर एक दिन साहब ने अपने बड़े दरबान को बुलाकर कहा कि गिरधारीलाल के घर उसे देखने जाएगे वह शायद ज्यादा बीमार है। दरबान से पता चला कि वह बीमार तो नहीं है, परन्तु उसको नौकरी से अलग कर दिया गया है।

उस दिन शनिवार था। सेठ आफिस नहीं आए थे क्योंकि वे नियमानुसार शुक्रवार की शाम को चुने हुए मुसाहिबो के साथ अपने लिलुआ के बगीचे चले गए और सोमवार सुबह वापस आने को थे।

गिरधारीलाल को बुलाकर जब साहब ने पूछ-ताछ की तो इस स्वामी-भक्त युवकने सेठ को बचाने के लिए कहा, "मेरे से एक बड़ी गल्ती हो गयी इसीलिए उन्होंने मुझे छोड़ दिया है।"

बात तो उसने कह दी, परन्तु आधा पेट भूखे छोटे भाई और मा का ख्याल आने पर उसे बरबस रुलाई आ गयी। प्रयत्न करने पर भी आँसुओं को नहीं रोक सका।

साहब ने कहा, "तुम तो विभिन्न प्रकार के कपड़ा के दाम

और व्यापारियों को जानते हो। अगर तुम्हें कपड़े बेचने का काम दिया जाय तो कर सकोगे?" उसने जवाब दिया, 'श्रीमान यह मेरे मालिक का हक है। आज यद्यपि मैं उनके यहाँ नहीं हूँ, पर मैंने उनका नमक खाया है इसलिए मैं यह काम नहीं करूँगा।"

उस फटेहाल लड़के की इस बात ने साहब को और भी प्रभावित किया और उसने हर प्रकार से उसे समझाया कि इससे सेठ का किसी प्रकार की क्षति नहीं होगी। किसी न किसी को तो उन्हें दलाली देनी ही पड़ती है। उसे कुछ कपड़ों के नमूने देकर और कीमतें बताकर १००० गाँठ तक बेच देने का आदेश दिया।

बनिये का लड़का था, व्यावसायिक बुद्धि प्रचुर मात्रा में थी। वह उन दुकानदारों के पास गया जो इस आफिस का माल लेने को तरसते रहते थे। साहब ने जो भाव बताये थे, उससे प्रति गज एक दो पैसे ऊँचे में सौदे पक्के कर लिये और खरीददार को आफिस में लाकर साहब से रजू करा दिया।

सारे बाजार में चर्चा फैल गयी कि कार तारक कम्पनी का कपड़ा गिरधारीलाल ने बेचा है। निमकामहल के व्यापारी घोड़ेगाड़ियाँ लेकर लिलुआ के बगीचे खबर देने पहुँचे।

सेठ मुसाहियों से घिरे हुए नाच-गाना देखने-सुनने में मस्त थे। परन्तु, जब इस बात का पता चला तो नशा हिरन हो गया। तबले की थाप और सारंगी की तान बन्द हो गयी और उसी समय फिटन दौड़ाते हुए आफिस पहुँचे।

वे आफिस के पुराने बनियन थे, उनकी इज्जत तथा धाक थी। शायद अपनी गलती मंजूर करने पर साहब मान जाता, परन्तु क्रोध में मनुष्य की मति भ्रष्ट हो जाती है।

उन्होंने आते ही बड़े साहब पर रोब गाँठना शुरू किया। परन्तु वह झगड़ा बढ़ाना नहीं चाहता था। उसने कहा, "एक महीने से यह माल बिक नहीं रहा था और जिन दामों में हम बचना चाहते थे, उससे भी चार पाँच पाई प्रति गज ऊँचा बिका है। गिरधारी लाल की तो केवल दलाली ही रहेगी, बाकी बेनियनशिप कमीशन तो आपका ही है।'

साहब की नम्रता का कमजोरी समझकर सेठ निरकामल ने विलायत के बड़े साहबों से अपनी मित्रता और प्रभाव की धौंस जताते हुए कहा कि दलाल चुनना मेरा काम है न कि आपका। इसलिए इस सौदे की जिम्मेवारी मैं नहीं लूँगा। गिरधारी लाल के पास एक कानी कौड़ी भी नहीं है कि वह आपको जमानत के रूप में दे सके। मैं अब आपसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना नहीं चाहता। उसी समय सेठ ने बेनियनशिप से इस्तीफा लिखकर दे दिया।

उसको पूरा भरोसा था कि साहब दब जायगा और मान मनुहार करके इस्तीफा वापस कर देगा। परन्तु जब टाइपिस्ट को बुलाकर इस्तीफे की मंजूरी लिखा दी गयी तो निरकामल की आँखों के आगे अंधेरा छा गया, क्योंकि उसकी शान शौकत

और मौज-बहार तो सब इस आफिस के कारण ही थी ! उसने साहब से गलती और गुस्से के लिए क्षमा भी माँगी। परन्तु बात बहुत आगे बढ चुकी थी और अब किसी प्रकार का समझौता सम्भव नहीं था।

कलकत्ते की आफिस से बिना रुपये जमा लिये ही गिरधारीलाल के लिए बेनियनशिप की सिफारिश लन्दन आफिस को की गयी। इधर सेठ निहालमल ने भी पूरा जोर लगाया। अपने तीस वर्षों के सम्बन्ध और गिरधारीलाल की नाजुक आर्थिक स्थिति और नातजुर्बेकारी के बारे मे बड-बडे तार दिये। दूसरे व्यापारियों से भी तार दिलाये, परन्तु बात बडे साहब की ही रही।

अब, कार तारक कम्पनी के बेनियन बने सेठ गिरधारीलाल मटरूमल, कल का १४) महीने मे पुजा चुराने की नौकरी करने वाला ! बहुत वर्षों तक दोनो भाइयो ने ईमानदारी और कडी मेहनत से काम किया। आफिस के काम की उनके समय मे अच्छी तरक्की हुई। उनके अपने लाभ के सिवाय व्यापारियों को भी उनके द्वारा अच्छा मुनाफा होता रहा।

धनाढ्य हो जाने पर भी उन्होंने अपने रहन-सहन मे सादगी रखी और गरीबी के दिनों को नहीं भूले। कोई गरीब युवक उनके पास आया, उसे हर प्रकार की सहायता दी। कुछ वयोवृद्ध लोग अभी तक हैं जिन्होंने गिरधारीलाल को देखा है। कलकत्ते के हरिसन रोड मे उनकी धमशाला है। राजस्थान मे

भी-कूँआ, तालाव और धर्मशाला है। गरीब विद्यार्थियों के लिए अन्नक्षेत्र भी कुछ समय पहले तक था। ऐसा कहा जाता है कि गरीब लड़कियों की गुप्त-रूप से उन्होंने बीसियों शादियाँ करायी थीं।

आज न तो गिरधारीलाल हैं और न कार तारक कम्पनी का साहब। परन्तु उनके स्मारक और भलाई की बातें लोगों के मन में अभी तक बसी हुई हैं और दूसरे व्यक्तियों को प्रेरणा प्रदान करती रहती हैं।

*

बलिदान की परम्परा

राजस्थान की भूमि वीर-प्रसविनी कहलाती है। चित्तौड़ का यश सर्वविदित है। भूतपूर्व जोधपुर रियासत में भी अनेक वीर पैदा होते रहे हैं जिनकी गाथायें उन क्षेत्रों के चारण गद्‌गद् होकर गाते है। राजा रामदेव, वीर दुर्गादास और प्रण-वीर पाबूजी राठौर का नाम आज भी अमर है। सन् १६६२ मे मेजर शैतान सिंह चीनी आक्रमणकारियों से बहुत बहादुरी के साथ देश की रक्षा करते हुए शहीद हुए थे। उसी मरुधरा की ढाणियों की एक छोटी-सी राजपूत बस्ती, वीरपुरी मे एक साधारण घराना है, जिसकी यह परम्परा चली आ रही है, कि उस परिवार का प्रत्येक पुरुष तीस-बत्तीस वर्ष की उम्र पाने से पूर्व ही किसी न-किसी युद्ध मे वीरगति प्राप्त कर लेता था।

इस घराने को जोधपुर रियासत से सिरोपाव, सोना और नगारे की इज्जत मिली हुई थी। यहाँ तक कि दरबार में जाने पर महाराजा स्वयं खड़े होकर परिवार के सरदार का स्वागत करते थे। कहा जाता है कि इनके पूर्वजों मे कई ऐसे अद्‌भुत जुझार पैदा हुये, जो सिर कट जाने के पश्चात् भी कुछ देर तक हाथ में तलवार लिये युद्ध करते रहे। इसी घराने के ठाकुर हीरसिंह ने प्रथम महायुद्ध मे, फ्रांस की रण

छक्के छुड़ा दिये थे। स्वयं घायल होकर भी एक दूसरे घायल सिपाही को कन्धे पर उठाकर ले जाते हुए उसको सुरक्षित स्थान पर पहुँचाते समय दुश्मन की गोलियों से उनका प्राणान्त हो गया।

ठाकुर भीम सिंह की मृत्यु का समाचार उनकी विधवा माँ और पत्नी को मिला तो शोकातुर माता ने सर्वप्रथम यह बात पूछी कि मेरे पुत्र के शरीर में गोली किस जगह पर लगी। उसको यह बताया गया कि किस प्रकार वह जर्मन सिपाहियों को मौत के घाट उतारता रहा और अन्त में घायल साथी के प्राण बचाते हुए धोखे से मारा गया। फिर भी वह अपने शेष जीवन में इस संताप से ग्रस्त रही कि उसका पुत्र पीठ में लगी गोली से मारा गया, जो उस परिवार के लिए कलंक था।

विधवा माँ और पत्नी एक मात्र मासूम बच्चे पर सारी आशाएँ केन्द्रित कर उसे वीरता भरी कहानियाँ सुनाया करतीं। जब उसकी आयु तेइस चौबीस वर्ष की हुई तो द्वितीय विश्व-महायुद्ध का प्रारम्भ हो चुका था। जोधपुर नरेश के बुलाने पर युवक भूरसिंह परिवार की परम्परानुसार दादी, माता और पत्नी के पास विदा लेने गया। विदा करते हुए माँ ने कहा, "बेटा, मुझे एक संताप आज भी खाये जा रहा है, यद्यपि तेरे स्वर्गीय पिता को यथेष्ट यश मिला था किन्तु उनकी मृत्यु पीठ पर गोली लगने से हुई। अतः यह ध्यान रखना कि इसकी पुनरावृत्ति न हो। पितेश्वरों के आशीर्वाद से तुम्हें विजयश्री प्राप्त हो, मेरी

कोख व परिवार के नाम उज्ज्वल करके अपने घराने के यश को बढाते हुए रण भूमि से वापिस लौटना।"

युवक भूरसिंह ने अपने पिता से भी ज्यादा यश प्राप्त किया। सैकडा दुश्मनों को इटली के रणक्षेत्र में मौत के घाट उतार कर वह वीरगति को प्राप्त हुआ। गोलियों से छलनी हुई लाश को श्रद्धा के साथ मस्तक झुकाकर शत्रु-सेना के अफसरों ने भी सलामीदी और सम्मानपूर्वक उसे दफना दिया गया।

जब भूरसिंह घर से चला था तो युवा पत्नी गर्भवती थी। उसकी मृत्यु के समय बालक पुत्र की आयु केवल दो वर्ष की थी। सरकारी पेंशन से किसी प्रकार घर का निर्वाह होता रहा। वैसे, थोडी सी जमीन भी थी, किंतु परिवार में कोई पुरुष सदस्य खेती को देखने वाला था नहीं, अत जो कुछ बँटाई से प्राप्त होता, उससे गुजारे में मदद मिल जाती थी।

बचपन से ही बालक बडा हृष्ट-पुष्ट था, इसलिये उसका नाम रखा गया जोरावर सिंह। दस साल की उम्र में जोरावर सिंह में इतनी ताकत व हिम्मत थी कि स्कूल में अपने से दुगुनी उम्र के लडकों को पछाड दिया करता, फलत आसपास के गाँवों में कई प्रकार की किंवदन्तियाँ उसके बल के बारे में प्रचलित हो गयीं। इन बातों को सुनकर विधवा माँ का हृदय सदैव भय-भीत रहता। वह पुत्र को सैनिक स्कूल में भर्ती न करवा कर घर पर ही शिक्षा दिलाना चाहती थी। परन्तु जोरावर सिंह बिना कुछ कहे एक दिन छिपकर घर से चल दिया और सैनिक स्कूल

में भर्ती हो गया। स्कूल से उसने अपनी विधवा माँ को पत्र लिखा, " यद्यपि देश स्वतंत्र हो गया है पर हमारी उत्तरी सीमा पर दुश्मन की आँखें है। इस हालत में भारत-माता को किसी भी समय वीरों के बलिदान की आवश्यकता हो सकती है और उसमें सर्वप्रथम हमारे परिवार का योग न रहा तो आपके कोख से मेरा जन्म लेना व्यर्थ होगा।" पत्र पढ़ते समय माँ की दाहिनी आँख फड़क रही थी फिर भी उसने आशीर्वाद सहित जोरावर को सैनिक शिक्षा की मजूरी दे दी।

अक्टूबर-नवम्बर १९६२ का समय था। चीन का आक्रमण हुआ। जोरावर सिंह सेना की सर्वोच्च परीक्षा में उत्तीर्ण होकर निकला। उसकी प्रबल इच्छा थी कि उसे लड़ाई में जाने का अवसर मिले, परन्तु यह इच्छा पूर्ण हो, इसके पहले ही युद्ध-विराम हो गया।

कुछ अर्से बाद पाकिस्तान ने हमारे देश पर हमला किया। कश्मीर, पजाब और राजस्थान के बाड़मेर की सीमाओं पर हमलावरों को रोकने के लिए जिन फौजों को भेजा गया था, उनमें की एक टुकडी का नायक था, युवक जोरावर सिंह। मोर्चे पर जाने से पूर्व वह अपनी माँ से मिलने आया।

विदा के समय माँ को असगुन हो रहे थे। बहुत यत्न करने पर भी वह अपने आँसू न रोक सकी। पुत्र को छाती से लगाकर आशिर्वचन दिया और इतना ही कहा, "बेटा! मुझ से भी बड़ी तुम्हारी भारत-माँ है, उस पर आज दुश्मनों ने

हमला किया है। कुलदेवता तुम्हें विजयी बनायेंगे, परन्तु याद रखना, अगर युद्ध में वीरगति प्राप्त हो तो दुश्मन की गोली पीठ में न लगे।"

मरुभूमि बाड़मेर के सूने इलाके में सिर्फ, सात अन्य जवानों के साथ इस बहादुर रण-बाँकुरे को एक सीमा चौकी की रक्षा का भार सौंपा गया। युद्ध का अधिक जोर कश्मीर और पंजाब की तरफ था, अत राजस्थान के इस वीरान इलाके में थोड़े से सिपाहियों को साधारण हथियार व गोलियाँ देकर तैनात किया गया था।

सितम्बर के दूसरे सप्ताह में एक दिन अचानक ही इस चौकी पर सत्तर-अस्सी पाकिस्तानी सिपाहियों ने गोला-बारूद और हथियारों से लैस होकर हमला बोल दिया। दुश्मन के बहुत से सिपाही मौत के घाट उतार दिये गये, किन्तु इस तरफ भी केवल तीन जवान शेष बचे। वे बुरी तरह घायल हो चुके थे तथा उनकी गोलियाँ भी समाप्त हो गयी थीं।

जोरावर सिंह घायल अवस्था में भी दो बार मरे हुए दुश्मनों के पास जाकर हथियार व गोला-बारूद लाने में सफल हुआ। परन्तु, तीसरी बार आगे बढ़ते ही सामने से शत्रु दल ने उस पर एक साथ गोलियों की बौछार शुरू कर दी और वह बेहोश होकर गिर गया। कुछ समय पश्चात् दूसरी चौकी के हमारे सिपाही वहाँ पहुँच गये। उनको देखकर बुज़दिल पाकिस्तानी हमलावर भाग गये। इस समय तक जोरावर सिंह

को कुछ होश आ चुका था, परन्तु उसके शरीर से इतना खून निकल गया कि वह अन्तिम साँसें ले रहा था।

मरते समय उसने अपने साथियों से कहा "गोलियाँ सीने में लगी हैं । अगर सम्भव हो तो मेरी लाश को मेरे गाँव भेज देना, मेरी माँ ने कहा था" " । मैं चाहता हूँ कि मेरी माँ देखे कि मैंने कुलरी परम्परा का पूर्णतया पालन किया है ।" इतना कहने के पश्चात् उसका शरीर शान्त हो गया। पास खड़े साथी सिपाहियों की आँखें गीली हो गयीं, उन्होंने देश के प्रति कुर्बान हुए उस शहीद को सैनिक सलामी दी।

●

आत्माभिमान

विशेसर बहुत वर्षों बाद बम्बई से राजस्थान अपने गाँव आया था। साथ में पत्नी और बच्चा था। दो-तीन नौकर-दाई भी थे। बहुत बड़ा कारबार छोड़कर १०-१५ दिनों के लिए आता तो नहीं परन्तु वर्षों बाद पुत्र हुआ था। उसके मुंडन की मनौती थी, सालासर के हनुमान जी की। पत्नी बहुत बार याद दिला चुकी थी, इसलिए आना पड़ा। गाँव में उसके मामा-मामी थे जिन्होंने उसे पाल-पोस कर और पढ़ा-लिखा कर बड़ा किया था। अतएव, अपनी सूनी हवेली में न रुक कर ननिहाल में ठहरना उचित समझा।

बम्बई के अपने कारबार में उसे अभूतपूर्व सफलता मिली, इसीलिए, पिछले पन्द्रह वर्षों से रहन-सहन एकदम बदल गया था। वहाँ के बंगले में एयर कण्डीशन्ड कमरे, बेहतरीन फर्नीचर, बड़ी बड़ी मोटर और अन्य सब प्रकार की सुख-सुविधायें थीं।

देश में गल्ले की छोटी सी दूकान मामा की थी। गरीबी तो नहीं थी, फिर भी साधारण सा घर था। मामी चूल्हे-चौके से लेकर घर को झाड़ने-बुहारने तक के सब काम हाथ से करती थी। विशेसर और उसकी पत्नी को किसी प्रकार की असुविधा न हो इसलिए एक कमरे को अच्छी तरह से सँवार दिया था।

निवार के दो पलंग डाल दिए थे, आगरे की एक दरी बिछा दी।

सुनंद मामी ने चाय-नाश्ता दिया तो विशेसर ने देखा कि चीनी-मिट्टी के बर्तनों की जगह काँसे के बरतन हैं। खैर, वह मामी का बहुत अदब रखता था। कुछ नहीं बोला, परन्तु उसकी पत्नी ने तो कह ही दिया कि मामीजी, इस प्रकार के बर्तनों में तो हमारे यहाँ दाई नौकर भी चाय नहीं पीते। मामी के मन पर चोट तो लगी पर कुछ बोली नही।

दूसरे दिन पास के शहर से विशेसर के दो मित्र मिलने आये। मामा भी वहीं बैठे थे परन्तु वे देहाती वेष-भूषा मे थे इसलिए मित्रों से इनका परिचय कराना उचित नहीं समझा। उसी दिन वह बाजार से स्टेनलेस स्टील के बर्तन, अच्छे किस्म का एक टी सेट और बहुत से सामान खरीद लाया। मामी के पूछने पर कहा कि उसके दोनों मित्र बड़े आदमी हैं। वे भला काँसे के बर्तनों में भोजन कैसे करेंगे?

मामी बड़े घर की बेटी थी। उसके पीहर मे स्टील के सिवाय चाँदी के बर्तन भी थे किन्तु अपने घर मे हैसियत और आय के अनुरूप सम्हाल कर खर्च करती थी। परन्तु उसमे स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा था। उसे बहू का तौर-तरीका अच्छा नहीं लगा। उसकी बातचीत में धन के अभिमान की स्पष्ट झलक दिखाई दी। फिर भी सोचा कि दो चार दिना की तो बात है अत चुपचाप सह लेना ही उचित है।

एक दिन विशेसर और उसकी पत्नी बातें कर रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि मामी पास ही रसोई में है। पत्नी कह रही थी, "अच्छा किया जो आपने तीन-चार सौ इन सारी चीजों पर खर्च कर दिए। हमारे ऊपर इनका भी तो खर्च हो जायेगा। देखती हूँ कि मामा जी की हालत अच्छी नहीं है। स्वय तो वे शायद ही कुछ माँगते।'

थोडे दिनों बाद ही वे मम्बइ के लिए रवाना हुए। विशेसर ने औपचारिकता के तौर पर कहा कि मुझे यहाँ आकर बहुत अच्छा लगा, बचपन के दिन याद आ गये। बहुत बार आने की सोचता रहा परन्तु काम के झमेलों से आ नहीं सका। एक बार तो उसके जी मे आया, मामाजी को बता दूँ कि उनके लिए स्टील के अच्छे बर्तन और टीसेट छोडकर जा रहा हूँ परन्तु फिर सोचा कि दो-चार दिन बाद उन्हें स्वय पता चल ही जायेगा।

ट्रेन के पहले दर्जे में सारे सामान रख दिये गये। रास्ते के लिए खाने-पीने की अनेक तरह की सामग्री मामी ने दी और विदा के समय पुन आने का आग्रह भी किया था। परन्तु दो-तीन दिनों से उसके चेहरे पर एक सजीदगी सी थी जो विशेसर से छिपी नहीं रही।

अगले स्टेशन पर जब खाने-पीने के समान की टोकरी खोली गयी तो देखा कि सारे बर्तन, टीसेट तथा दूसरे सामान

हमीद खाँ भाटी

प्रत्येक गाँव या कस्बे मे कभी-कभी ऐसे व्यक्ति हो जाते है जिनको बहुत समय तक लोग याद किया करते है और उनकी भलायी की अमिट छाप जनमानस पर अकित हो जाती है। इस प्रकार के मनुष्य केवल धनी अथवा विद्वान घरानो मे ही पैदा होते है, ऐसी बात नहीं है।

बीकानेर के उत्तर मे पूगल नाम का इलाका है। कहा जाता है, किसी समय मे यहाँ पद्मिनी स्त्रियाँ होती थीं। जो भी हो आजकल तो यहाँ वीरान, रेतीली बजर भूमि है। पीने के पानी की कमी रहती है, इसलिए गाव भी छोटे और दूर-दूर है।

यहाँ के वाशिन्दो का मुख्य धन्धा गाय, भेड पालना है। थोडे से ब्राह्मण और बनिये है जो लेन देन या दुकानदारी का काम करते है। उनके सिवाय, यहाँ मुसलमान गूजरो की पर्याप्त सख्या है जिनके पास बेहतरीन किस्म की गायें रहती है। वे दूध-घी बेचकर अपना निवाह करते हैं। कहावत है कि 'सेवा से मेवा मिलता है' शायद, इसीलिए इनकी गाय दूध ज्यादा देती है और अच्छी नस्ल के बछडे-बछडियाँ भी।

सन १९५१ मे इस तरफ भयकर अकाल पडा था। कूँओ में पानी सूख गया। घरो मे जो थोड़ा-बहुत घास और चारा

था, उससे किसी प्रकार पशुओं की जान बची। परन्तु जब दूसरे वर्ष भी वर्षा नहीं हुई और अकाल पड़ गया तो लोगों की हिम्मत टूट गयी।

कलकत्ते की मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी ने दोनों वर्ष ही वहाँ राहत का काम किया था। मैं भी दूसरे वर्ष कुछ समय तक उस सिलसिले में वहाँ रहा। हम देखते थे नित्य प्रति हजारों स्त्री, पुरुष और बच्चे अपने ढोरों को लिए पैदल कोटा, धारा और मालवा की तरफ जाते रहते थे। ४-५ महीनों के बाद वापस आने की संभावना रहती, इसलिए घर का सारा समान गाय और बैलों पर लदा हुआ रहता। देश और घर छोड़कर जाने में दुःख होना स्वाभाविक है और अभावों से घिरी हुयी हालत में। बीहड़ लम्बा रास्ता और बैशाख की गर्मी, इसलिए सबके चेहरों पर दुःख और थकान की स्पष्ट छाया नजर आती थी। रास्ता काटने के लिए स्त्रियाँ भजन गाती हुई चलतीं। उन लोगों से पूछने पर प्रायः एक-सा ही उत्तर देते कि पानी, अनाज, घास और चारा मिलता नहीं है, क्या तो हम खायें और क्या इन पशुओं को खिलायें।

हमें पूगल के गाँवों के सीमान्त पर गाय-बैलों के बहुत से कंकाल और लाशें देखने को मिलीं। पता चला कि बूढ़े बैलों और गायों को उनके मालिक जंगलों में छोड़ गये। यहाँ भूख, प्यास और गर्मी से इनके प्राण निकल गये।

कई बार तो सिसकती हुई गायें भी दिखाई दीं। उनके लिए यथाशक्ति चारे-पानी की व्यवस्था की गयी, परन्तु समस्या इतनी

कठिन थी कि,यह बन्दोबस्त बहुत थोड़े पैमाने पर ही हो सका। यह भी पता चला कि अच्छी हालत के लोगों ने भी पानी और चारे की कमी के कारण बेकार गाय-बैलों को मरने के लिए जंगल में छोड़ दिया है।

ज्यादातर घरों में इस प्रकार की वारदातें हो चुकी थीं, इसलिए आपस की निन्दा—स्तुती की गुंजाइश भी नहीं थी।

यहीं के किसी गाँव में एक दिन दोपहर के समय पहुँचा। धरती गर्मी से धू-धू करके तप रही थी। अंगारों के समान तपती हुई रेत की आँधी चल रही थी। तालाबों और कूँओं में पानी कभी का सूख गया था। लोग १०-१५ मील की दूरी से पानी लाकर प्यास बुझाते। अधिकांश लोग गाँव और इलाका छोड़कर चले गये थे, कुछ ब्राह्मण और बनिये बचे हुए थे। यहीं मैंने हमीद खाँ भाटी के बारे में सुना और उससे जाकर मिला।

घर कच्चा था पर साफ सुथरा और गोबर से लिपा-पुता था। हमीद खाँ की उम्र ६५-७० वर्ष,के लगभग थी। शरीर का ढाँचा देखकर पता लगा कि किसी समय काफी बलिष्ठ रहा होगा। अब तो हड्डियाँ निकल आयी थीं, चेहरे पर गहरी उदासी छायी हुई थी।

दुआ सलाम के बाद मैंने पूछा "खाँ साहब, गाँव के प्राय सारे लोग चले गये फिर आप क्या यहाँ इस तरह की किल्लत में अकेले रह रहे हैं ?"

वह कुछ देर तक तो मेरी तरफ फटी-फटी आँखों से देखता रहा फिर कहने लगा, "अल्लाह मालिक है, उसीका भरोसा है। कभी न कभी तो कृपा होगी ही। बेटे और बहुएँ, बच्चा और धन (यहाँ गाय-बैल, ऊँट आदि को धन कहते हैं) को लेकर एक महीने पहले ही मालवा चले गये हैं। मुझे भी साथ ले जाने की बहुत जिद करते रहे, पर भला आप ही बताइये, अपनी धौली और भूरी, दोनों को छोड़कर कैसे जाऊँ? इन दोनों से तो एक कोस भी नहीं चला जाता।" (धौली और भूरी इसकी बूढ़ी गायें थीं जिनमें एक लंगड़ी थी और दूसरी बीमार)

"आज इनकी यह हालत हो गयी है, नहीं तो दोनों ने न जाने कितने नाहर—भेड़ियों से मुठभेड़ ली है। आस पास में, इनके बराबर दूध भी किसी गाय के नहीं था। ३-४ सेर तो बछड़े ही पी जाते, फिर भी १०-१२ सेर प्रत्येक का हमारे लिए बच जाता। इनके पेट के २०-२५ गाय बैल और बच्छे मेरे यहाँ हैं।'

"ये दोनों भी मेरे घर की ही बेटियाँ हैं, जिस वर्ष मेरे छोटे लड़के फत्ते का जन्म हुआ था, उसके लगभग ही ये दोनों जन्मी थीं। १५ वर्ष तक हम लोग इनका दूध पीते रहे। अब आप ही बताइये बुढ़ापे में इन्हें कहाँ निकाल दूँ? भला, कोई अपनी बीमार बहन बेटी को घर से थोड़े ही निकाल देता है?' बातें करते हुए उसकी आवाज रुँआसी हो गयी थी। देखा, धुँधली आखों से टप-टप आँसू गिर रहे हैं।

बातें तो और भी करना चाहता था परन्तु इतने मे सुनाई दिया कि बाहर के सहन मे धौली और भूरी रम्भा रही हैं, शायद भूखी या प्यासी होगी। हमीद खाँ उठकर बाहर चला गया।

गाँव के मुखिया प० वशीधर के साथ ८-१० व्यक्ति रात मे मिलने को आये। उनके कहने के अनुसार ५० वर्षों में ऐसा भयकर अकाल नहीं पडा था। हमीद खाँ की बात चली तब उन्होंने कहा "वह भी जिद्दी कम नहीं, अपने लिए दो जून खाना तक नहीं जुटा पाता पर इन दोनों बुड्ढी बेकाम गायों पर जान देता है। दिन मे धूप बहुत हो जाती है, इसलिए दो बजे रात मे उठकर ५ मील पर के तालाब से दोनों के लिए एक मटका पानी लाता है। घरवाले जो अनाज छोडकर गये थे, उसमे से बहुत सा बेचकर इनके लिए चारा और भूसा खरीद लाया। जब वह चुक गया तो अपना मकान ऊँचे व्याज पर गिरवी रखकर और चारा लिया है।"

गर्मीके मौसममे भी इस तरफ रातें ठडी हो जाती है, परतु मुझे नींद नहीं आ रही थी। सोच रहा था, क्या वास्तव में ही हमीद खाँ मूर्ख और जिद्दी है ? बातचीत से तो ऐसा नहीं लग रहा था। हाँ एक बात समझ में नहीं आयी, वह तो मुसलमान है, जिसके लिए गाय 'माता' नहीं है, फिर क्यों इन दो बेकाम गायों के पीछे नाना प्रकार के कष्ट सहकर

तिल तिल करके स्वय मृत्यु की तरफ अग्रसर हो रहा है ? अपना एक मात्र मकान इनके चारे पाले के लिए गिरवी रख दिया है। थोडे दिना बाद मूल और व्याज बढकर इतना होगा कि चुकाना असम्भव हो जायगा। जब उसके बाल-बच्चे मालवा से थके-हारे वापस आयेंगे तो उन्हें शायद अपना यह पैतृक घर छोड़ देना पडेगा।

जाने से पहले एक बार फिर हमीद खाँ से मिलने की इच्छा हुई। बहुत सुबह वहाँ जाकर देखा कि वह धौली और भूरी के शरीर पर तन्मय होकर हाथ फेर रहा है और वे दोनो बडी ही करुण दृष्टि से उसकी तरफ देख रही हैं, शायद कह रही होंगी कि बाबा, गाँव छोडकर सब चले गये फिर तुम क्यों इस प्रकार भूखे प्यासे रहकर मृत्यु के मुख मे जा रहे हो ? हमे अपने भाग्य पर छोडकर बच्चों के पास चले आओ।

सोसाइटी की तरफ से थोडी बहुत व्यवस्था कर मन ही मन उस अपढ मुसलमान को प्रणाम करके भारी मन से उस गाँव से रवाना हुआ। २२ वर्ष बाद भी हमीद खा का वह गमगीन चेहरा आज तक भुला नहीं पाया हू।

लक्ष्मी दरोगी

श्रीमती स्टो की विश्व प्रसिद्ध कृति 'अक्ल टाम्स् केबिन' का हिन्दी अनुवाद 'टाम काका की कुटिया' बहुत वर्षों पहले पढा था, उस पुस्तक मे अमेरिका के हब्शी गुलामो का कुछ ऐसा हृदय द्रावक वर्णन है कि ४० वर्ष बाद भी वह मेरे मानस-पटल पर अकित है।

बहुत वर्षों बाद यदि स्पेन पुर्तगाल, ब्रिटेन और डचो द्वारा हब्शी गुलामो और दक्षिण अफ्रीका मे भारतीयों के साथ किये गये अत्याचारो के वर्णन नहीं पढ लेता तो ऐसा लगता कि शायद मिसेज स्टो ने अतिशयोक्ति से काम लिया है।

वैसे मौर्य काल मे हमारे यहाँ भी दासों के बारे मे वर्णन मिलते है किन्तु भारत मे यह प्रथा ज्यादा दिन नहीं रही और यहाँ के गुलामो के साथ व्यवहार भी यूरोप और अमेरिका के सदृश नृशसतापूर्ण नहीं था। वाल्मीकि रामायण मे राजा जनक द्वारा सीताजी के दहेज मे दास दासियो का दिया जाना लिखा है परन्तु ये सब गुलामो की कोटि मे थे या नहीं, यह विवादास्पद है।

मुगल बादशाहों द्वारा आये दिन अपमानित और लाछित राजपूत राजाओं को अपना आक्रोश निकालने और ऐय्याशी के लिये कोई साधन चाहिये था, इसी दौर मे सत्रहवीं शताब्दी,

मे दूसरी अनेक बुराइयों के साथ साथ राजस्थान के राजघरानों मे दारोगा या गोला प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी मे राजाओं के अलावा छोटे छोटे सरदारों के यहाँ भी दस-बीस गोले-गोलियाँ रहते थे। इनके पुरुषों का काम होता था ठाकुर या कवर साहब की चाकरी करना और स्त्रियों का ठकुरानी या कु वरानी का साज श्रृंगार करने के सिवाय पलग सेवा का।

बहुत से पाठक जो राजस्थानी सामन्तों की प्रथाओ से अनभिज्ञ हैं पलग सेवा का अर्थ नहीं समझ पायेंगे। राजा या ठाकुर जब रानी या कृपापात्री रखेल के साथ काम क्रीडा में रहते तो उस समय पलग के इर्द-गिर्द २-४ गोलियाँ शराब के गिलास, तौलिये, रूमाल अथवा केसरिया दूध आदि पौष्टिक पदार्थ लेकर खड़ी रहती थीं। कभी-कभी, मन हो जाने पर रानी को अलग हटाकर इस गोलियों में से किसी एक या दो को पलग पर बुला लिया जाता था।

गोले और गोली एक प्रकार से रावले के गुलाम होते थे। इनकी सन्तानों पर राजाओं और ठाकुरों का पूर्ण अधिकार था। अधिकाश तो उनकी अपनी नाजायज सन्तति ही होती थीं।

कुँवरानी के विवाह में अपनी हैसियत के मुताबिक ५ से लेकर १०० तक अविवाहित गोलियों को दहेज में दिया जाता था।

इनका नाम-मात्र का विवाह वर पक्ष के गोलों से कर दिया जाता परन्तु इन सबको रहना पड़ता कुँवर साहब या उनके कृपापात्र मुसाहिबों की रखैलों के रूप में।

आकृति विशेषज्ञों का कहना है कि वर्ण-संकर सन्तानें ज्यादा सुन्दर और कुशाग्रबुद्धि की होती हैं। शायद, इसीलिए ये गोले और गोलियाँ राजकुमार और राजकुमारियों से अधिक आकर्षक होते थे। इनमें से बहुत से रावले की सुविधाओं के कारण अच्छी शिक्षा भी प्राप्त कर लेते।

मेरे राजनैतिक क्षेत्र के एक जागीरदार के गाँव में एक दारोगा कांग्रेस कार्यकर्ता है, बहुत ही परिश्रमी और सूझ बूझ वाला। एक प्राइमरी स्कूल मे अध्यापक है। मासिक वेतन १५०) रुपया है। हिन्दी साहित्य मे उसकी रुचि है। अध्ययन भी पर्याप्त है, इसलिये समय निकाल कर आपस में हम कुछ साहित्य चर्चा कर लेते थे।

उन दिनों शक्ल सूरत से वह किसी आंग्ल राजकुमार सा लगता था। शिक्षा साधारण सी थी परन्तु स्मृति और प्रतिभा इतनी थी कि अगर मौका मिलता तो शायद बड़ा विद्वान होता।

पहली बार देखने पर ही उसके प्रति मेरा आकर्षित हो जाना स्वाभाविक था। जान-पहचान बढ जाने पर एक दिन उसने मुझे अपने घर भोजन पर बुलाया। दही छाछ की राबड़ी, शुद्ध घी और शक्कर के साथ बाजरे की रोटी और

और सांगर का साग, आज भी वह सुस्वादु भोजन याद आता है।

छोटे से सुमकुन परिवार में माँ, पति-पत्नी और एक बच्चा था। वैसे पत्नी भी सुन्दरी थी परन्तु माँ तो उस प्रौढ़ अवस्था में भी अप्सरा सी लगती थी। उसकी बातचीत और तौर-तरीकों मे राज घराने की तहजीब स्पष्ट थी।

पता नहीं क्यों इन लोगों के प्रति सहानुभूति बढ़ती गयी। जब भी गाँव मे जाता, इनसे मिलता। शायद ही कभी उन्होंने अपने किसी कार्य के लिये मुझसे कहा होगा। खेती और स्कूल की शिक्षकी से जो आय होती, उसी मे अपना खर्च चला लेते।

असेम्बली के चुनाव मे उस क्षेत्र से मेरा कांग्रेस-मनोनीत साथी बुरी तरह हार गया और वहाँ का जागीरदार जीत गया। वैसी बहुत प्रकार की गन्दी बातें उस ठाकुर के बारे मे प्रचलित थीं परन्तु न जाने क्यों लोगों ने उसे इतने अधिक मत दिये।

वहाँ इस बात की आम चर्चा थी कि मेरे मित्र की माँ उस ठाकुर के पिता गढ मे थी। वह पद-दायत तो नहीं हो पायी परन्तु कुछ वर्षों तक बडे ठाकुर की उसपर विशेष कृपा रही थी। ठाकुर की और मेरे मित्र की शकल सूरत इतनी मिलती-जुलती थी कि वहाँ के लोगा मे धारणा थी कि वह वर्तमान ठाकुर के पिता का औरस पुत्र है।

चुनाव के नतीजे के बाद एक दिन मैं उनके घर गया हुआ था। ठाकुर के बारे मे बातें हो रही थीं। मैंने देखा कि वृद्धा

की आँखें गीली हो गयी हैं। शायद, उसे बीते जमाने की बातें याद आ गयीं।

वैसे, वह मितभाषिणी थी परन्तु उस दिन शायद वहुत मुखर हो गयी, सकोच भी नहीं रहा। उसने जो आत्मकथा सुनाई उसका सक्षेप यह है—

'मेरी माँ एक बडे जागीरदार की उप पत्नी थी। मैं अपनी मा की इकलौती सतान थी। ठाकुर मुझे अपनी पुत्री की तरह ही प्यार करता था। चूँकि मुझ पर बाई सा (कुवरानी) का बहुत स्नेह था इसलिये माँ के बहुत आरजू मिन्नत के बावजूद मुझे उनके साथ दहेज मे दे दिया गया।"

'इस ठिकाने मे आकर मेरे दुखो का पार नहीं रहा। विवाह तो प्रथा के अनुसार एक दारोगा से कर दिया गया परन्तु रहती थी, मैं कुँवर साहब की सेवा मे ही। कभी कभी वे मुझे कुँवरानी जी के सामने ही पलग पर बुला लेते थे।

"दो वर्ष बाद रामू का जन्म हुआ। कुँवर साहब इसको बहुत प्यार करते थे। परन्तु बाई सा हम दोनों से बहुत नाराज रहने लगी। रात दिन जली कटी सुनाती रहती। एक दो बार तो बच्चे को जहर देने का भी प्रयास किया गया।"

"थोडे दिनो बाद ही कुँवर साहब की कृपा एक दूसरी दरोगी लडकी पर हो गयी और मुझे अपने घर भेज दिया गया। ठाकुर साहब के स्वगवासी होने के बाद कुँवर साहब ठाकुर बने। फिर तो उनके ऐशो इशरत की कोई सीमा नहीं रही। एक दिन उन्होंने मुझे पलग सेवा के लिये बुलाया। उस

दिन मेरे पति बीमार थे उन्हें छोड़कर में नहीं जा सकी। दूसरे दिन रावले से तीन चार व्यक्ति आये और मेरे पति को और मुझे पकड़ कर गढ में ले गये। उस दिन ठाकुर ने अपने मुसाहिबों द्वारा बारी बारी से मेरे पति के सामने ही मुझ पर जो अत्याचार कराया वह वर्णन योग्य नहीं है। मेरे बीमार पति ने कुछ रोक थाम का प्रयत्न किया तो हत्यारों ने तत्काल उसका गला घोंटकर मार दिया।"

कुछ क्षण चुप रहकर उसने फिर कहा—

"विक्षिप्त और आधी बेहोशी की हालत में रोती-बिलखती मैं अपने घर आ गयी। इसके थोड़े दिन बाद ही वतमान ठाकुर का जन्म हुआ। इनकी और मेरे रामू की शकल इतनी मिलती जुलती थी कि ठाकुर साहब को बाई सा पर वहम हो गया और उनमे आपस मे अनबन हो गयी। कुछ समय बाद बाई सा ने ठाकुर साहब को जहर देकर मरवा दिया। राज घरानों मे इस प्रकार की घटनायें प्राय ही होती रहती थीं।"

"बाइ सा अपने एक कृपापात्र मुमाहिब के जरिये ठिकाने का कार्य सम्भालने लगी। पता नहीं क्यों, पुन उनका मेरे प्रति स्नेह हो गया और मुझे रावले मे बुला लिया गया। रामू कुँवर साहब के साथ-साथ पढ़ने लगा। इन बाता का भी २५ वर्ष हो गए। बाई सा का देहान्त होने के बाद सारे अधिकार वर्तमान ठाकुर साहब के पास आ गये थे। मेरा रामू कांग्रेस के साथ है इसलिए वे हमलोगों से नाराज है।" मैंने देखा कि उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे हैं। उसने मुँह फेर लिया और शीघ्रता से घर के भीतर चली गयी।

शिवजी भैया

कुछ इस प्रकार के व्यक्ति होते है, जिनसे मिलते जुलते लोग हर काल, समाज और देश मे मिल जाते हैं। मैं शरत् बाबू का उपन्यास 'विराज बहू' पढ रहा था। उसमे नीलाम्बर चक्रवर्ती के प्रसग मे मुझे राजस्थान के शिवजी-रामजी की याद आ गयी। अगर यह पुस्तक उस अचल के किसी लेखक द्वारा लिखी गयी होती तो जानकार लोगों को नीलाम्बर के चरित्र मे शिवजी-रामजी का भ्रम होता।

इस कथा के नायक का जन्म आज से सौ वर्ष पहले शेखावाटी के किसी कस्बे मे हुआ था। पिता का देहान्त बहुत पहले हो गया था। साधारण सी सम्पन्न गृहस्थी थी। घर मे माता और दो भाई थे। माता यद्यपि पढी लिखी तो नही थी, परन्तु बहुत ही चतुर और बुद्धिमती थी। पति के मरने के बाद दोनों पुत्रो को अच्छी शिक्षा दी। घर-गृहस्थी को भी सम्भाल कर रक्खा। दोनो भाइयों में आपस में इतना प्रेम था कि गाँव के

लोग इनको राम लक्ष्मण की जोडी की उपमा देते। उस समय की रीति के अनुसार दोनों के विवाह बचपन मे ही हो गये थे। प्राय जमींदारी तो समाप्त हो गयी परन्तु पहले की सचित धन-दौलत बहुत है, ठाकुर सक्रिय राजनीति मे भाग लेने लगा है।

एक दिन, बडे भाई रामकिशन ने बम्बई जाकर काम करने का विचार माता के सामने रक्खा। यद्यपि उसकी आयु केवल बीस वर्ष की ही थी, कभी विदेश जाने का अवसर भी नहीं मिला था, यात्राएँ बीहड और कष्टमय थी, परन्तु पिता का साया सिर पर था नहीं जो कुछ पास मे था, वह पिछले वर्षों मे खर्च हो गया था, इसलिए भारी मन से माता ने आज्ञा दे दी।

छोटे भाई शिवजीराम और पत्नी को वृद्धा माता की सेवा के लिए घर पर छोडकर वह बम्बई के लिए विदा हो गया। शिवजीराम के जिम्मे कुछ काम तो था नहीं, इसलिए भाई के छोटे बच्चे को खेलाता रहता और गाँव मे कभी साधु-सन्त आते तो उनकी सेवा में सबसे आगे पहुँच जाता।

तीन मील दूर जगल मे एक कुआँ था, सुबह जल्दी उठकर नित्यकर्म के लिए वहाँ चला जाता। साथ मे चार-पाँच सेर अनाज ले जाता जो पक्षियों को चुगा देता। वहाँ से आकर अपनी दो गायों को दाना-पानी खिलाता, उनके ठाण की

सफाई आदि का सब काम करता। फिर स्नान करके नियम से रामजी के मन्दिर जाता, वे उनके कुल देवता थे।

गाँव मे रहकर वैद्यक और नाडी परीक्षा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इसलिए बचे हुए समय मे गरीब रोगियों की चिकित्सा करता और बहुतो को दवा के सिवाय पथ्य भी अपने पास से दे देता था।

इन सबके सिवाय उसने एक नियम यह भी बना रखा था कि गाँव मे किसी की भी मृत्यु हो, वहाँ जरूर पहुँच जाना और चलेवे के सारे कामो मे पूरे मनोयोग से हिस्सा लेता। चाहे बैसाख जेठ की गर्मी हो या पूस माघ की सर्दी की रात, ऐसा कभी नहीं हुआ कि शिवजीराम ऐसे मौके पर नहीं पहुँचा हो।

उन दिनो छुआछूत का बहुत विचार था परन्तु उसकी मान्यता थी कि मृत्यु के बाद भगवान की जोत मे जोत मिल जाती है। मृतक की कोई जाति नहीं होती। इसलिए गरीब हरिजनो के यहाँ भी ऐसे मौको पर पहुँच जाता। अपने गाँव और आस पास के देहात मे सब लोग उसको शिवजी भैया कहकर पुकारते थे।"

माता धार्मिक भावना की थी और उसकी प्रेरणा से ही शिवजीराम की इन कामो मे रुचि हुई थी। परन्तु पत्नी और भौजाई बराबर नाराज रहतीं। वे कहतीं—'सब झलजलूल काम तुम्हारे जिम्मे ही पडे है।"

कभी कभी गाँव के सडे-मुसडे भी बीमारी या कष्टो का बहाना करके ठग ले जाते। शिवजीराम के पास आकर शायद ही कोई निराश लौटा हो। बड़ा भाई तीन चार वर्षों में देश आता और दो तीन महीने रहकर फिर बम्बई चला जाता। माता का देहान्त होने के बाद पत्नी और पुत्र को भी वह अपने साथ बम्बई ले गया। गाँव मे अब शिवजीराम अपनी पत्नी और बच्चो के साथ रह गये।

सन् १६०१ मे बम्बई मे जो महामारी हुई, उसमें रामकिशन की मृत्यु हो गयी। उसकी विधवा पत्नी और चौदह वर्ष का पुत्र रामदयाल दोनो रोते बिलखते अपने गाँव चाचा के पास आ गये। अब सारा भार उस पर पडा। बम्बइ न जाकर अपने कस्बे में ही गल्ले की दुकान कर ली भतीजे को भी साथ ले जाकर काम सिखाने लगा।

दुकानदारी मे जो सूझ-बूझ और चालाकी चाहिए उसका शिवजीराम मे सर्वथा अभाव था। लोग उधार ले जाते रुपया पैसा देते नहीं। वे जानते थ, शिवजीराम कभी कचहरी जाकर अदायगी के लिए नालिश नहीं करेगा। आखिर, दो तीन वर्ष बाद नुकसान देकर दूकान उठानी पडी। इसी बीच भतीजा रामदयाल अपने पिता की तरह ही काफी होशियार हो गया और बम्बई चला गया।

रामदयाल के पिता का वहाँ के व्यापारियो से अच्छा सम्पर्क था और उसकी इमानदारी की साख भी थी। बम्बई जाकर उसने काटन एक्सचेंज मे अपने पिता के नाम के पुराने फर्म को फिर से चालू कर लिया। सयोग ऐसा बना कि थोडे वर्षों मे ही काम जम गया और उसके पास लाखो रुपये हो गये।

कइ बार चाचा को बम्बई आने के लिए रामदयाल ने लिखा परन्तु गाँव मे इतने तरह के काम रहते कि शिवजीराम बम्बई न जा सका। द्वारका धाम की यात्रा के समय उसको सपरिवार बम्बई ठहरने का मौका मिला। वहाँ अपने भतीजे का वैभव और सुनाम देखकर प्रसन्नता हुई। रामदयाल ने और उसकी पत्नीने उन्हें सदा के लिए वहीं रहनेका आग्रह किया परन्तु उसका मन इस व्यस्त महानगरी मे नहीं लगा और थोडे दिनों बाद ही वापस राजस्थान आ गया। अब शिवजी भैया की जगह सेठ शिवजीराम हो गया। दान-धर्म की मात्रा बढ गयी, परन्तु प्रौढ हो गया था, इसलिए पहले जितनी भाग दौड नहीं कर पाता था।

इतने गुणो के बावजूद उसमें एक कमी रही कि घर की समस्याओ की तरफ कभी ध्यान नहीं दिया। दोनो लडकियों का विवाह तो अच्छे घरो में हो गया परन्तु एक मात्र लडका लिख-पढ नहीं पाया।

कुछ ऐसे लोग भी थे जिनको शिवजीराम के यश और मान बढ़ाई से ईर्ष्या होने लगी। उन्होंने बम्बई में रामदयाल के कान भरने शुरू किये कि इतनी मेहनत करके कमाते तो तुम हो और वाह वाही तथा मेठाई सब तुम्हारे चाचाजी की होती है। उसकी स्त्री तो पहले से ही भरी बैठी थी पर पति के डर से चुप थी। उसके बहुत कहने सुनने पर बहुत वर्षों बाद राम दयाल स्त्री बच्चों सहित बम्बई से अपने गाँव आया। वास्तव में ही जो बात लोगों ने कही थी वह सही निकली। चारों तरफ सेठ शिवजीराम की प्रशंसा हो रही थी। वे जिस तरफ निकल जाते, लोग खड़े होकर जुहार राम राम करते। सुबह शाम सैकड़ों अभ्यागतों के लिए अन्न क्षेत्र चालू था। सारे दिन जरूरत मंदों की भीड़ लगी रहती थी। मौका देखकर राम-दयाल ने चाचा से बँटवारे के लिए कहा। एक बार तो शिवजी-राम को बहुत ही कष्ट हुआ पर तुरन्त ही सम्हल कर बोले, 'बेटा कमाया हुआ तो सब तुम्हारा है। मैंने तो उम्र भर केवल खर्च ही किया, इसलिए जैसे चाहो कर लो, मुझे इसमें क्या कहना है।'

एक कागज पर सम्पत्ति का ब्यौरा लिखा गया। बड़ी हवेली और बम्बई का फर्म रामदयाल ने अपने लिए रखना चाहा। नकद रुपये का दो बराबर का हिस्सा हुआ। अपना मकान छोड़कर जाने में बहुत क्लेश होता है परन्तु शिवजीराम के चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं आयी। उसने कहा, "तुम्हारी

मान—बडाई और इज्जत के लिए बडी हवेली मे रहना सर्वथा उचित भी है। म कल ही छोटी हवेली मे चला जाऊँगा। अब रही नक्द रुपये की बात सो मुझे तो अन्दाज ही नहीं था कि अपने पास इतना सारा रुपया ह। मै भला इनको कहाँ सम्हाल पाऊँगा ? दवदत्त जैसा है, तुम जानते ही हो, इन रुपयो को तुम अपने पास ही रहने दो। खर्च के लिए जितनी जरूरत होगी, मँगवा लिया करूँगा।' अन्तिम वाक्य कहते हुए उसकी आँखें जरूर गीली हो गयी थीं। रामदयाल सोचने लगा कि न तो चाचा जी ने हिसाब की जाँच की, न हवेली छोडने मे आपत्ति की और न बम्बई के फर्म की साख (गुडविल) के बदले मे ही कुछ चाहा, बल्कि सारे रुपये भी मेरे पास ही छोड रहे है।

उसे अपने आप पर ग्लानि और लज्जा हो आयी। रोता हुआ चाचा के पैरा पर गिर कर क्षमा माँगने लगा। कहने लगा, "लोगो के बहकावे मे आकर मैंने यह नासमझी की। मुझे किसी प्रकार का भी बँटवारा नहीं करना है। बडे भाग्य से आप सरीखे चाचा मिलते है। पिताजी तो बचपन मे ही छोडकर चले गये। अगर आप पढा-लिखाकर मुझे योग्य नहीं बनाते तो भला आज हमारा यह वैभव थोडे ही हो पाता।"

कुछ दिनों बाद बम्बई जाते समय अपने छोटे ... देवदत्त

को भी साथ ले गया। वहाँ जाकर उसकी पुरानी आदतें छूट गयीं और वह भी काम में लग गया।

मैंने जब शिवजीरामजी को देखा था उस समय वे अस्सी वर्ष के वृद्ध थे। सयम और त्याग का जीवन रहा, इसलिए उस समय भी स्वास्थ्य अच्छा था। दान धर्म के तौर-तरीके बदल गये थे। सदाव्रत और ब्राह्मण भोजन के साथ-साथ, उनके द्वारा स्थापित स्कूल, अस्पताल और जबाघर भी जनता की सेवा कर रहे थे।

*

धर्म की समाधि

दिल्ली से ७० मील उत्तर मे सरधना नाम का एक छोटा सा कस्बा है। इस समय इसकी दशा खराब है। टूटे हुये पुराने महल, दो-चार गिरजे, थोड़े से जैन मन्दिर एव कुछ पुराने जीर्ण-शीर्ण मकानात है। इन सबके सिवाय एक छोटा सा बाजार है जिसमे स्थानीय दूकानदारो के अलावा बीस तीस शरणार्थियों की दूकानें हैं। परन्तु आज से लगभग २०० वर्ष पहले इस कस्बे का अपना महत्व था। देश विदेश के अनेक प्रकार के सामानों से यहाँ की दूकानें भरी रहतीं। पजाब से दिल्ली के रास्ते मे यह कस्बा पड़ता है इसलिये यहाँ प्राय बडे-बडे सरदार, फौजी अफसर व्यापारी एव अन्य लोग आते-जाते रहते थे। यहाँ का शासन बेगम समरू नाम की एक दुर्धप, बहादुर परन्तु कामुक एव सुन्दरी विधवा के हाथ मे था।

बेगम समरू की भी अपनी एक कहानी है। ऐसी औरतें सौ-पचास वर्षों मे दो चार ही पैदा होती है। इस सन्दर्भ में इगलैण्ड की महारानी एलिजाबेथ, आस्ट्रिया की मैरिया थेरेस्सा और हमारे यहाँ की रजिया बेगम के नाम लिये जा सकते है। बचपन मे सफूर खाँ नाम के एक पठान सरदार ने इसे गुलामों के सौदागरों से खरीदा था। सफूर खाँ के मरने के बाद उसके लड़के बशीर खाँ के हरम मे वह पाच वर्ष तक रही। एक दिन मेरठ के नौचन्दी के मेले में प्रसिद्ध फ्रासीसी जनरल समरू ने उसे देख

लिया और उसकी सुन्दरता पर मोहित होकर १० हजार सोने की अशर्फियो मे मुन्नी उर्फ दिलाराम को बशीर खाँ से खरीद लिया। वहाँ आकर मुस्लिम मजहब छोड़कर वह ईसाई हो गयी और नाम भी दिलराम से बदल कर हो गया जुवान उर्फ समरू बेगम।

दोनों पति-पत्नी बहादुर और सूझ-बूझ वाले थे। एक अच्छी सुशिक्षित फौज इनके पास थी, जिसको किराये पर भेजते रहते। उन दिनों छोटी-छोटी लड़ाइयाँ होती रहती थीं जिनसे उन्हें अच्छी आय हो जाती। सेना की शिक्षा एव सचालन का कार्य दोनो स्वय करते। रुहेलो से दिल्ली के बादशाह शाह आलम को बचाने के कारण इन्हें शाही खिलअत् और सरधना का उपजाऊ परगना इनाम मे मिला। थाडे वर्षों बाद ही संदेहात्मक ढग से बूढ़े नवाब का देहान्त हो गया और तब सत्ता रह गई एक मात्र विधवा बेगम के हाथ मे। उसके बाद इसने अपनी फौजी ताकत और भी बढ़ायी। विदेशी विशेषज्ञ द्वारा उन्हें नये ढग से सुसज्जित किया। बड़ी-बड़ी तोपें, बेहतरीन बन्दूकें और तेज दौड़नेवाले घोड़ दूर-दूर से मँगाये गये। टामस और लवसुल नाम के दो बहादुर विदेशी सेनापतियों के सरक्षण मे इसकी फौजें थीं, दोनो उसके प्रेमी भी थे। उस समय के जागीरदार लड़ाइयाँ न होने पर डाके डलवाते थे, परन्तु बेगम ऐसे कार्यों को बुरा समझती। यहाँ तक कि उसके परगन मे

डाकुओं की लूट-मार करने की हिम्मत नहीं हुई। वह अपरा-धियों को बहुत कडा दण्ड देती। किसी की आँखें निकलवा लेती तो किसी को जमीन मे गडवा कर उस पर कुत्ते छुडवा देती थी। उन दिनों लोगों मे आतक उत्पन्न करने के लिये ये सभी बातें जरूरी भी थीं।

पिछले वष दो मित्रा के साथ दिल्ली से हरिद्वार जाते सरधना ठहरा था।

वहाँ अब भी बीस पचास घर अग्रवाल जैनियों के है, परन्तु उस समय तो वहाँ उनकी प्रधानता थी। वे बेगम के खजाची, अर्थ मन्त्री एव गृह-प्रबन्धक जैसे ऊँचे ओहदो पर थे।

ज्ञानचन्द नाम के एक वैश्य की वहाँ मोदीखाने की बडी दूकान थी। यहाँ से बेगम की फौजों के लिये रसद आती थी। ज्ञानचन्द दूकान का काम सभालता और उसका एक मात्र पुत्र रतनचन्द रसद का आडर लाने के लिये किले में जाता था। रतनचन्द की आयु लगभग २६-३० वर्ष की थी। घर मे बहुत सी गाय-भैंसे थीं, खाने-पीने के लिये कमी नहीं थी। बचपन से ही कसरत-कुश्ती करता रहा इसलिए चेहरे पर सुन्दरता के साथ पौरुष की आभा भी यथेष्ट थी। एक दिन किले मे वह गया हुआ था कि बेगम की नजर उस पर पडी। इसके बाद महल से बुलावे आने शुरू हो गये। बेगम के कहने पर गल्ले के सिवाय

उसने एक कपडे की दूकान भी कर ली। दोनों दूकानें बहुत अच्छी चलने लगीं।

पौष माघ की एक रात्रि मे रतनचन्द को बेगम साहिबा के यहाँ से बुलावा आया। खिदमतगार उसे ख्वाबगाह में छोड कर बेगम को खबर देने चली गई। रतनचन्द पहली बार ही महल के उस हिस्से मे आया था। बिल्लौरी शीशे के झाड-फानूसो मे हजारो मोम बत्तियाँ रोशन थीं, हिनेकी खुशबू चारों तरफ फैल रही थी। नगी औरतो की आदमकद बडी बडी तस्वीरें विभिन्न कामोत्तेजक मुद्राओं मे दीवालो पर लगी हुई थीं। बीच मे सोने-चाँदी का एक बहुत बडा पलग था जिसके पास ही तरह-तरह की शराब की सुराहियाँ और खाली प्यालियाँ रक्खी थीं। हीरे-पन्ने से जडा हुआ मोतियों की झालर का एक हुक्का भी रक्खा हुआ था। थोडी देर बाद बेगम आई, वैसे उसके साथ चार पाँच दासिया हमेशा रहती थीं पर आज वह अकेली थी। कपडे भी कुछ अजीब ढग से पहने हुये थे। रतनचन्द ने बाअदब उठकर सलाम अदा किया और कहा कि हुजूर ने इस वक्त गुलाम को किस लिये याद फमाया।

जान-बूझ कर कमरे में केवल एक पलंग रक्खा गया था, बेगम ने रतनचन्द से खडे न रहकर अपने पास बैठने को कहा। जिसके भय और प्रताप से लोग कांपते रहते, वह बेगम आज उस साधारण से व्यक्ति से जिस प्रकार पेश आ रही थी, वह

यात रतनचन्द थोडी ही देर मे समझ गया। वेगम ने अपने हाथो से फ्रास की वेहतरीन शराब डालकर एक जाम दिया। परन्तु उसने डरते हुए पीने से ना कर दी। इसके बाद जब इशारे ज्यादा साफ होने लगे तब उसने हाथ जोडकर कहा कि आप हमारी पूज्या हैं, अन्नदाता हैं, आयु मे और पद मे भी बडी है। शायद आज आप की तबियत परेशान है, इसलिये मैं कल हाजिर होऊँगा। फन कुचली विषैली नागिन की सी फुफकार से वेगम ने डपटकर कहा कि नादान छोकरे या तो तुम अव्वल दर्जे के वेवकूफ हो या हिजड़े, जिसकी नजरें इनायत के लिये बडे बड़ सरदार और जमींदार तरसते रहते हैं, वह मुल्के-जमानिया वेगम समरू तुम्हारी मोहब्बत माँगती है और तुम हो कि फिजूल बकवास करते जा रहे हो? खैर, मैं तुम्हें सात दिन की मोहलत देती हूँ, इस बीच मे मेरी मुहब्बत के साथ लाखो रुपयों की तिजारत या मौत, दोनों मे से एक को तुम्हें चुनना है। खबरदार, अगर एक लफ्ज भी इस के बारे मे बाहर निकला तो तुम्हें जगली कुत्तो से नुचवा दिया जाएगा।

दूसरे दिन से रतनचन्द उदास रहने लगा। पिता-माता और पत्नी ने बहुत कुछ पूछ-ताछ की परन्तु वेगम के डर से कुछ भी न कह सका। आधी रात मे पत्नी के अनुनय-विनय पर उसने सारी बातें खोल कर बता दी।

भारतीय पतिव्रता स्त्री थी, बेगम की क्रूरता से परिचित भी। पति को बहुत प्रकार समझाने-बुझाने लगी कि जान है तो जहान है, आप बेगम की बात मान लीजिये। अगर आपको कुछ हो गया तो फिर माता-पिता, मेरा और इन बच्चों का क्या होगा? पत्नी की बातें सुनकर रतनचन्द उहापोह में आ गया परन्तु दूसरे दिन वह एक निश्चय पर पहुँच गया और पत्नी से कहा कि भगवान को साक्षी देकर सौगन्ध ली थी कि मैं एक पत्नी व्रत रहूँगा फिर भला इस क्षण भगुर जीवन के लिये यह पाप क्यों? थोड़ी देर बाद ही दोनों पति पत्नी ने सोते हुये बच्चों को प्यार किया और सखिया खाकर सो गये।

दूसरे दिन सारे कस्बे में इनकी दर्दनाक मौत की खबर फैल गई। लोगों को सदेह तो पहले ही हो गया था, क्योंकि ऐसी बातें छिपी नहीं रहतीं। रतनचन्द सर्वप्रिय व्यक्ति था, पति-पत्नी दोनों की अर्थियाँ उठीं तो सारे कस्बे के लोग रोते-बिलखते साथ थे। इसके बाद बेगम का भय यहाँ तक फैल गया कि कई माता पिताओं ने तो अपने जवान पुत्रों को सरधना से बाहर भेज दिया।

कहते हैं कि पाप का फल अवश्यम्भावी है, गरीब और अमीर सबके लिये। थोड़े दिनों बाद ही विद्रोही फौज ने बेगम के प्रेमी लवसुळ की हत्या कर दी और बेगम को बेइज्जत

करके एक खम्भे बाँध दिया। अगर समय पर उसका पहला प्रेमी टामस नहीं पहुँचता तो बोटियाँ नोच लेते।

रतनचन्द और उसकी पत्नी की समाधि सरधना के वीरान गाँव में इस समय भी जीर्ण शीर्ण अवस्था में है। यहाँ आस-पास के गाँवों से विवाहित जोड़े मनौती के लिये आते रहते हैं और माघ के महीने में एक मेला लगता है।

❀

भाग्य–चक्र

उन्नीसवीं सदी की बात है। रामगढ़ से फतेहपुर (शेखावटी) बारात जा रही थी। बहुत से हाथी, घोड़, रथ और ऊँट थे, जो जरीदार रेशमी कपड़ो की 'झूल' के साथ चाँदी और सोने के गहनों से सजे थे। बारातियों की सख्या हजार तक पहुँच गयी थी। गाँव के गरीब-से गरीब घर का आदमी भी बारात मे निमन्त्रित था। यह बारात थी सेठ रामबिलास के पुत्र नन्दलाल के विवाह की, जिसकी चचा बाद के बहुत वर्षों तक होती रही।

उनका बड़े पैमाने पर भिवानी मे कारबार था। उन दिनो व्यापार की वह बड़ी मडी थी। राजस्थान की चीजें दूसरे प्रान्तों मे और वहाँ से राजस्थान मे भेजने-मगाने का भिवानी ही माध्यम था।

सेठ के अपने परिवार मे कुल चार व्यक्ति थे। स्वय पत्नी, पुत्र और पुत्र-वधू। वे इतने उदार और कुटुम्ब-पालक थे कि दूर के बहुत से सम्बधी उन पर आश्रित रहते। उनके दरवाजे से शायद ही कभी कोई अतिथि या याचक निराश लौटा हो। यह उदारता यों किंवदन्ती बन गयी थी कि उन्होंने गीदड़ों के लिए सर्दी से बचाव के लिए रजाइयाँ बनवायी थीं।

प्रौढ होने के पहले ही सेठ का देहान्त हो गया और इसके साथ ही इस परिवार का सकट-काल प्रारम्भ हो गया। गाँव के सारे लोग दुखी होकर रो रहे थे, जैसे कि उनके कुटुम्ब का ही कोई मर गया हो। साथ ही एक और दुघटना घट गयी। उनके शव की प्रदक्षिणा के लिए स्त्रियाँ जब सेठानी को लाने गयीं तो देखा कि वह भी इहलोक छोडकर पति की आत्मा के पास जा चुकी है। दोनों की अर्थी साथ-साथ उठी और आस-पास का कोई आदमी न बचा होगा, जो इनकी शवयात्रा मे शामिल न हुआ हो।

विशाल हवेली मे अब उनका पुत्र अपनी पत्नी तथा दो बच्चों के साथ रह गया था। मनुष्य का भाग्य और फिरत-घिरत की छाया को एक ही उपमा दी गयी है। सूतक की समाप्ति के बाद आये हुए मेहमान जब चले गये तो नन्दलाल कारबार सम्भालने के लिए भिवानी गया। वहाँ उसे अपनी आर्थिक स्थिति की जो जानकारी मुनीमों से मिली, उससे आश्चर्य और दुःख का ठिकाना न रहा। पिछले कई वर्षों से व्यापार तो घाटे मे चल रहा था, जबकि दान-पुण्य और दूसरे खर्चे प्रतिवर्ष बढते जा रहे थे।

धधा बन्द हो गया। मुनीम-गुमाश्ते छोड कर चले गये। कर्ज चुकाने में पत्नी के सारे गहने बिक गये और बडी हवेली रेहन रख दी गयी। वे सब एक छोटे मकान मे रहने लगे। परिस्थिति यहाँ तक बिगडती गयी कि दोनों समय का खाना-

जुटाना भी मुश्किल हो गया। पत्नी बड़े घर की बेटी थी और बडे घर मे ही बहू बनकर आयी थी। किसी समय तीसों नौकर और नौकरानियाँ घर के काम के लिए थे, पर अब रसोई के साथ-साथ बर्तन माँजना और बुहारना-झाडना आदि सब काम उसे स्वय करने पडते। थोडी बहुत सहायता बच्चे कर देते थे। मुँह-अँधेरे ही पति-पत्नी कुएँ से पानी ले आते, क्योकि दिन चढने के बाद लोगों की भीड मे सकोच होता था।

जब कष्ट सीमा से बाहर होने लगे तो पत्नी ने अपने भाइयों के पास सहायता के लिए जाने को कहा, जिनका मालवा तथा दूसरे देशावरो मे बडे पैमाने पर कारबार था। जिन लोगों ने सब कुछ जानते हुए भी बहन और उसके बच्चों की सकट के समय खबर तक नहीं ली, उनके यहाँ सहायता के लिए जाने की इच्छा तो नहीं थी, पर पत्नी द्वारा बार-बार आग्रह के कारण उसने उनके पास उज्जैन जाना तय कर लिया। विदा के समय पत्नी ने रास्ते के लिए खाने का सामान तयार कर के एक कपड़े मे बाँध दिया।

एक शाम तालाब के किनारे हाथ मुँह धोकर नन्दलाल खाने की तैयारी मे था कि कुछ साधु-महात्मा आ गये और भिक्षा माँगी। जिसके घर मे पिता के समय सैकड़ा अतिथि-अभ्यागत नित्य भोजन पाते थे, वह भला ना कैसे करता? स्वय भूखा रहकर सारा सामान उन्हें द दिया।

दूसरे दिन दोपहर के वाद जब वह ससुराल की कोठी पर पहुँचा तो रास्ते की थकावट एव भूख के कारण कैसा ही लग रहा था। उसके दोनो साले वहाँ कई मित्रों के साथ वातचीत कर रहे थे। उन्होंने न तो उसकी आवभगत की और न वहन या वच्चो की कुशल-क्षेम ही पूछी। शाम होने पर मुनीमों को ढावे मे खिलाने को कहकर घर चले गये।

इस प्रकार अपमानित होने पर उसके दु ख और ग्लानि की सीमा न रही। परन्तु गाँव लौटने का किसी प्रकार का साधन नहीं था इसलिए उसी शहर मे अपने एक मित्र के यहाँ गया, जिसकी किसी समय उसके पिता ने सहायता की थी।

सब मनुष्य एक से नहीं होते। मित्र बहुत ही प्रेम से मिला और सारी स्थिति की जानकारी के वाद हर प्रकार की सहायता का वचन दिया। दूसरे दिन से ही रामविलास नन्दलाल की फर्म फिर से स्थापित हो गयी। देशावरा मे इस फर्म की इमानदारी और कार्य-क्षमता की साख थी। इसलिए, पहले के व्यापारिक सम्बन्ध फिर जुड गये तथा थोडे समय मे ही व्यवसाय जम गया।

एक वर्ष वाद वह सम्पन्न होकर घर लौटा। पत्नी ने भाइयों के वारे मे समाचार पूछा तो राजी-खुशी की कह कर दूसरी वातों मे टाल दिया। उसकी पत्नी को तो यही विश्वास था कि मायके वालों के सहयोग और कृपा से ही यह सब हुआ है।

एक महीने बाद ही फिर वह उज्जैन आ गया और इस बार ज्यादा हिम्मत से व्यापार करने लगा। भाग्य ने साथ दिया और दो वर्ष बाद दूसरी बार जब वह अपने गाँव लौटा तब नन्दलाल लखपति हो गया था। कर्ज चुका कर पिता की बनायी हुई बडी हवेली छुडा ली। फिर से एक बार मुनीम-गुमाश्ते, नौकर-चाकरो तथा कुटुम्बियों से घर भर गया।

ससुराल मे साले के लडके का विवाह था। निमत्रण देने के लिए स्वय घर का बडा भाई कुकुम-पत्रिका लेकर आया। जो पत्र वह साथ लाया था उसमे बहुत वर्षों से बहन और बच्चो को नहीं भेजने का उलाहना था। पत्र इस अवसर पर सबको जरूर-जरूर बुलाया था।

नन्दलाल की इच्छा वहाँ जाने की नहीं थी, परतु पत्नी बार-बार भाइयो के उपकार का बखान कर रही थी। इस बीच मे उसने मायके जाने की सारी तैयारी भी कर ली थी। अत विवाह मे शामिल होने के लिए वे सब रवाना हुए। वह स्वयं तो घोडे पर था, पत्नी और बच्चे रथ मे तथा दूसरे राजपूत सरदार नाई, नौकर-दाई ऊँटों पर। शहर से एक कोस दूर पर ही अगवानी के लिए दोनो सालों के सिवाय गाँव के बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्ति आये। पत्नी तो हवेली मे चली गयी और सेठ नन्दलाल के डेरे लगे एक बहुत बडी सजी हुई कोठी म। रात्रि मे भोजन के लिए हवेली मे तैयारी की गयी थी। चाँदी-सोने के थालों मे नाना प्रकार के व्यजन सजे थ।

खातिरदारी में परिवार के सारे लोग हाथ बाँधे खड़े थे। स्त्रियाँ मधुर रागिनी मे सीठनें गा रही थीं।

भोजन के लिए कहा गया तो उसने अपने हाथ की हीरे की अगूठी को थाल मे रखकर खाने के लिए कहा। उन लोगो की समझ मे बात नहीं आयी, दूसरी बार आग्रह करने पर गले से पन्ने के हार को निकाल कर उसने भोजन करने को कहा। किसी बड़े-बूढ़े ने कहा, "कँवाईराज, हँसी-दिल्लगी बहुत हो चुकी, अब कृपया भोजन कीजिये।"

वह बिना भोजन किये ही उठ गया और कहने लगा कि यह मान-सम्मान तो मेरे हीरे-पन्ने और धन-दौलत का हो रहा है, अन्यथा जब मैं ३ वर्ष पूर्व इनके यहाँ आया था तो इन्होंने मुझे पहिचाना तक नहीं। पत्नी रोज अपने भाइयों का का उपकार बखानती थी इसलिए इसे वास्तविकता की जानकारी कराने के लिए मुझे आना पडा, वरना मैंने उसी दिन इन लोगों से किसी प्रकार भी सम्बन्ध न रखने की प्रतिज्ञा कर ली थी।

महिलाओं में बैठी पत्नी को बुलाकर, अपने बच्चों तथा दूसरे साथ के लोगों को लेकर उसी समय वह रामगढ रवाना हो गया।

विवाह का अवसर था। घर नाते-रिश्तेदारों से भरा था। परन्तु इतनी बडी घटना के बाद किसी की हिम्मत उन्हें रोकने की नहीं हुई।

*

मोती काका

हमारे गाँव मे बाहर के साधु-महात्मा आते रहते थे। उनके प्रवचनों के समय देखा जाता कि एक वृद्ध नियमित रूप से सबसे पहले आता और सबके बाद जाता। लोगो की जूतियों के पास बैठकर हाथ मे माला लिये जाप करता रहता। आयु प्रौढावस्था को पार कर चुकी थी परन्तु शरीर की काठी देखकर लगता कि किसी समय बहुत सुदर और बलवान रहा होगा। गोरे चेहरे पर झुर्रियाँ थीं परन्तु आँखो मे तेज की चमक थी।

बच्चो से उसे ऐसा प्यार था कि सारे दिन वे उसे घेरे रहते, कोई दाढी खींचकर भाग जाता तो कोई पीठ मे धौल जमाकर।

पत्नी, पतोहुओं और पोते पोतियो से भरा-पूरा घर था। दो जवान लडके फौज मे थे। गाँव के पास ही खेत थे जिनसे अच्छी आय हो जाती थी।

लोग कहते कि किसी समय मोती काका नामी डाकू था, उसने सैकडो डाके डाले थे। परन्तु ब्राह्मण या गाँव की बहिन-बेटी को कभी नहीं लूटा। यहाँ तक कि ब्राह्मणों की बेटियो के विवाह मे अपने आदमिया के द्वारा दान-दहेज भेजता रहता था।

शुरू-शुरू में तो हम बच्चे उससे सहमे-से रहते परन्तु कुछ अर्से बाद इस प्रकार हिलमिल जाते कि उसके कधो पर चढकर नाचते रहते। यद्यपि उस समय डाकू क्या है, इसके बारे मे जानकारी स्पष्ट हमे नहीं थी, फिर भी ऐसा समझते थे कि वह कोई खराब आदमी है। काका से पूछने पर वह हँसकर बात टाल देता। कभी-कभी दोनों हाथा स आखा को बडी-बडी करके डराने लग जाता।

उस बार बहुत वर्षों तक देशावर रहने के बाद में गाँव आया। मोती काका ७५–८० वप का हो गया था, चल–फिर नहीं सकता था। हाथ पैर काँपते परन्तु आंख कान दुरुस्त थे। बचपन मे उससे कहानियाँ सुनते हुए मैं कहा करता था कि हम बडे होगे तव तुम्हारे लिए एक अच्छी–सी ऊनी चद्दर लायेंगे। वह बात मुझे याद रही और धारीवाल की एक चद्दर उसके लिए ले गया था।

बातें करते हुए मैंने देखा कि उसकी आँखो मे हर्ष के आँसू आ गये थे। वह कहने लगा, "सुना है, तुम्हारी बहुत बड़ी तनख्वाह है। मैं इसके लिए हमेशा भगवान से प्रार्थना किया करता था। रामजी ने मेरी बात सुन ली।"

उन दिनों काका को गाधी जी के दर्शन करने की प्रबल इच्छा थी। हमारे उधर राजस्थान के गाँवों मे उनके बारे मे बहुत–सी किवदन्तियाँ फैली हुई थीं, जैसे, 'उनको भगवान के साक्षात दर्शन होते हैं,' 'जेलके फाटक अपने आप खुल गये,'

चोर डाकू भी उनके सामने आकर सच्ची बात कहने से पाप-मुक्त हो जाते हैं,' आदि।

काका का शरीर इतना अस्वस्थ रहने लग गया कि उस इच्छा की पूर्ति नहीं हुई। उन्हीं दिनो हरिद्वार से एक बड महात्मा अपने कई शिष्यो के साथ आये। मोती काका ने बड़े आग्रह-पूर्वक उनको निमन्त्रित किया और साथ ही साथ गाव के दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्तियो को भी।

भोजन के पहले काका ने सैकडो आदमियों के सामने हाथ जोडकर कहा कि मेरा अन्त समय अब नजदीक है। जीवन में मैंने जघन्य पाप किये है। मुझे कल रात मे सपना आया है कि तुम महात्मा जी और गाँव के लोगो के समक्ष अपने पापो को स्वीकार करो, इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। अपने जीवन की जो घटनाएँ बतायीं, उन्हें सुनकर यह निश्चय नहीं कर सका कि वह पापी है या धर्मात्मा।

मोती काका ने अपनी जीवन-गाथा इस प्रकार सुनायी—

"मैं अपने माँ बाप का इकलौता बेटा था। विवाह होकर बारात वापस आयी थी। अभी कगन डोरे भी नहीं खुले थे कि गाँव का महाजन अपने कर्ज के तक़ाजे के लिये आकर बैठ गया। उन दिनों कर्ज न चुकाने पर कर्ज की सज़ा होती थी, बहुत से सगे सम्बन्धियो के बीच बापू को पुलिस के सिपाही हथकडी डालकर ले गये। उस दिन के बाद शर्म के मारे मेरा घर से निकलना दुश्वार हो गया।"

'मैंने प्रतिज्ञा कर ली कि जैसे भी होगा, कर्ज चुका कर पिता को जेल से छुड़ाऊँगा। किन्तु बहुत प्रयत्न करने के बावजूद काम नहीं मिल पाया। संयोग से मेरी जान-पहिचान प्रसिद्ध डाकू ठाकुर राम सिंह के साथियों से हो गयी और मैं उनके दल में शामिल हो गया। हिम्मत, सूझ और शारीरिक बल के कारण रामसिंह के मरने के बाद दल का मुखिया मुझे ही चुना गया।'

"कर्ज से दुगुना रुपया लेकर एक रात सेठ के घर पहुँचा। उसके प्रति मेरे मन में ऐसी घृणा हो गयी थी कि कर्ज चुकती की रसीद लेकर लौटते समय मैंने उसके नाक-कान काट लिये। उसके बाद तो मैंने सैकड़ों डाके डाले, पर परमात्मा जानता है कि कभी ब्राह्मणों और गाँव की बहू-बेटियों को नहीं सताया, न गरीब और निम्नवर्ग के लोगों को ही।'

"मुझे प्राय ही खबरें मिलतीं कि मेरे माँ-बाप को नाना-प्रकार की यातनाएँ दी जा रही हैं। एक दिन यह भी सुना कि मेरी पत्नी को थाने में बन्द कर रखा है और उसके साथ बहुत ही अमानुषिक बर्ताव किया जा रहा है।"

"एक अँधेरी रात में १०-१२ साथियों के साथ मैंने उस पुलिस चौकी पर हमला कर दिया। ८-१० सिपाही और अफसर मारे गये, हमारे भी ३-४ साथी खेत रहे। पत्नी दर्द से कराह रही थी। उसकी हालत देखकर लज्जा और ग्लानि से मन भर गया, परन्तु पास के थानों से कुमुक पहुँचने के अंदेशे से भागकर हमें जंगल में जाना पड़ा।"

"माँ बाप और पत्नी की दुदशा के समाचारा से मैं गत-दिन बेचैन रहने लगा। उधर पुलिस की सतर्कता भी बहुत ज्यादा बढ़ गयी। मेरे जिन्दा या मरे पकड़ा देने पर सरकार द्वारा १०,०००) रुपये इनाम की घोषणा की गयी।"

"गाँव के एक गरीब ब्राह्मण की बेटी का विवाह रुपये के बिना अटक रहा था। मेरे पास उस समय व्यवस्था थी नहीं। समय कम था, मैं पशोपेश में पड गया कि कैसे मदद करूँ। सरकारी घोषणा की बात याद आ गयी। मगर मेरे साथी इसके लिए तैयार नहीं हुए। आखिर, मैं अकेला ही उस ब्राह्मण के पास गया और समझाया कि मुझे थाने में हाजिर करने से उसे १०,०००) रुपये मिल जायँगे।"

"पहले तो वह तैयार नहीं हुआ, परन्तु बहुत समझाने-बुझाने पर मान गया।"

"विभिन्न अपराधों मे मुझे १५ वर्ष की कडी कैद की सजा हुई, परन्तु मेरे अच्छे चाल चलन के कारण १० वर्ष मे ही छोड दिया गया।'

"अब उन बातों को प्राय २५-३० वप हो गये है, परन्तु मेरे मन मे अपने पुराने पापा की याद से अब भी ग्लानि और लज्जा भरी पडी है। कहते है कि परमात्मा के भक्तो की सेवा करने से जघन्य पाप भी दूर हो जाते है, इसलिए कथा-वार्ता मे आने वालो की जूतियों की सम्हाल रखता हूँ। बहन-बेटियों के बच्चों को बहलाता रहता हूँ। "

काका की बातें सुनकर लोगा के साथ-साथ महात्मा जी भी हर्ष से गद्गद् हो गये। उन्होंने उठकर उसे छाती से लगा लिया।

चोर

रात के नौ बजे थे। भोजन करके कुछ पढ रह था कि मकान के फाटक पर शोरगुल सा सुनाई दिया। थोडी देर तो ध्यान नहीं दिया परन्तु जब आवाजें रोने-चिल्लाने मे बदल गईं तो नीचे जाना पडा।

देखा,२० ३० व्यक्ति एक १२-१३वष के दुबले से लडके को घेरे हुए है, उसकी नाक और मुँह से खून निकल रहा है। लोग बीच-बीच में उसके दो-एक धौल भी जमा देते हैं।

पूछने पर पता चला कि पास के सिनेमा घर के बाहर मूढी चना के खोमचे से दूकानदार की आँख बचाकर मूढी लेकर भागता हुआ यह लडका पकडा गया, फिर तो मोहल्ले के बद-माश लडकों को अपना जोर आजमाइश करने का मौका मिल गया और मारते-मारते इसकी यह हालत कर दी।

उस मासूम बच्चे के चेहरे पर करुणा की मार्मिक याचना देखी तो खोमचे वाले को दो रुपये देकर विदा किया और अन्य सब लोगों को समझा बुझाकर वहाँ से हटा दिया।

दरवान से लडके को भीतर लाने के लिये कहा। लड़का उस समय भी भय से काँप रहा था और अन्दर जाने में झिझक रहा था। शायद डरता था कि और मार न लगे था,

कोई नयी विपत्ति न आ पड़े। एक प्रकार से धकेलते हुए ही उसे लाया गया। मैंने प्यार से सिर पर हाथ रखकर पूछा कि उसने ऐसा बुरा काम क्यों किया तो सुबुक-सुबुक कर रोने लगा। थोड़ी देर तो कुछ बोल ही नहीं पाया। ऐसा लगता था कि मार और भूख से बहुत ही व्याकुल हो गया है। उसे बेहोशी सी आ रही थी। खाने के साथ एक गिलास गर्म दूध दिया, तब कहीं थोड़ा सभल पाया।

उसे दूसरे दिन सुबह तक वहीं रहने को कहा तो रोकर कहने लगा, "मेरी बीमार माँ घर पर अकेली है और कल से भूखी है, वह मेरी राह देख रही होगी। मुझे इतनी रात तक नहीं पाकर बहुत चिंतित होगी। इसलिए अभी घर जाने दीजिए।' कुछ खाने-पीने का सामान देकर दूसरे दिन उसे फिर आने को कह कर भेज दिया।

दो-तीन दिन बीत गए। लड़के की भोली सूरत भूल नहीं सका। दरवान को उसे बुलाने भेजा। देखा कि बालक के सिर एव हाथ पर पट्टी बँधी है, उसके साथ एक युवा किन्तु कृश-काय और बीमार सी स्त्री भी है। साड़ी मे जगह-जगह पेबन्द लगे हुए थे, चेहरे पर दैन्य और बीमारी की स्पष्ट छाया। फिर भी उसके नाक-नक्श की सुघराई से लगता था, शायद किसी समय बहुत ही रूपवती रही होगी।

कहने लगी कि उस दिन की मार से बच्चे को बुखार आ गया था, कहीं-कहीं सूजन भी। स्त्री के बोलने के लहजे से

समझ पाया कि पूर्वी वगाल की है। जो आत्मकथा उसने सुनाई वह इतने दिनों बाद भी भूल नहीं सका हूँ। कभी-कभी जब दुबले-पतले बच्चों को भीख माँगते देखता हूँ तो उस मासूम बच्चे की तस्वीर आँखों के सामने आ जाती है।

खुलना के पास के किसी देहात मे उसकी अच्छी खासी खेती थी। एक छोटा पोखर (तालाब) भी था। सब प्रकार से सुखी गृहस्थी थी। देश के विभाजन के बाद वे लोग वहीं रह गए। यद्यपि नाना प्रकार के कष्ट और अपमान झेलने पड़ते थे परन्तु एक तो कहीं अन्यत्र आसरा नहीं था, दूसरे पूवजों के घर और जमीन आदि के प्रति मोह-ममता थी जो उन्हें गाँव छोड कर चले जाने से रोके हुए थी।

सन् १६५८ मे एक दिन अचानक ही गाँव के हिन्दुओ पर हमला बोल दिया गया। जो मुसलमान हो गए, उनके जान-माल बच गये, जिन्होंने सामना किया वे कत्ल कर दिये गये।

उसका पति वैष्णव कठीधारी कायस्थ था। किसी समय गाँव का मुखिया भी था और दोनो समय घर पर ठाकुरजी की पूजा-अर्चना करता था। वह किसी प्रकार भी धर्म त्याग करने को तैयार नहीं हुआ। उसे खुदा के बन्दा ने काट कर पास के पोखर में डाल दिया। पडोसियों के बीच-बचाव से किसी प्रकार बेचारी विधवा अपने ८ वष के बच्चे को साथ लेकर सीमा पार करके भारत के 'बनगाँव' मे आकर रहने लगी। जो कुछ थोड़ा बहुत सामान साथ मे था, वह सब रास्ते में लोगों ने लूट लिया।

उसने देखा कि वहाँ पर पहले से ही पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थी बड़ी सख्या मे हैं और सरकारी कैम्पों में किसी प्रकार पेट पाल रहे है। 'परमात्मा की दया' से इनमें से बहुत से अनेक प्रकार की बीमारियों से जल्दी-जल्दी मर कर रोज-रोज की यातनाओं से शीघ्र मुक्ति भी पा रहे थे।

२६-२७ वर्ष की आयु, सुगठित अग-प्रत्यग, चेहरे पर लावण्य की स्पष्ट आभा। विपत्ति मे सुन्दरता भी अभिशाप बन जाती है। कैम्प के लिए नाम दर्ज करने वाला इन्सपेक्टर रात मे उसकी 'सरकी' मे आकर लेट गया। शरणार्थियों के पुनवास और उनकी देख भाल के लिए रखे गए ये लोग इतने बेशर्म और निधडक हो गए थे कि न तो उन्हें किसी की निन्दा का डर था और न मान मनुहार की आवश्यकता। किसी भी शरणार्थी लडकी या स्त्री के साथ मनचाहा व्यवहार करना ये अपना अबाध अधिकार मानते थे। वे बेचारी भी विपत्ति की मारी, भूखे पेट और थके तन को लेकर आखिर विरोध कहाँ तक कर पातीं? कैम्प मे स्थान और सरकारी सहायता न मिलने पर सन्तान सहित तिल-तिल कर मरना पड़ता। इसलिए, जीवित रहने के लिए ऐसे अपमान को भी आवश्यक मान लेती थीं।

लेकिन सुरमा उस धातु की नहीं बनी थी। वह अपना शरीर नहीं दे सकी और जोर-जोर से चिल्लाने लगी। खैर, उस समय तो वह इन्सपेक्टर चुपचाप खिसक गया। परन्तु दूसरे दिन फिर दरख्वास्त लेकर तो उसी के पास जाना होता। सुरमा को यह स्वीकार न था। अत रजिस्ट्री आफिस में न जाकर उसने अपने

दच्चे को साथ लिया और रास्ते के अनेक कष्ट झेलते हुए कल-कत्ता आ गई। यहाँ उसे एक घर में दाई का काम मिल गया, रहने को एक छोटी सी कोठरी भी।

रूपवती विधवा युवती मोहल्ले के रसिक युवकों के लिए अपने आप मे एक आकर्पण है। वे विना काम ही उसके घर के आसपास मडराने लगे। कभी सीटी वजाते और कभी गन्दी आवाजें कसते। लिहाजा, उसे वह आसरा भी छोड दना पडा। सोचा तो यह था कि भारत भूमि मे अपने सहधर्मी बन्धुओं के बीच जीवन के वाकी दिन किसी प्रकार चैन से बिता पाएगी, अपने वच्चे की जैसे-तैसे परवरिश करेगी। किन्तु, उसे क्या पता था कि पाकिस्तान की तरह यहाँ भी मनुष्य के रूप मे भूखे भेडियों की कमी नहीं है।

कई बार मन मे आया कि तिजाव छिडक कर मुँह को बदरंग कर ले परन्तु कुछ तो पीडा के भय से और कुछ वच्चे का ख्याल करके वह यह सब नहीं कर पाई।

कई जगह भटकते हुए उसे ढाकुरिया लेक के पास एक शर-णार्थी परिवार के यहाँ रहने का सहारा मिल गया। परन्तु केवल आवास की व्यवस्था से पेट की भूख नहीं मिटती। भीख माँगने मे पहले-पहल तो झिझक हुई परन्तु फिर आदत पड गयी और किसी तरह दो जून खाना मिलने लगा।

लडका देखने मे सुन्दर और वातचीत मे चतुर था। सुवह-शाम जो सैलानी लेक पर आते, उनकी मोटरों की सफाई और सम्हाल करता रहता। वे दो-चार आने वख्शीश के तौर पर उसे दे देते, कभी धमका कर एसे ही भगा देते।

एक दिन माँ को बुखार आ गया। सीलन भरी जमीन पर बिना चारपाई के सोने से तथा भूखजनित कमजोरी से यह साधारण और स्वाभाविक बात थी। डाक्टर को दिखाने का प्रश्न ही नहीं था। पडोस की एक वृद्धा ने उसे दो गोली कुनैन की लाकर दी और मूडी खाने को कहा। बच्चा मूडी लाने के लिये घर से निकला। दिन भर खडा रहने पर भी उस दिन जब कुछ भी प्राप्ति नहीं हुई तो माँ की भूख का खयाल करके सडक पर के खोमचे से उसने कुछ मुडी चुरा ली, परन्तु भागते हुए पकड लिया गया।

यही कहानी थी जो उसकी माँ की जुबानी मैंने उस दिन सुनी।

लडके की पढाई नहीं के समान थी, इसलिए उसे अपने आफिस मे चपरासी के रूप मे रख लिया। यह कई वर्ष पहले की बात है। सुरेन अब बडा हो गया है, कुछ अंग्रेजी और हिन्दी भी पढ ली है। मेरे यहाँ जितने कर्मचारी है उनमें वह सबसे अधिक मेहनती और इमानदार है। गरीब बगालियो मे लड़कियो की कमी नहीं है। सम्भव है, थोडे वर्षों मे उसका विवाह हो जायगा तब उसकी दुखिया माँ भी को बहुत वर्षों बाद गृहस्थी का थोडा सा सुख देखने को मिलेगा।

आज भी म कभी-कभी सोचता हूँ कि क्या उस दिन सचमुच सुरेन ने चोरी की? बाद मे तो कभी भी कोई शिकायत नहीं मिली। मनुष्य स्वभाव से चोर होता है या परिस्थितियाँ उसे मजबूर कर देती है?

प्रभु का प्यारा*

उत्तराखण्ड के बद्री-केदार की यात्रा का महत्व हजारों वर्ष से हमारे देश के लोगों के मन और जुबान पर है। जनश्रुति है कि द्वापर में पाण्डवों ने केदारनाथ की यात्रा की थी और ईसा से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व आद्य शंकराचार्य केरल से ढाई हजार मील चलकर बद्रीनाथ आये थे। यह भी कहा जाता है कि वर्तमान पीठ उन्हीं की स्थापित की हुई है।

अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ की बात है, पूना के श्रीमन्त पेशवा के दीवान वृद्धावस्था में राजकाज छोड़कर घर ही पर विश्राम करते थे। उनके मन में बहुत वर्षों से बद्री-केदार यात्रा की कामना थी किन्तु कोई न कोई कारण उपस्थित हो जाता और वे तीर्थयात्रा पर निकल नहीं पाते। आखिर, एक बार उन्होंने सब तैयारियाँ कर ली। कौन-कौन से मुसाहिब, नौकर रसोइये सिपाहियों आदि को साथ रक्खा जाये और कसी सवारियाँ, यान, वाहन आदि रहें, इस सबों की फहरिस्त बन गयी। यहाँ तक कि रसद के सामान की भी सावधानी से सूची बना डाली गयी।

उनके पड़ौस में हीरू नाम का एक दर्जी रहता था। उसके

---

* एक विदेशी कहानी की प्रेरणा से

मन में भी बद्री-केदार जाने की इच्छा थी। किन्तु, अच्छा साथ नहीं मिल पाया, इसलिये जा नहीं सका था।

उसने भी कई अन्य लोगों की तरह दीवान जी से चलने की स्वीकृति ले ली। उन दिनों रास्ते बीहड़ थे, सड़कें भी अच्छी न थीं। चोर-डाकुओं का डर बना रहता। इसके अलावा साँप-बिच्छू और जंगली हिंसक पशुओं के आक्रमण का भय तो था ही। बीमारियाँ भी होती रहतीं। इन्हीं कारणों से लोग ऐसी बीहड़ यात्राओं में बड़े लोगों के किसी दल में शामिल होने का सुयोग ढूँढते थे।

दीवान जी ने महीनों पहले से ही अपने बेटों और पोतों को काम की सम्हाल देनी शुरू कर दी थी। कारिन्दों और पटवारियों का कहाँ से कितनी अदायगी करनी है और उनके जमीन जायदाद के पट्टों आदि के बारे में क्या और कैसे करना है, इसकी हिदायतें देकर आदेश दिया कि पीछे से किसी प्रकार का नुकसान न पहुँचे।

हीरू ने चलते समय पत्नी और पुत्र को केवल इतना ही कहा कि भगवान का स्मरण करते रहना, यदि उनकी कृपा रही तो फिर मिलेंगे।

निश्चित मुहूर्त पर यात्रीदल ने प्रस्थान किया। शंख बजाये गये, मन्दिरों के घण्टे बजे। विदा देने के लिये लोग उमड़ पड़े। लगभग एक कोस तक स्त्री-पुरुष और बच्चे भजन गाते हुए

पहुँचाने के लिये साथ चले। बडी श्रद्धा से सबों ने 'पालागन' किया।

तेरह सौ मील की लम्बी यात्रा थी। रोज पन्द्रह-बीस मील चलते। रात मे किसी निरापद स्थान पर रुक जाते। भजन-कीर्तन होता रहता। इसी तरह चलते-चलते मालवा के किसी गाँव के पास एक दिन इनका पडाव हुआ। जगह सूनसान सी लगी। पूछ-ताछ करने पर पता चला कि गाँव में हैजे का प्रकोप है। अधिकाश लोग यहाँ से चले गये हैं। कुछ गरीब और हरिजन बच गये हैं। चिकित्सा के अभाव मे उनमे से कई एक रोजाना भगवान के यहाँ चले जाते हैं।

रात घनी हो आयी, भजन-कीतन समाप्त हो गये और यात्री सो गये। हीरू को नींद नहीं आयी। एक अजीब सी बेचैनी उसे सता रही थी। वह चुपचाप उठा और पहरेदारों की नजर बचाकर गाँव की ओर चल पडा। पास पहुँचते-पहुँचते हवा के झोका के साथ सडाय आने लगी। वह तेजी से बढा। एक घर से किसी छोटे बच्चे के रोनी की आवाज सुनायी पडी। भीतर जाकर देखा कि दो-तीन वर्ष का एक बालक पास में लेटी हुई अपनी माँ का आचल खींच-खींच कर रो रहा है। माँ विसूचिका-जनित गन्दगी में लिपटी सिसक रही है। सारी बातें एक क्षण में उसके मस्तिष्क में घूम गयीं। दौडकर उसने आँगन मे बँधी बकरी को दुहा और बच्चे को दूध पिलाया।

फिर उसे एक ओर बैठाकर उस महिला को धो-पोंछकर साफ किया। उसे ख्याल आया कि दवाइयों की पोटली तो उसकी पेटी में है, क्यों न वह ले आये? इसकी जान बच जायेगी।

फौरन वह उल्टे पाँव पड़ाव की ओर भागा। लोग गहरी नींद में थे। 'पेटी में खोलने पर खटका होगा,' 'बिस्तर में धोती और कपड़े हैं, शायद जरूरत पड़ जाये'—सोचते हुए उसने चुपचाप बिस्तर और पेटी उठाई और गाँव में लौट आया। वहाँ आकर देखा कि बच्चा आराम से सोया है और महिला को भी कुछ राहत है। उपचार के लिये साथ लायी हुई दवा दी, ईश्वर कृपा से लाभ हुआ। सुबह होने पर वह दूसरे घरों में गया। वहाँ भी हैजे के रोगी कराह रहे थे। वह उन्हीं की सेवा में लग गया।

उधर तीर्थयात्रियों का पड़ाव उठने लगा। थोड़ी देर तो हीरू की प्रतीक्षा की फिर आगे के लिये चल पड़े।

लगभग एक महीने तक हीरू उस गाँव में रहा। यात्रा के लिये जो पूँजी लेकर चला था, समाप्त हो चुकी थी। महामारी के हट जाने पर लोग गाँव में वापस आने लगे। सभी कृतज्ञ थे, उसका गुणगान करते थे। परन्तु हीरू मौन रहता। उसके मन में रह रह कर यही बात उठती कि तीर्थयात्रा न कर शायद उससे कोई अपराध हो गया। एक दिन वह घर के लिये रवाना

हुआ। विदा के समय गाँव के लोगों ने अपने घरों से गुड-चने-चिवडे दिये। गाँव की सीमा तक पहुँचाने आये। उन सब की आँखें गीली थीं। श्रद्धा और स्नेहभरी शुभाकाक्षा के अलवा वे गरीब दे भी क्या पाते ?

कुछ दिनों बाद, थका हारा हीरू अपने घर वापस पहुँचा। लोगों को बडा आश्चर्य हुआ कि यात्रा पूरी न कर वह बीच मे ही लौट आया। तरह-तरह के प्रश्न पूछे जाते। 'क्यों आये ?' क्या बीमार हो गये ?' 'झगडा तकरार हो गया ?' आदि। वह चुपचाप गर्दन झुकाये रहता। पत्नी से केवल इतना ही कहा कि तीर्थयात्रा का पुण्य उसके भाग्य मे बदा न था। परनिन्दा और आलोचना मे लोगों को आनन्द आता है। तरह-तरह की बातें उस गरीब के बारे मे फैलाई गयी परन्तु हीरू ने कोई सफाई नहीं दी। फिर इतना कह देता "मेरे जसे पापी की पहुँच प्रभु के दरबार मे कहाँ ?"

दो महीने बाद दीवान जी का दल पूना लौट आया। शहर के लोग उनके स्वागत और चरण-रज ने लिये आये। हीरू भी दुबका सा आया और पैर छूकर एक ओर बैठ गया। उन्होंने एक बार उसकी ओर देखा मगर उस समय कुछ कहा नहीं।

यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न हुई, उस उपलक्ष मे अगले दिन बारह गाँव के लोगों का भगवान के प्रसाद के लिये भोज हुआ। सभी दीवानजी का यशोगान और जय-जयकार कर रहे थे।

दस-बारह दिन बाद उनके यहाँ से हीरू का बुलावा आया। उसे लगा दीवान जी बुरा-भला कहेंगे। सहमा सा उनकी कोठी पर पहुँचा और द्वारपाल को खबर दी। दीवान जी खुद ही निकल आये और उसे साथ लेकर अपने निजी कक्ष में गये। एकान्त में उन्होंने हीरू से कहा "जब से मैं आया एक बात पूछने की मन में थी किन्तु काम-काज की देखभाल और लोगों की भीड़भाड़ में मौका ही नहीं लग पाया। तुम्हें भगवान की सौगन्ध है, झूठ मत बोलना। ऐसा लगता है कि उस दिन तुम हम लोगों को उस गाँव के पड़ाव पर छोड़ कर अकेले ही आगे चले गये। मैंने देखा कि तुम भगवान बद्रीविशाल का शृंगार कर रहे हो और पास में बड़े पुजारी जी आरती कर रहे हैं। कई आवाजें देकर बुलाया भी, परन्तु भीड़ में न जाने कहाँ समा गये। इसके बाद केदार जी की आरती और शृंगार में भी देखा कि तुम जगमोहन कक्ष में हो। वहाँ तो केवल प्रमुख पुजारी ही जा सकते हैं, तुम्हें कैसे जाने दिया? मैंने भगवान की भेंट में सोने के गहने और जरी की पोशाकें दीं, फिर भी मुझे चौखट तक ही जाने दिया गया।"

हीरू ने दीवानजी के पैर पकड़ कर रोते हुए कहा कि बाप जी आप यह क्या कह रहे हैं? मैं तो उस रास्ते के गाँव में रोगियों की सेवा के लिये कुछ दिनों तक रुका रहा और फिर वहीं से घर वापस आ गया। मुझ से बड़ा अपराध हो गया कि आपसे बिना पूछे दल छोड़ दिया था। आप जैसे महा-

पुरुषों के साथ का सुयोग पाने पर भी भगवान के दर्शन लाभ से वंचित रह गया।

दीवान जी को असमंजस हुआ। कानों सुनी बात झूठी हो सकती है, पर आँखों देखी नहीं। उन्हें हीरू की आँखों में अब भी भगवान बद्रीविशाल की मूर्ति दिखायी दे रही थी। विद्वान और ज्ञानी थे, सारी बातें समझ में आ गयीं बोले "भाई तुम सचमुच ही प्रभु के प्यारे हो," यह कहते हुए उन्होंने गद्गद् होकर हीरू को गले लगा लिया।

❀

एक मनुष्य : तीन रूप

मेरी जान-पहचान के एक मित्र हैं, जिनके घर की स्थिति शुरू मे बहुत ही साधारण थी। मित्रों की सहायता और छात्र-वृत्ति से वे किसी प्रकार पढ-लिख कर राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों मे काम करने लगे। सन् १६५७ मे उन्हें विधान-सभा का टिकट मिल गया और अपने क्षेत्र से वे चुन लिये गये। पिछडे वर्ग के थोडे से सदस्य ही चुने गये थे इसलिये नये मत्री-मण्डल मे उनको भी ले लिया गया। मैंने बधाई का तार भेजा। उसके बदले मे धन्यवाद-ज्ञापन का जो पत्र उनका आया, उसमें थोडा-सा अहभाव लिये हुए कुछ औपचारिकतासी लगी लेकिन उस समय मैंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया।

कुछ महीनों बाद जब राजधानी गया तो उनके बगले पर मिलने गया। फाटक पर वर्दीधारी सिपाही, अच्छी शानदार कोठी, सुन्दर करीने से लगाया हुआ बगीचा और पोर्टिको मे बड़ी-सी कार। अदली से पूछने पर पता चला कि साहब घर पर ही हैं। उनके निजी सचिव को अपना कार्ड दिया और ड्राइङ्गरूम मे प्रतीक्षा करने लगा। वहाँ और भी पाँच-सात व्यक्ति पहले से ही बैठे थे।

ड्राइङ्गरूम का फर्नीचर ऊँचे दर्जे का था। फर्श पर कीमती

गलीचा बिछा था। कमरे मे गाधी जी और नेहरू जी की तसवीरें टगी थीं, तीन चार उनके अपने स्वागत-समारोहों की भी। बैठा हुआ म सोचने लगा कि गाधी जी ने स्वराज्य मिलने के कुछ ही दिनो पहले कहा था कि यदि स्वराज्य मिल गया तो राष्ट्रपति भवन और राज्यपाल भवनो को अस्पताल, गरीब विद्यार्थियो के लिए आवासगृह तथा स्कूल व कालेजों के काम मे लाया जायेगा ' राष्ट्रपति और राज्यपाल साधारण भवना मे रहेंगे।

आपसी बैठकों मे मेरे यह मित्र भी अक्सर कहा करते कि "राष्ट्रपति और राज्यपालो की बात छोड भी दें तो हमारे केन्द्र और राज्यो के मन्त्री, राज्य मन्त्री और ससदीय सचिव-जिनकी सख्या ३५०० के करीब है – इन सब पर करदाताओं की एक बहुत बडी रकम प्रतिवर्ष खर्च होती है। इनके दफ्तरों का काम प्राय सचिव या अफसर देखते है, क्योंकि इन सबको तो विभिन्न प्रकार के जलसा और उद्घाटनो से ही फुर्सत नहीं मिलती कि ये कामो मे समय दे सकें, यहाँ तक कि कई बार मन्त्री महोदय किसी पेट्रोल पम्प या बीडी के कारखाने का उद्घाटन करने के लिए भी चले जाते है। न दौरों के लिए मोटरों और अफसरो का खर्च तो सरकारी है ही, इसके अलावा डी० ए० और टी० ए० के रूप मे भत्ता अलग से बनता है।"

यहाँ बैठे-बैठे मन लक्ष्य किया कि मेरे मित्र को समय का ज्ञान कम रह गया है। बडा खेद हो रहा था कि एक सघर्षशील कार्यकर्त्ता को मन्त्रित्व के पद ने अकारण ही विलासप्रिय बनाकर जनसमाज से छीन लिया। सोच रहा था कि आखिर पिछले तीन

महीनों मे ऐसी कौन-सी बात हो गयी जिससे इनके और इनके परिवार के रहन सहन मे इतना फर्क आ गया।

आधे घण्टे की प्रतीक्षा के बाद वे भीतर से आये। कब आया, कहा ठहरा आदि उन्होने पूछा। मुझे ऐसा लगा कि उनकी बातो मे बडप्पन का आभास है। हो सकता है कि दूसरे बहुत से लोग वहाँ बैठे थे, इसलिए उनके सामने इस ढङ्ग से बात करना जरूरी समझा हो।

थोडे दिनो के बाद वह किसी सरकारी काम से कलकत्ता आये। उनके सचिव का फोन आया कि मन्त्रीजी आये हुए है और मुझे मिलने के लिए बुलाया है। वैसे मै खुशी खुशी उनके यहाँ जाता लेकिन उनके सचिव की बात का लहजा कुछ जचा नहीं और मैने नम्रतापूर्वक टाल दिया। इससे पहले उनके यहाँ आने की सूचना तार तथा पत्र द्वारा आ चुकी थी और ऐसा पता चला कि यह इत्तिला दूसरे कई लोगों को भी दी गयी थी।

कुछ दिनो बाद मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा कि वे कह रहे थे कि आप कलकत्ता मे न तो उनको लेने के लिए स्टेशन आये और न उनसे मिले ही। इसलिए वे आपसे कुछ नाराज हैं।

जब नया चुनाव हुआ तो वे हार गये। क्योंकि अपने मन्त्रीकाल मे आपस के लोगो से मिलना-जुलना कम कर दिया था, अभिमान भी हो गया था। उसके बाद जैसा कि आम तौर से लोग करते है, उन्होंने भी खादी की एक संस्था और सहकारी समिति की स्थापना कर ली और अपना काम देखने लगे।

एक दिन अचानक ही वे मुझे दिल्ली स्टेशन पर मिल गये। छोटा-सा बिस्तर उनकी बगल मे था और थर्ड क्लास की जगह खोज रहे थे। वैसे मन्त्री बनने के पहले भी तीसरे दर्जे मे ही यात्रा करते थे पर इस बार मुझे देखकर बहुत झेंपे।

लिखने का तात्पर्य यह है कि मैंने तीन वर्षों मे एक मनुष्य के तीन रूप देखे। पहला खादी की ऊँची धोती, बिना इस्तिरी किये हुए कपडे, अभावग्रस्त परिवार, लेकिन हर प्रकार का सेवा कार्य करने के लिये तैयार। दूसरा बगुले के पख स सफेद कपडे, सजा हुआ शीत-ताप नियन्त्रित बगला, बडी कार और तौर-तरीका मे अभिमान की स्पष्ट झलक। अब तीसरा रूप था बिगडी हुई आदतों के कारण बढे हुए खर्चों की पूर्ति के लिए खादी या सहकारी सस्था के नाम से कुछ कमाना और अगर उसमे भी सफल न हुए तो फिर वही साधारण रहन-सहन, पर अब झेंप के साथ!

—o—

मन्त्री जी का जन्म दिन

किसी एक मन्त्री जी के जन्म दिन के उत्सव का निमन्त्रण पत्र मिला। आयोजकों के नाम की तीन पेज की सूची थी। एक आयोजन कमेटी भी बनी थी—जिसमें अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, संयोजक, कोषाध्यक्ष के सिवाय ५१ व्यक्तियों की कार्यकारिणी थी।

जितनी बड़ी सूची थी उसके अनुरूप ही जलसा था। ऐसा लगा कि १५००-२००० निमन्त्रण पत्र जरूर भेजे है क्योंकि ७००-८०० दर्शक थे जिनके लिए बड़ से लॉन मे छोलदारी लगाकर कुर्सियाँ सजायी गयी थी। विशिष्ट अतिथियो के लिए सुसज्जित ऊँचा मंच बनाया गया, जिसे नाना प्रकार के फूलो से सजाया गया था। मंच पर गांधी जी, राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू और नेहरू जी के बड़-बड़ चित्रो के साथ मन्त्री जी का अपना बड़ा-सा चित्र भी था।

उत्सव प्राय २-२॥ घण्टे चला। चाय, हल्का नाश्ता और ठढे पेय की सुव्यवस्था थी। मंत्री जी के बारे में इतनी बड़ी बड़ी बातें कही गयीं जिनका पता शायद स्वयं उनको भी नहीं रहा होगा। गौरव-गाथा गाने वालो मे होड लगी हुई थी। आम तौर पर किसी भी समझदार व्यक्ति को अपने बारे मे अतिरंजित बड़ाई सुनकर संकोच सा होता है परन्तु यहाँ तो मन्त्री महोदय बड़े चाव से मुस्करा कर सुन रहे थे।

सबसे पहले स्वागताध्यक्ष का भाषण हुआ (वे मन्त्री जी के ही किसी विभाग में ठेकेदारी का काम करते हैं)। उन्होंने कहा कि मुझे मन्त्रीजी को बचपन से जानने का सौभाग्य रहा है, लोगों को इनकी मेधाशक्ति, वाक्चातुर्य और समशीलता को देखकर पहले से ही यह पता चल गया था कि आगे जाकर ये देश के भाग्य-विधाता होंगे। दूसरे व्याख्यानदाता नगर के मेयर थे, उन्होंने स्वागताध्यक्ष द्वारा की गयी बड़ाई की ताईद तो की ही साथ में इतना और जोड़ दिया कि शुरू से ही ये ऊंचे दर्जे के ईमानदार और सच्चरित्र रहे हैं। अन्तिम वाक्य सुनकर वहाँ बैठे हुए बहुत से जानकार स्त्री पुरुषों को मुस्कुराते हुए देखा गया।

इसी प्रकार एक के बाद एक कई प्रभावशाली व्यक्तियों के भाषण हुए, इन सबका प्रयत्न केवल यह दिखाना था कि वे मन्त्री जी के अधिक से अधिक नजदीकी मित्रों में हैं

सोचने लगा कि पुराने राजा बादशाहों के चारणगणों तथा भाटों में और इन आयतकों में क्या फर्क है ? उन राजाओं को तो हम आज मूर्ख और खुशामद पसन्द कहते हैं। परन्तु आज के इन राजाओं को स्पष्ट बात कहकर नाराज करने की हिम्मत हमारे में नहीं है।

इतिहास में पढ़ा था कि रोम में एक सनकी बादशाह हुआ जिसे कविता करने की धुन सवार हुई। मुशायरों में वह भी स्वरचित कविताएं सुनाता था परन्तु ज्यादा दाद (वाह-वाही) दूसरे कुछ बड़े कवियों को मिलती। नतीजा यह हुआ कि सारे बड़े-बड़े कवि पकड़ कर जेल भेज दिये गये।

बादशाह ने अपनी कविता सुनाने के लिए ५-६ मुसाहिब नौकर रख लिये, जिनका काम कविता सुनने के समय वाह वाह करना और हाथ ताली देना ही था।

एक प्रकार से हमारे आज के इन जलसों में भी कुछ उसी प्रकार की खुशामद सुनने की भावना काम कर रही है। बादशाह का राज्य तो पैतृक और स्थायी था जबकि इनकी [illegible] जोड़ तोड़ से मिली हुई और अस्थायी है। ऐसे जलसों में दूसरे बड़े बड़े नेता और मन्त्रीगण काफी संख्या में आते हैं क्योंकि उनको भी कुछ समय बाद अपने जन्मदिन पर इसी प्रकार की भीड़ और उत्सव की आकांक्षा लगी रहती है।

आज से सौ दो सौ वर्ष पहले सम्पन्न व्यक्ति कुएँ, बावड़ी, धर्मशाला और प्याऊ लगाकर यश और नाम कमाते थे। आज वे बातें पुरानी हो गयी हैं और उनकी जगह स्कूल, कालेज और अस्पतालों ने ले ली है। परन्तु ये सब बहुत अर्थ साध्य काम हैं इसलिए, बिना हर्रे और फिटकरी लगे चोखा रंग लाने का मार्ग भी निकाल लिया गया है। वह है, अनेक चित्रों सहित अभिनन्दन ग्रन्थ तैयार कराके जन्मदिन के जलसे में स्वयं को समर्पित करवाना।

मेरे एक बुजुर्ग मित्र हिन्दी के मूर्धन्य कवि थे। वे राम के भक्त थे और आमतौर पर दूसरे किसी की भी प्रशंसा में कविता नहीं लिखते थे। एक दिन एक प्रभावशाली व्यक्ति का उनके पास किसी अभिनन्दन ग्रन्थ में कविता के लिए फोन आया। उन्होंने नम्रता-पूर्वक अस्वस्थता के कारण लिखने से नाहीं कर दी।

उसके बाद भी हर प्रकार से उन पर दबाव डाला गया। फिर भी उन्होंने कविता नहीं दी। ग्रन्थ प्रकाशित होने पर देखा गया कि देश के प्रसिद्ध लेखकों, कवियों और नेताओं की रचनाएँ तथा सन्देश मन्त्री जी के यशोगान में भरे पड़े थे। ग्रन्थ की साजसज्जा तो हर प्रकार से दर्शनीय थी ही।

अभिनन्दन के सिवाय अपने नाम के पहले 'डाक्टर' लिखना भी इन विशिष्ट लोगों के लिए आवश्यक प्रथा सी हो गयी है। विश्वविद्यालयों के महत्त्वपूर्ण पदों पर पहले से ही अपने आत्मियों को सिफारिश-कोशिश कर नियुक्त करवा दिया जाता है। व जोड़ तोड़ बैठाकर वर्ष-दो-वर्ष में इन्हें डाक्टरेट दिला देते हैं।

कई मन्त्रियों और नेताओं के तो हर बड़े शहर में कुछ वैतनिक कार्यकर्ता रहते हैं, जिनका वेतन उनसे सम्बन्धित किसी संस्था द्वारा दिया जाता है। उनका काम मन्त्री जी की उस शहर या आस-पास की यात्रा के समय भीड़ को इकट्ठी करके जय बुलवाना और फूल-मालाएँ पहनाना रहता है। इसके लिए कभी-कभी जय बोलने वालों और माला पहनाने वालों को पैसा भी देना पड़ता है।

वैसे, विश्व में उचित मान और बड़ाई पाने की इच्छा सबकी रहती है परन्तु इसके लिए जिस प्रकार के प्रयत्न आजकल हमारे यहाँ होने लग गये हैं, वे बहुत ही अवाञ्छनीय और लज्जास्पद हैं।

कितनी जमीन : कितना धन ?

राजस्थान के किसी गाँव मे एक सुखी किसान परिवार था पति पत्नी और एक पुत्र, पचास बीघा जमीन और दो फसली खेती रहने के लिये अपना छोटा सा मकान था। कड़ी मेहनत कर निवा के लायक पैदा कर लेते। कुछ बच जाता तो वह पास पडोस, अतिथि और साधु-सन्तो के काम आ जाता।

एक दिन एक रिश्तेदार शहर से आकर किसान के घर ठहरा उसके बच्चे जरी-गोटे के कपड़े पहने थे और स्त्री आभूषणो से लदी थी। किसान पत्नी के पूछने पर अतिथि की स्त्री ने बताया कि ये गहने सोने के हैं और उनमे सच्चे हीरे-जवाहरात जड़े है।। यह भी कहा कि बड़े आदमियो की यही शोभा है।

दो तीन दिन रहकर मेहमान तो चले गये परन्तु कृषक पत्नी के मन मे एक तीव्र आकांक्षा छोड गये। उसे रात दिन उन गहनो का ख्याल बना रहता। सोती तो सपने मे जड़ाऊ गहने नजर आते। बच्चा भी गोटा-किनारी के कपड़ो के लिये मचल उठता। पत्नी के बार बार कहने पर कुछ दिनों बाद, किसान अपने गाँव के जमींदार के यहाँ गया और उधारी पर पचास बीघे जमीन खरीद ली। दाना

---

* एक विदेशी कहानी की प्रेरणा से

ने डटकर मेहनत करनी शुरू कर दी। संयोग से वर्षा भी समय पर होती गयी। दो तीन वर्षों में ही जमीन की कीमत अदा कर दी। आगे चलकर एक सौ बीघा जमीन और ले ली। अब उसके पास दो सौ बीघा जमीन हो गयी और वह सम्पन्न किसानों में गिना जाने लगा। किसी समय का परसा किसान अब परसराम जी बन गया। ड्योढ़ी पर चार जोड़ी अच्छे बैल, एक रथ और दो ऊंट शोभा बढ़ाते। पत्नी के पास सोने के तरह तरह के जड़ाऊ गहने हो गये। बच्चा भी बड़ा होकर स्कूल जाने लगा। घर में बहुत से नौकर-चाकर थे।

खेती-बारी के अलावा वह बोहरगत (उधार का व्यापार) भी करने लगा। इसमें आमदनी के साथ साथ साख भी बढ़ी। इतना सब होने पर भी परसराम का चित्त अशान्त रहने लगा। पड़ोसी गांव के जमींदार के पास उससे भी ज्यादा जमीन थी। वह सोचता कि उनके दरवाजे पर हाथी कितनी मस्ती से झूमता रहता है जब कि मेरे पास तो केवल ऊँट है। उसे यह धुन सवार हुई कि किसी प्रकार जमींदार से अधिक समृद्ध बन सके। संयोग से एक दिन खबर मिली कि बीकानेर रियासत के गंगानगर इलाके में नहर आने वाली है और वहाँ बहुत सस्ते दामों में जमीन मिल रही है जो आगे चलकर सोना उगलेगी। यह बात उसके मन में पैठ गयी। पत्नी और पुत्र को गंगानगर में जमीन लेने का अपना विचार बताया। उन लोगों ने कहा, "सुना है कि वहाँ आबादी नहीं है, वीरान जगह है, बाघ भेड़िये घूमते रहते हैं। हमें ईश्वर

ने सब कुछ दे रक्खा है, फिर क्या जरूरत है कि इस ढलती उम्र में आप वहाँ जाकर खतरा मोल लें ?" परन्तु परसराम को तो ज्यादा से ज्यादा और धन की चाह लगी हुई थी। कड़ी मेहनत से वह जीवन में कभी पीछे हटा नहीं, उसे इसका फल भी मिला, अत अपने निश्चय पर अटल रहा। साथ में यथेष्ट रुपये लेकर गगानगर के लिये रवाना हो गया। कई दिनों की यात्रा के बाद वहाँ पहुँचा। काफी थक गया था, कुछ ज्वर भी हो आया। अगले दिन अधिकारियों से मिला। पता चला कि जमीन की कीमत प्रति मुरब्बा सात सौ रुपये है। नहर के किनारे चकबन्दी में जितनी चाहे उतनी खरीद सकता है। नहर निकल आने पर तीन वर्षों के अन्दर ही जुताई शुरू कर देनी होगी और दस वर्ष तक किसी को जमीन बेच नहीं सकेगा। परसराम खेती की नस नस पहचानता था। निजी अनुभव था। नहर के आने पर जमीन क्या से क्या हो जायगी, वह जानता था। पजाब से बहुत से समृद्ध किसान भी इसी लिये आये हुए थे। उसने सोचा, ज्यादा से ज्यादा जमीन ले ली जाय वरना मौका हाथ से निकल जायगा।

उन दिनों, सवारियों की व्यवस्था वहाँ नहीं थी। बीमार के बावजूद वह पैदल ही निकला और उसे अच्छी से अच्छी जमीन की खोज के लिये दूर दूर तक चलना पड़ा। कड़ी मेहनत से उसका बदन टूटने लगा, बुखार तेज हो गया। परन्तु जैसे ही लौटने की सोचता तो सामने और भी अच्छी जमीन नजर आती, बीमारी की परवाह

न करके फिर आगे बढ जाता। जब तक वह डेरे पर वापस पहुँचा, उस समय उसकी हालत बहुत ही खराब हो गयी थी।

समाचार पाकर चार-पाँच दिन बाद जब उसकी पत्नी और पुत्र गाँव से वहाँ पहुचे तो उस समय वह सन्निपात मे बडबडा रहा था, "जमीन बहुत अच्छी है खूब पैदावार होगी अनाज की जगह सरसों कपास लगायेंगे " आदि।

जो भी थोडा बहुत उपचार वहाँ सम्भव था, सब किया गया किन्तु वह बचाया न जा सका।

मरघट मे पाँच हाथ जमीन साफ करके वहाँ के लोगो ने परसराम के पुत्र के हाथ से उसकी दाह क्रिया करा दी।

सती

सन १९५४ की बात है। मैं अपने कुछ मित्र सदस्यों के साथ राजस्थान के दर्शनीय स्थानों का भ्रमण करते हुए जोधपुर में ठहर गया। पता चला, पास ही मंडोर का ऐतिहासिक स्थान है।

अगले दिन हम इसे देखने गये। वीरान सी जगह, लगता था जैसे अभिशापग्रस्त हो। पत्थर की छोटी-बड़ी बहुत सी छतरियाँ देखने में आयीं। मकराने के बेहतरीन पत्थरों की बनी थीं, नक्काशी का काम भी इनपर उम्दा था।

एक स्थानीय वयोवृद्ध रामू जी ब्रागा हमारे गाइड थे। मेरे एक मित्र ने इन्हें साथ कर दिया था। उन्होंने मुझे प्रायः सारी छतरियाँ दिखायीं। पिछले साठ वर्षों से वे इन छतरियों की सम्हाल रखते रहे हैं। मृत राजाओं की जन्मतिथि, राज्यकाल, मृत्यु तथा उनके जीवन से सम्बन्धित प्रमुख घटनाएँ उन्हें कंठस्थ थीं।

लगभग चार सौ वर्षों से इस स्थान पर स्थानीय राजाओं की दाहक्रिया सम्पन्न होती रही है। उन्हीं की यादगार में ये छतरियाँ बनीं। यह एक रेत से ढकी सी थीं। कुछ पर झाड़ियाँ उग आयी थीं। उपेक्षित और बेमरम्मत होने की वजह से ढह भी रही थीं।

ऐतिहासिक स्मारकों को देखकर भावना और कल्पना के परों पर बैठा मनुष्य सुदूर अतीत की एक झाँकी वह कुछ क्षणों के लिये पा

}

, जाता है। दिल्ली के लाल किले में -जहाँ सल्तनते मुगलिया की शानोशौकत के साथ 'बाअन्य बामुलाहिजा होशियार' की गूंज दीवारों से निकलती है, वहां अभागे दाराशिकोह के कटे सिर की अधखुली आँखें आज भी कुछ कह जाती हैं।

मडावर का ऐतिहासिक वैभव इस टक्कर का नहीं है। फिर भी राजस्थान के रजवाड़ों का एक ऐसा पृष्ठ यहाँ मेरी आँखों के सामने उभरा जो अब तक अन्यत्र कहीं मिला नहीं। एक बड़ी सी छतरी के पत्थरों पर नागरी में एक लेख देखा। पढ़ने पर पता चला कि अमुक महाराना युद्धवीर, धर्मवीर, दानवीर और प्रजावत्सल थे। उनके साथ तीन रानियाँ और बारह दरोगनें सती हुई। एक अन्य छतरी महाराना अजित सिंह की यादगार में बनी थी। उसके शिलालेख में सहमरण की रानियों की संख्या थी छः और दरोगना की बाइस। इस प्रकार विभिन्न छतरियों पर कम या अधिक संख्या - का उल्लेख था।

बरबस खो सा गया, उस प्राचीन बहुचर्चित सामन्त युग में। - मैं सोचने लगा कि रानियों का सहमरण तो पत्नी होने के नाते तत्कालीन -, प्रथा और परम्पराओं के अनुसार गौरवपूर्ण, माना जा सकता है। किन्तु दरोगनें स्वेच्छा से सती हुई या इन्हें विवश किया गया?

रामजी दारोगे के समक्ष मैंने अपने प्रश्न रखे और यह भी पूछा कि यदि बाध्यतामूलक सहमरण रहा होगा तो विरोध भी होता था या नहीं?

उन्होंने कहा "यह सर्वविदित है कि मुगलों के सम्पर्क में आने के

सती

सन १९६८ की बात है। समय से कुछ मित्र सदस्यों के साथ राजस्थान के दर्शनीय स्थानों का भ्रमण करते हुए जोधपुर में ठहर गया। पता चला, पास ही मंडोर का ऐतिहासिक स्थान है।

अगले दिन हम इसे देखने गये। वीरान सी जगह, लगता था जैसे अभिशापग्रस्त हो। पत्थर की छोटी-बड़ी बहुत सी छतरियाँ देखने में आयीं। मकराने के बेहतरीन पत्थरों की बनी थीं, नक्काशी का काम भी ऊपर उम्दा था।

एक स्थानीय वयोवृद्ध रामू जी दरोगा हमारे गाइड थे। मेरे एक मित्र ने इन्हें साथ कर दिया था। उन्होंने मुझे प्रायः सारी छतरियाँ दिखायीं। पिछले साठ वर्षों से वे इन छतरियों की सम्हाल रखते रहे हैं। मृत राजाओं की जन्मतिथि, राज्यकाल, मृत्यु तथा उनके जीवन से सम्बन्धित प्रमुख घटनाएँ उन्हें कंठस्थ थीं।

लगभग चार सौ वर्षों से इस स्थान पर स्थानीय राजाओं की दाहक्रिया सम्पन्न होती रही है। उन्हीं की यादगार में ये छतरियाँ बनीं। कई एक रेत से ढंकी सी थीं। कुछ पर झाड़ियाँ उग आयी थीं। उपेक्षित और बेमरम्मत होने की वजह से ढह भी रही थीं।

ऐतिहासिक स्मारकों को देखकर भावना और कल्पना के परों पर बैठा मनुष्य सुदूर अतीत की एक झाँकी वह कुछ क्षणों के लिये पा

जाता है। दिल्ली के लाल किले मे जहाँ सल्तनते मुगलिया की शानोशौकत के साथ 'वाअदव वामुलाहिजा होशियार' की गूज दीवारो से निकलती है, वहीं अभागे दाराशिकोह के कटे सिर की अधखुली आँखें आज भी कुछ कह जाती है।

मटावर का ऐतिहासिक वैभव इस टक्कर का नहीं है। फिर भी राजस्थान के रजवाडो का एक ऐसा पृष्ठ यहाँ मेरी आँखो के सामने उभरा जो अब तक अन्यत्र कहीं मिला नहीं। एक बडी सी छतरी के पत्थरो पर नागरी मे एक लेख देखा। पढने पर पता चला कि अमुक महाराजा युद्धवीर, धर्मवीर, दानवीर और प्रजावत्सल थे। उनके साथ तीन रानियाँ और बारह दरोगनें सती हुई। एक अन्य छतरी महाराजा अजित सिंह की यादगार मे बनी थी। उसके शिलालेख मे सहमरण की रानियो की सख्या थी छ और दरोगनो की बाइस। इस प्रकार विभिन्न छतरियो पर कम या अधिक सख्या का उल्लेख था।

बरबस रुके सा गया, उस प्राचीन बहुचर्चित सामन्त युग मे। मैं सोचने लगा कि रानियो का सहमरण तो पत्नी होने के नाते तत्कालीन प्रथा और परम्पराओ के अनुसार गौरवपूर्ण माना जा सकता है। किन्तु दरोगनें स्वेच्छा से सती हुई या इन्हें विवश किया गया?

रामजी दारोगे के समक्ष मैंने अपने प्रश्न रक्खे और यह भी पूछा कि यदि बाध्यतामूलक सहमरण रहा होगा तो विरोध भी होता था या नहीं?

उन्होंने कहा "यह सर्वाविदित है कि मुगलों के सम्पर्क में आने के

कारण राजपूत सामन्त एव सरदार ऐय्याश एव आरामतलब हो गये थे। कामपिपासा की तृप्ति के लिये ज्यादा से ज्यादा रानियाँ, उप पत्नियाँ और रखैल रख लेते। रनिवास मे ऐसी औरतों की अधिकाधिक सख्या उनके पौरुष और वैभव का प्रतीक मानी जाती थी। यह प्रथा सत्रहवी से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल तक प्रचलित रही। कहा जाता है कि जयपुर नरेश स्वर्गीय महाराज माधो सिंह की सब मिलाकर सात आठ सौ रानिया और रखेलें थीं।"

इस प्रथा की शुरुआत के बारे मे एक जनश्रुति उन्होंने बतायी--"राजपूतों मे नियम था कि केवल रानिया ही पति के शव के साथ चिता मे अपने को भस्म कर सती होने का गोरव प्राप्त करें। एक बार एक बडे माने जाने महाराजा की मृत्यु हो गयी। युवराज को किसी मुसाहिब ने सुझाव दिया कि दिवगत महाराजा पुण्यात्मा थे इसीलिये आजीवन उन्होंने ऐश्वर्य भोग किया। अब उनकी मृत्यु के उपरान्त हमारा यह धर्म है कि परलोक मे भी उनकी सेवा के लिये रनिवास की उनकी बादियाँ भेज दी जाये।"

"बस फौरन हुक्म हुआ कि आठ दस बादियाँ महाराज के शव के साथ जला दी जायें। परम्परा बन गयी। आगे चलकर तो पचास-साठ तक यह सख्या पहुँची। जिन औरतों को इस प्रकार जलाने के लिये बाध्य किया जाता, उनके पति और बच्चों का रोना - चीखना स्वाभाविक था। लेकिन उन दिनों परवाह ही कौन करता इन बातों की ! राज्य अपना, हुकूमत अपनी, सर उठाने की बात तो दूर, उँगली तक उठाने की मजाल किसकी ?"

कहते-कहते रामू जी की आवाज कांपने लगी, वे पास के एक चबूतरे पर बैठ गये। मैंने समझा, वृद्ध शरीर है, थक गये होंगे। कुछ पूछना चाहता था कि देखा, उनकी आंखों से आँसू उमड रहे हैं। कहने लगे, "मेरी अभागिन परदादी की बात याद आ गयी। उसे भी जबरन जलाया गया था।"

मेरे विशेष अनुरोध पर उन्होंने यह घटना सुनायी।

"सन् १८०४ मे जोधपुर मे महाराजा भीम का राज्य था। उनके पास बडी-छोटी कुल मिलाकर सैकडो रानियाँ और रखैलें थीं, जिनमे उनकी अपनी समवयस्का से लेकर ८० वर्ष के अन्तर तक थीं। उस समय ऐसा रिवाज था कि जब कभी महाराज का मन हुआ, किसी छोटे-बड़े जमींदार की लडकी को मँगा लेते। वह बेचारा कन्या ऋण से तो मुक्त होता ही, साथ ही लडकी को भी राजरानी देखने का स्वप्न देखता। दरबार मे उसका रुतबा भी बढ जाता। इस प्रकार रानियों की एक बडी फौज महलों मे इकट्ठी हो जाती। इन सबके साथ दरोगा जाति की कुंवारी कन्यायें भी दहेज मे आतीं। उन सबका नाममात्र का विवाह तो उसी जाति के लडकों से कर दिया जाता परन्तु वे रहतीं राजा की रखैल के रूप मे। इनमे से किसी-किसी के पास तो राजा दो चार वर्षों मे भी नहीं जा पाते थे।"

"महाराज की आयु ६० वर्ष की हो गयी थी। उनका शरीर अफीम, शराब और औरतों के कारण समय से पहले ही जर्जर हो गया। हकीमों, कविराजों की एक लम्बी कतार हाजिरी मे रहती,

मिला दिया गया। स्नान कराके नये कपड़े पहना दिये गये और सजे हुए रथ पर बैठाकर श्मशान ले जाने की तैयारी करने लगे। कहा जाता है कि किसी बहुत अशुभ घटना की आशंका पशुओं और अबोध बच्चों को भी हो जाती है। उस दिन मेरे दादा अपनी माँ को किसी प्रकार भी छोड़ने को तैयार नहीं हुए। जब देर होने लगी तो सरदार के निर्दयी मुसाहिबों ने उसके जबड़े पर एक जोर का मुक्का मारा, जिसके निशान उनकी मृत्यु पर्यन्त थे।

"श्मशान में पहले से ही तीस पैंतीस स्त्रियाँ सुबक-सुबक कर रो रही थीं। लोग कहते थे कि महाराज के शोक में रोती हैं। सब ने कसूमल लाल रंग के कपड़े पहन रखे थे। हाथ-पैरों पर मेहदी रची थी। सुहागन का बाना सजा हुआ था, क्योंकि वे अपने पति देवता और अन्नदाता से मिलने के लिये स्वर्ग जा रही थीं।"

"चन्दन काठ की बहुत बड़ी चिता सजायी गयी। पहले बड़ी महारानी को बैठाकर उनकी गोद में महाराजा का सिर रख दिया गया। चारों तरफ दूसरी रानियाँ बैठ गयीं। इनके पीछे गोलियों को बैठा दिया गया।"

"पण्डितों ने उच्च स्वरों में मन्त्रोच्चार प्रारम्भ किया। चिता में आग लगा दी गयी। करुणा-भरी चीख पुकार सुनाई पड़ने लगी, परन्तु जोर जोर से बजते हुए ढोल, नगारों और बाजों के शोर शराबे में इनका कुछ भी पता नहीं चला। कहते हैं, मेरे परदादा अपने पुत्र को गोद में लिये वहीं खड़े हुए यह सब देख रहे थे। एक बार तो पर-

दादी ने चिता से बाहर कूदने का प्रयत्न भी किया, परन्तु हत्यारों ने उसे बाँसों से धकेल कर चिता की तरफ कर दिया। धधकती आग में थोड़ी देर में ही सब कुछ स्वाहा हो गया।

"महाराज की जय हो, महाराज बड़े प्रतापी और पुण्यवान थे, इन आवाजों के साथ-साथ जो रानियाँ और दरोगनें जला दी गयी थीं उनके पति, पुत्र और पुत्रियों की सिसकती आहें भी हवा में फैल गयीं।'

आसू पोंछते हुए रामूजी कहने लगे, "इन बातों को बहुत वर्ष बीत गये परन्तु इन्हें दोहराते समय घाव हरे हो जाते है।"

मैंने हाथ का सहारा देकर उन्हें उठाया। छतरियों के चबूतरे की सीढ़ियों से हम उतर रहे थे।

दिन ढल चुका था। ऐसा लगा कि अस्ताचल का सूर्य इन घटनाओं को सुनकर तेजी से कहीं दूर छिपना चाहता है।

गोगा-बापा

राजस्थान के शौर्य और बलिदानों का इतिहास विश्व में बेजोड़ माना जाता है। सम्मान और सतीत्व की रक्षा के लिये बच्चों को गोद में लिये हुए हजारों महिलाओं का धधकती आग में कूद कर प्राण दे देना, अपने आप में एक अद्वितीय दृष्टांत है। भारत के सिवा ऐसे उदाहरण शायद ही विश्व में और कहीं मिल पायेंगे। रणथंभौर और चित्तौर में इस प्रकार के कई जौहर हुए हैं। सबसे पहला जौहर बीकानेर के भादरा गाँव के पास गोगामढ़ी में सन् १०२४ में हुआ। इसमें ७०० कुलवधुएँ अपने बच्चों को गोद में लिये हुए जलकर भस्म हो गयी थीं। जब गजनी की फौज मढ़ी में पहुँची तो उसे राख की ढेरी, कुछ अधजले मांस के लोथड़े और उन पर मंडराते हुए हजारों गिद्ध दिखायी दिये थे।

गोगामढ़ी के चौहान सरदार गोगाजी का एक अद्भुत इतिहास है। यूरोप के १२ वीं शताब्दी के क्रुसेड अभियान के कई एक नेता, भारत के जयमल फत्ता और वीर चूडावत सरदार के बलिदानों से भी गोगाजी का बलिदान अधिक उज्ज्वल और अनोखा है।

मुहम्मद गजनवी की पचास हजार की सुसज्जित फौज के डर से लोहकोट (लाहौर) और मुल्तान के हिन्दू राजा युद्ध में तिनका लेकर अपनी फौज सहित उसके साथ हो गये थे। रास्ते के सामन्तों की बिसात ही क्या थी? मरुभूमि की सीमा पर पहुचते-पहुँचते उसके पास तीस हजार सवार और पचास हजार पैदल फौज थी।

जहाँ तक सम्भव हुआ, मुहम्मद रास्ते के सामन्तों से समझौता करता हुआ, सोमनाथ की प्रसिद्ध मूर्ति ध्वंस करने के लिए आगे बढ रहा था। उसने गुर्जर देश की समृद्धि के बारे में सुन रखा था। वहाँ जाकर लूट का सिपाहियों को लालच था और गजनवी को महान्‌ की मूर्ति तोडकर गाजी बनने का।

उसे माटी प्रदेश (इस समय का बीकानेर क्षेत्र) होते हुये जालौर मारवाड के मार्ग से गुजरात सौराष्ट्र जाना था। रास्ते में गोगामढी थी, वहाँ के वृद्ध सरदार गोगाजी की यशोगाथा उसने सुन रखी थी।

गजनवी ने एक देश-धर्मद्रोही तिलक नाम के भारतीय के साथ अपने सेनापति सालार मुहम्मद को गोगा-बापा के पास हीरे-जवाह-रातों का थाल देकर भेजा। उसने कहा कि अमीर गजनी अपनी फौजों के साथ आपके क्षेत्र से होकर प्रभास पाटन जा रहा है, उसे आपकी सहायता चाहिये।

नब्बे वर्ष के गोगा बापा का शरीर क्रोध से काँपने लगा। गम्भीर गर्जन करते हुये उन्होंने कहा, "तेरा अमीर भगवान सोमनाथ

के विग्रह को तोडने जा रहा है और मुझसे सहायता माँगता है ! तू हिन्दू होकर उसकी हिमायत के लिये आया है !! जा अपने मालिक से कह दे कि गोगा-बापा रास्ता नहीं देगा।" यह कहकर उन्होंने हीरे मोतियों के थाल को ठोकर से दूर फेंक दिया।

बापा के इक्कीस पुत्र, चौहत्तर पौत्र और सवा सौ प्रपौत्र थे। इनके सिवा उनके पास नौ सौ शूरवीरों की छोटी-सी सेना थी।

पन्द्रह दिनों तक तैयारी होती रही। गढ़ की मरम्मत हुई। हथियार सँवारे गये। चण्डी का और महारुद्र का पाठ होने लगा।

एक दिन देखा कि गजनवी की फौजें एक विशाल अजगर की तरह सरकती हुई गोगामढ़ी से आगे निकल रही हैं। शायद वह बापा से उलझना नहीं चाहता था।

प्रधान पुजारी नन्दीदत्त ने कहा, "बापा सकट टल गया है, यवन फौज आगे बढ़ती जा रही है। बापा की सफेद मूँछ और दाढ़ी फड़कने लगी। उन्होंने कहा, "महाराज, हमारे शरीर में रक्त की एक बूँद के रहते भगवान शंकर के विध्वस के लिये म्लेच्छ कैसे जा सकता है ? हम लोग उनका पीछा करेंगे। आप गढ़ी में रहकर महिलाओं और बच्चों की सद्गति कर दें। ऐसा न हो कि उनके हाथों में मेरे वंश का कोई जीवित व्यक्ति पड जाय।'

युद्ध की तयारी के बाजे बजे। घोड और ऊट सजाये गये।

केसरिया बाना पहने ११०० वीर हाथों में तलवार, तीर और फरसे लिये हुए गजनवी की सवा लाख फौज को विध्वस करने चले।

दस वर्ष से छोटे बच्चों और स्त्रियों कि एक बड़ी चिता तैयार करके पुरोहित नन्ददत्त ने उसमें अग्नि प्रज्वलित कर दी। उसका अपना जवान पुत्र तो बापा के साथ जूझने चला गया था, पत्नी, पुत्र-वधू और बच्चे सब जौहर की आग में कूद गये।

गढ़ के नीचे खड़ी यवन सेना देख रही थी कि तीर की तरह की तेजीसे केसरिया वस्त्रों में थोड़े से वीर आ रहे हैं। 'अल्लाह हो अकबर' की गर्जना हुई। हरी पगड़ी और लाल दाढ़ीवाला अमीर हाथी पर चढ़ा हुआ अपनी फौजों को बढ़ाव देने लगा।

नब्बे वर्ष के वयोवृद्ध बापा बिजली की तरह कड़ककर यवन फौजों का नाश कर रहे थे। एक बार तो गजनवी की फौज में तहलका मच गया, परन्तु संख्या का और साज सामान का इतना अन्तर था कि दो घड़ी में सारे के सारे चौहान वीरगति को प्राप्त हो गये। दुश्मन के दसगुने आदमी मारे गये। गोगाबापा के वंश में बच गया एक पौत्र सज्जन और उसका पुत्र सामन्त। वे दोनों मुहम्मद के आक्रमण की अग्रिम सूचना देने प्रभास पाटन गये हुए थे। वापस आते समय उन्हों ने रास्ते में भागते हुए लोगों से सारी बातें सुनी। एक बार तो दुख से रोने लगे, परन्तु तुरन्त ही सभलकर अपना

कतव्य निश्चित किया। सामन्त तेज ऊँटनी पर चढकर गुर्जर नरेश भीमदेव के पास चला गया।

सज्जन चौहान जालौर के रावल से मिलने गये। बहुत समझाने-बुझाने पर भी रावल नहीं माने। उन्होने कुछ दिन पहले ही गजनवी के दूत को रास्ता देने की स्वीकृति दे दी थी। उनका कहना था कि भीमदेव इतना अभिमानी हो गया है कि हम लोगो का कुछ गिनता ही नहीं। अब जब उस पर सकट आया है तो मैं क्यो उसकी सहायता करूँ ? सज्जन ने बहुत कुछ समझाया कि 'महाराज, यह तो भीमदेव और आपके वैमनस्य का प्रश्न नहीं है। देश धर्म पर सकट आया है। इस समय पारस्परिक भेदभाव को भूल कर यवनो का नाश करना चाहिये।' इस पर भी जब रावल नहीं माना तो व्यर्थ मे देर नहीं करके सज्जन ने अपनी ऊँटनी गजनवी की फौजो की तरफ बढाई। तीन चार दिन तेजी से चलने पर उसे गजनवी का दूत अपने सैनिको की टुकडी के साथ मिला। सात आदमियो सहित उसको मारकर रावल का स्वीकृत पत्र, दूत की कटार और गुप्त निशान लेकर वह गजवनी की फौजो की तरफ बढा। उस समय तक उसकी फौज मे तीस हजार घुडसवार, पचास हजार तीरदाज और तीन सौ हाथी थे। चार हजार ऊँटो पर केवल रसद और पानी था। इसके पहले इतनी बडी फौज किसी भी सम्राट के पास नहीं सुनी गयी थी।

नायक को उसने निशान लिखाया। वह गजनवी के पास ले जाया गया।

एक बड़े तख्त पर अमीर बैठा था। चारों तरफ नंगी तलवारें लिए तातारी सिपाही खड़े थे। सज्जन ने दुभाषिये के माध्यम से बताया कि आपके दूत का रक्षकों सहित जालौर के रावल ने मार दिया है। रावल और मारवाड़ के राना रणमल्ल की सम्मिलित फौजें लड़ाई के लिये तैयार हैं। निशानी के लिये दूत की कटार गजनवी के पैरों के पास रख दी। तीन चार दिन के थके हुए और भूखे चौहन की बातों पर मुहम्मद को यकीन आ गया।

उसने अपना परिचय जैसलमेर के एक जागीरदार के रूप में दिया और कहा कि अगर अमीर चाहे तो वह उन्हें सीधे रास्ते से केवल बीस बाइस दिनों में सोमनाथ पहुंचा सकता है। उस रास्ते पर किसी प्रकार की रोक-थाम का अंदेशा भी नहीं है। इसके बदले में उसने अपनी जागीर के पास के एक सौ गाँव चाहे। इतनी अच्छी तरह से उसने रास्ते के गाँव और खेड़ों का परिचय दिया कि सेनापति तथा अन्य हल्कारे उसकी बात को प्रामाणिक मान गये।

दूसरे दिन गजनवी ने अपनी फौजों को रास्ता बदलने का हुक्म दे दिया। अब वे सीधे कोलायत, बाप और जैसलमेर के रेगिस्तान

होकर जाने लगे। सज्जन अपनी प्रिय ऊँटनी पर सब के आगे चला। चार दिन की यात्रा के बाद हलकारों ने शोर मचाना शुरू किया कि आगे बीहड़ रेगिस्तान है जहाँ आदमी तो क्या पक्षी भी नहीं जा सकते। सेनापति सालार महमूद ने सज्जन को धमकाया, परन्तु वह अपनी बात पर अटिग रहा। वापस जाने में फिर पाच दिन लगते, इसीलिये हिम्मत करके वे आगे बढ़े। पाँचवें दिन दोपहर होते ही सामने भयानक अंधड आता हुआ दिखाई दिया। जलती हुई गरम रेत मुँह बाए हुई राक्षसी सी बड़े वेग से बढ़ रही थी। चौहान की ऊटनी जान की जोखिम लेकर तेजी से बढ़ने लगी। पीछे-पीछे मुहम्मद की सेना। थोडी देर मे ही प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। रेत के उमडते हुए ढेर के ढेर पशुओ और मनुष्यो को अंधा बनाने लगे। फौज बेतहाशा पीछे लौटो, परन्तु प्रलयकारी तूफान की सी तेजी, थके मादे पशुओ मे कहाँ से आती? दसो हजार ऊट हाथी और सिपाही गरम रेत के नीचे दबकर मर गये। जो बचे, उनमे से बहुतो को गल मे बिलो मे से निकले हुए क्रुद्ध काले-पीले सापो ने डस लिया। ऐसा लगता था कि शिव ने अपने गणो को यवनो की फौज का नाश करने के लिये भेजा है।

वीर चौहान ने भी अपनी ऊटनी सहित वहीं मरु समाधि ली। उसके चेहरे पर उल्लास और आनन्द था कि उसने दुश्मनो को इस प्रकार समाप्त कर दिया।

गोगा बापा और उसके वशजो की पुण्य कहानी यहीं समाप्त हो जाती है। उनका यशोगान उत्तर भारत के हर व्यक्ति की जबान पर आज भी है। भाद्र मास मे गोगामडी मे उनकी पुण्य-स्मृति मे एक बडा मेला लगता है। मुहम्मद ने अपनी बची हुई सेना को सँभाल कर किस प्रकार जालौर-मारवाड के रास्ते से सोमनाथ पर हमला किया, यह कथा देश के इतिहास मे प्रामाणिक रूप से उल्लिखित है।

❀

प्रतिशोध

राजस्थान मे डूगजी जुहारजी नाम क दो धाड़ैतो का उनीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध मे बड़ा आतक था। उनके नाम से ही लोग थराते थे। सैकड़ों आदमियों की बारात को वे दोनो दो-चार साथियो के साथ लूट लेते थे। परन्तु एक बात का उनके नियम था कि ब्राह्मण और अछूतो को कभी नही छेड़ते। कभी-कभी दूसरी जाति के लोग भी अपने को ब्राह्मण बताकर बच जाते। यह सब जानते हुए भी इसलिये उन्हे छोड देते कि कहीं भूल से भी ब्रह्महत्या का पाप न पड़े। इसके अलावा, ससुराल स पीहर जाती हुई लड़की को भी वे कभी नहीं सताते।

सन १८४६-५० के आसपास की बात है। एक बार आगरे के पास जुहारजी पकड़े गये। बड पहरे मे उन्हे वहाँ के केन्द्रीय कारागार मे रक्खा गया। उस जेल का सुपरिंटेन्डेन्ट था एक अग्रेज। नाम था अल्बर्ट, भयकर क्रूर और परम दाम्भिक। कैदियो को नाना प्रकार की अमानुषिक यन्त्रणा देकर उन्हें सताने मे उसे बड़ा मजा आता था।

जुहार जी के बारे में उसने बहुत कुछ सुन रक्खा था। अपनी कैद मे उन्हें पाकर उसके मन की पाशविकता **भड़क** उठी।

बहादुरी साबित करने के लिये दूसरे कैदियों के सामने उन्हें टूटी-फूटी हिन्दी में भद्दी और गन्दी गालियां दिया करता। कभी-कदास दो-चार ठोंकरे भी मार देता। आँखों से अंगार बरसते मगर वे मन मसोस कर रह जाते उनके दोनों हाथों और पैरों में लोहे की मोटी-मोटी भारी बेड़ियाँ पड़ी थीं।

कैदियों के साथ रहने के कारण अलबट बहुत सी देशी गालियाँ सीख गया था। एक दिन बड़े ही भद्दे तरीके से उसने जुहारजी को माँ-बहन की गाली दी। अपमान और क्रोध के आवेश में वे उछल पड़े, हाथ-पैरों की जजीरें झनझना उठीं। दाँत पीसते हुए उन्होंने कहा, "अगर मैंने राजपूतनी का दूध पिया है तो इसका बदला तुमसे लूंगा, तेरे वंश को मिटाकर।"

अलबट आग बबूला हो उठा। उसने जुहारजी की इतनी बुरी तरह से पिटाई की कि उनका सारा बदन सूज गया। इतना ही नहीं, उनके घावों पर उसने सबके सामने पेशाब भी किया।

ये खबर जेल की ऊँची और मोटी दीवारों के बाहर पहुंची और बढ़ चढ़ कर उनके साथियों के पास पहुंची। उन सबकी एक गुप्त बैठक हुई। चार आदमियों को जुहारजी को जेल से बाहर निकालने का भार दिया गया। योजना बना ली गयी और इसकी खबर जेल के अन्दर उन तक पहुँचा दी गयी।

अमावस की अंधेरी रात, घनघोर वर्षा। निश्चित समय पर चारों साथी जेल की दीवार के किनारे पहुंचे। कमन्दें डाल दी

गया। जुझारजी ने अन्य बंदियों के कंधों पर चढ़कर छोरें पकड़ लीं। साथियों ने बाहर से रस्से खींचे। दीवार लांघ कर वे बाहर आ गए।

अगले दिन जब अलबर्ट को पता चला तो उसके हाथ के तोते उड़ गये। उसकी कैद से निकल जाना मामूली बात नहीं थी। अपनी शान और इज्जत पर पहला प्रहार लगा देख तिलमिला उठा, मन में भय भी हुआ। "इसका बदला लूँगा, तेरे वंश को मिटा कर" ये शब्द बार बार उसके कानों में गूँज उठते। उसने पता लगाने की बहुत कोशिशें की। भेदिये छोड़े, इनाम की घोषणा की, गाँव उजाड़, बगुनाह लोगों को बहुत सताया, मगर डूंगजी-जुझारजी पकड़ में न आये, उनका कोई भी सुराग न मिल सका। आये दिन सरकारी खजाने लूटे जाने लगे। साथ के सिपाहियों में इतना आतंक फैल गया कि व उनका नाम सुनते ही माल असबाब छोड़कर भाग खड़े होते।

जल सुपरिन्टेन्डेन्ट के घर के आसपास छाया की तरह उनके आदमी मँडराने लगे। वह भी सतर्क रहने लगा। एक रात पत्नी और बच्चे के साथ वह किसी जल्से में जा रहा था। बग्घी के आगे पीछे हथियारबन्द सिपाही घोड़ों पर थे। सुनसान सड़क, सनसनाती हवा चल रही थी। काफी दूर निकल जाने पर कुछ देहाती आग तापते मिले। गाड़ी इनके पास से होती हुई थोड़ी ही आगे बढ़ी होगी कि आँधी के वेग से साहब के सिपाहियों पर वे देहाती झपट पड़े। एक ने बग्घी पर चढ़ कर अलबर्ट की पिस्तौल

छीन ली। सिपाही भाग चुके थे, कोचवान को धक्के देकर नीचे गिरा दिया गया। गाडी लेकर वे बीहड़ जगल के रास्ते बढने लगे। साहब को अचानक के हमले से यह पता नहीं चला कि वे डूगजी-जुहारजी के साथी है। वह चिल्ला-चिल्ला कर गालियाँ बक रहा था। अगले दिन फाँसी पर लटकाने की धमकी दे रहा था। इधर, उसके हाथ-पैर मजबूत रस्सियों से बाँधे जा चुके थे पत्नी सिमटी सी एक कोने मे बैठी थी, बच्चा उसकी गोद मे था।

आगरे से थोडी दूर जमुना और चम्बल की कटान ने इतने गहरे खड्ड ह कि उसमे हाथी भी छिप सकते ह। इन्हीं के आस-पास की एक सडक के किनारे गाडी खडी हुई। अलबर्ट और उसकी पत्नी की आँखो पर पट्टियाँ बाध दी गयीं और उन्हें पैदल ले जाने लगे। काफी घुमावदार और ऊँची-नीची जगह थी। कहाँ ले जाया जा रहा है, इसका अन्दाज तक लगाना सम्भव न था। एक निर्जन स्थान पर पहुँच कर उनकी पट्टियाँ खोल दी गयी। गुफानुमा एक मकान के अन्दर पहुँच कर अलबर्ट ने देखा, मशालो की रोशनी के बीच एक ऊँची चौकी पर बैठे थे डूगजी-जुहारजी। उनके इदगिद हाथों मे भाले, तलवार और बन्दूको से लैस बीस पचीस व्यक्ति आदेश की प्रतीक्षा मे थे।

अलबर्ट को देखकर जुहारजी के ओठो पर मुस्कुराहट खेल गयी। उन्होने कहा, "आइये अल्बर्ट साहब, बहुत दिनो बाद आपके दर्शन हुए।" फिर गम्भीर गूँजती आवाज मे उन्होने कहा, "साहब, हम तुम्हारी कैद मे थे, तुम्हारे कानून के लिहाज से सजा

भुगत रहे थे। बेड़ियों में भी जकड़े थे। फिर भी, तुमने बिना कारण हमारा अपमान किया।" उसकी ओर उंगली उठाकर कड़कती आवाज में बोले, "तुमने हमारी मां-बहनों को गालियाँ दीं और हमारे घावों पर सब के सामने पेशाब किया।"

साहब का कंठ तो इन्हें देखते ही सूख चुका था। उनकी आवाज से उसकी घिग्घी बँध गयी।

जुहारजी ने हँसकर कहा, "कायर मरने से इतना डरता है? हमने सुना था कि अंग्रेजों की कौम बहादुर होती है, वे मरना जानते हैं। ऐसा लगता है, जरूर तुम उनमें से किसी नीच जाति के हो।'

जुहारजी ने साथियों की तरफ देखा। अभिप्राय समझकर उन्होंने राय दी कि अल्बर्ट के शरीर को लोहे की गरम सलाखों से दागकर उसे भूखे भेड़ियों के बीच छोड़ दिया जाय। इस तरह तो चार घंटों में इसके लोथड़े नुच जायेंगे और धीरे-धीरे प्राण भी निकल जायेंगे। इसकी पत्नी और बच्चे को पहले ही इसके सामने गोली से उड़ा दिया जाये।

अब जुहारजी ने बड़े भाई डूंगजी की ओर देखा। उनका निर्देश ही अन्तिम आदेश था। उन्होंने संयत भाव से कहा, "उस दिन तुमने सबके वंश को नाश करने का प्रण लिया था। इसलिये इसके पुत्र को मार डालना भी उचित है। किन्तु, इस तीन वर्ष के अबोध बालक का कसूर क्या है? अब रही इसकी पत्नी। सो, अब तक हमने किसी स्त्री की हत्या नहीं की। मेरी राय है कि इसे वापस

सबने नौजवानों को बुराभला कहा, परन्तु उन्हें इससे किसी प्रकार की झिझक या शर्म महसूस नहीं हुई। खैर उस समय बात वहीं समाप्त हो गयी और वे सब दूसरे डिब्बे में चले गये। हमारे पास टिकट निरीक्षक आकर बैठ गया और कहने लगा कि ये सब यहाँ के कालेजों के विद्यार्थी हैं। रविवार तथा अन्य छुट्टी के दिन इनके लिए ऐसी हरकतें साधारण सी बात हो गयी है। जहाँ कहीं भले घर की बहू बेटी को देखते हैं कि आवाज कसने लगते हैं, मौका पाकर छेड़खानी भी कर लेते हैं। इनसे टिकट माँगने पर लड़ाई झगड़ा करने पर उतारू हो जाते हैं और कभी कभी मारपीट तक भी कर बैठते हैं। ये प्राय दस-पन्द्रह की टोली मे होते है और हम अकेले, इसलिए हमारे पास सिवाय उच्च-अधिकारियों को शिकायत करने के दूसरा चारा नहीं रह जाता।

मुझे कुछ दिनों पहले समाचार पत्रों मे पढ़ी हुई लखनऊ की एक घटना की याद आ गयी कि वहाँ के कालेजों के लड़कों ने स्कूल और कालेज जाती हुई लड़कियों को बहुत तंग करना शुरू कर दिया था और अन्त में उनमें से कई एक को पुलिस द्वारा गिरफ्तार करना पड़ा। आये दिन की तोड़-फोड़, हड़ताल, प्रोफेसरों से दिल्लगी और कभी-कभी धमकी देना आदि इनके लिए साधारण बातें हैं।

सोचने लगा, इनके माता-पिता दूसरे जरूरी खर्चों मे कटौती करके इनको उच्च-शिक्षा के लिए कालेजों मे भेजते हैं।

उनकी यही आकांक्षा रहती है कि पढ-लिखकर वश का नाम उज्वल करेंगे और हमे बुढापे मे कमाकर खिलायेंगे। उन्हें क्या पता कि उनके ये सपूत इस प्रकार से उनकी गाढी कमाई का धन बबाद करते हैं और १६ वर्षों मे डिग्री प्राप्त करने तक अनेक अवाछनीय वातों मे भी जानकार हो जाते हैं। बी० ए० या एम० ए० करने के बाद घर की खेती-वारी या दूकानदारी के काम मे इन्हें शर्म आने लगती है, इसलिए अखबारो मे काम खाली 'वान्टेड' के कालम देखकर क्लर्कों के लिए प्रार्थना पत्र देते रहते हैं। एक दिन मेरी जान पहचान का एक मिस्त्री, अपने बी० ए० पास पुत्र की नौकरी के लिए आया। वह स्वय पढा-लिखा नहीं है परन्तु हाथ का कारीगर है और प्रतिदिन छ सात रुपये कमा लेता है। बी० ए० पास करने के बाद लडके को घर के धन्धे मे शर्म आने लगी और सवा सौ डेढ सौ रुपये की नौकरी ढूँढने लगा। बाप तो साधारण कपडो में था परन्तु पुत्र नायलन की बुशर्ट, मक्खन-जीन की पतलून और पालिश किये हुए चमचमाते जूते पहने हुए था। मुझे एक हिन्दी और अंग्रेजी के निजी सहायक की जरूरत थी। उसे जोन गुन्थर की 'इन्साइड एशिया' पढने को दी तो एक-दो पृष्ठ उलटकर कहने लगा कि यह पुस्तक तो हमारे कोर्स मे नहीं थी। एक छोटे से वाक्य का अनुवाद करने को दिया तो सात शब्दों में चार गलतियाँ! लिखने का तात्पर्य यह है कि हमारी आधुनिक शिक्षा का नैतिक और बौद्धिक स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है।

यह तो हुई गाँवों और कस्बों के साधारण विद्यार्थियों की बात। कलकत्ते और बम्बई आदि बडे शहरों के धनिकों के अधिकाश लडकों की तो शिक्षा-प्रणाली और भी विचित्र है। मुझे एक शिक्षा-शास्त्री एव कई सस्थानों के सचालक ने बताया कि इनके लडको को पहुँचाने, लेने और नाश्ता देने के लिए बडी-बडी कारें स्कूलो और कालेजों मे दिन भर आती रहती है। इनकी मेट्रिक तक की पढाई और परीक्षा स्कूलो मे ही होती है। इसलिए परीक्षा मे उत्तीण होने के लिए पहले से ही सारी व्यवस्था कर ली जाती है। कालेजों मे जाने के बाद इनकी शान-शौकत और भी बढ जाती है।

बडी-बडी मोटरें, बीसों सूट, नये-नये दोस्त और कभी-कभी उनके साथ क्लबों मे शराब और नाच भी! परीक्षा के समय से पहले जितने भी सम्भावित परीक्षक होते हैं उनको ट्यूशन पर रख लिया जाता है। यहाँ तक कि कुछ लडकों को पढाने के लिए हजार बारह सौ रुपये मासिक ट्यूशन फीस लग जाती है। खैर, डिग्री तो कालेज मे भी इन्हें किसी-न किसी प्रकार प्राप्त हो जाती है, परन्तु वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि तो शायद ही होती है।

हमारे पुराने ग्रन्थों मे गुरुकुलों की चर्चाएँ हैं कि राजा और गरीब दोनों के लडके आश्रम मे रहकर एक साथ पढते थे। बारी बारी से सबको आश्रम का काम करना पडता था इसमे भिक्षाटन भी शामिल था। इसके बहुत समय बाद के भी तक्ष

शिला और नालन्दा के विद्या मन्दिर भारत की शिक्षा-प्रणाली की महत्ता के जीते-जागते उदाहरण रहे है।

उन्नीसवीं शताब्दी के श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और श्री गोपालकृष्ण गोखले की याद आती है कि उनके पास न तो पढने को पुस्तकें ही थीं और न रोशनी के लिए तेल ही। इधर-उधर से पुस्तकें माँगकर ले आते और सडक की रोशनी मे पढते रहते। इसके बावजूद वे प्रसिद्ध विद्वान् ही नहीं अपितु आदर्श पुरुष भी हुए। और याद आती है स्वामी दयानन्द सरस्वती की जो वेद, वेदांग और उपनिषद आदि की शिक्षा प्राप्त करके अपने गुरु विरजानन्द जी से विदा लेने लगे तो गुरु दक्षिणा मे थोडे से लौंग ही दे पाये थे। उसी दक्षिणा से प्रसन्न होकर गुरु ने उनको हृदय से आशीवाद दिया था। ये भी पिछली शताब्दी के प्रकाण्ड विद्वान होने के साथ ही-साथ महान सुधारक भी हुए।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही भारतीय शिक्षा का रूप बदलने लगा। यहाँ तक की हमारे इतिहास को भी स्मिथ और मर्सडन ने पूरे तौर पर बदल दिया। प्रसिद्ध राजनितिज्ञ और शिक्षा शास्त्री मैकाले को इङ्गलैंड जाने पर भारत मे प्रचलित की गयी शिक्षा के बारे मे पूछा गया तो उसने कहा था कि जो काम भारत मे हमारी बन्दूक और तोपें नहीं कर सकी हैं, वह काम हमारी चालू की गयी शिक्षा-प्रणाली पूरा कर देगी अर्थात्

भारतीयों का रग तो काला ही रहेगा परन्तु मन से वे अंग्रेज बन जायँगे।

आज एक सौ वर्ष बाद हम मैकाले की भविष्यवाणी की सत्यता महसूस कर रहे ह। फर्क केवल इतना ही है कि आज से चालीस पचास वर्ष पहले के कालेजो के विद्यार्थियो को अंग्रेजी भाषा का ठोस ज्ञान हो जाता था जबकि आज उन्हें न तो अंग्रेजी भाषा का ज्ञान हो पाता है और न मातृभाषा का ही।

डिग्री और ज्ञान अलग अलग चीजें है। मेरे एक बुजुर्ग मित्र है जिन्होने केवल अंग्रेजी मे प्राइमरी रीडर ही पढी थी परन्तु वे अब तक नियमित रूप से कुछ न-कुछ पढते रहते है। हिन्दी और अंग्रेजी के तो माने हुए विद्वान् है ही, सस्कृत और फ्रेञ्च भी जानते है।

राष्ट्रकवि मथिली शरण गुप्त कभी स्कूल नहीं गये। परन्तु उनके काव्य ग्रन्थो पर शोध करके कई व्यक्ति डाक्टरेट की उपाधि ले चुके है। एक बार हमे बगला महाकाव्य वृत्रासुरवध सुना रहे थे। उनके स्पष्ट छन्द ताल युक्त अजस्र बगला कविता पाठ को सुनकर वहाँ बैठे हुए विद्वान् अचभित और आत्मविभोर हो गये।

हम स्कूलो और कालेजों की ऊँची पढाई के विरुद्ध नहीं है, क्योंकि आज फिर से गुरुकुल की पढ़ाई न तो व्यावहारिक ही होगी और न वाछनीय ही। परन्तु साथ ही यह भी कहना

चाहेंगे कि इस समय की शिक्षा-प्रणाली में आमूल , परिवर्तनों की आवश्यकता है। शिक्षा का अर्थ कुछ पुस्तकों का पढ लेना या डिग्रियाँ हासिल कर लेना ही नहीं है। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य तो अच्छे नागरिक बनना है। अक्षर ज्ञान या पुस्तकीय विद्या तो उसका एक साधारण सा पक्ष है। नैतिक आधार और नैतिकता के बिना कोई शिक्षा पूरी नहीं कही जा सकती। हमें युवकों को सुरक्षित के साथ साथ सु-नागरिक बनने पर भी ध्यान देना होगा। इसमे जनता और सरकार की जिम्मेदारी तो है ही परन्तु इसके लिए शिक्षकों का उत्तरदायित्व सबसे अधिक है।

खेद है कि आज के अधिकाश शिक्षक प्राइवेट ट्यूशनों पर ज्यादा ध्यान देते हैं और स्कूलों या कालेजों मे बहुत कम पढाते है। इनमे से कई कई तो ६ ७ ट्यूशन तक करते हैं। कालेज और स्कूल की अध्यापकी तो एक प्रकार से ट्यूशनों को प्राप्त करने के लिए रहती है। यही नहीं बड शहरों में ता शिक्षक ही धनी विद्यार्थियों को पास कराने की व्यवस्था भी कर देते है। अभी हाल ही में कलकत्ते की एक प्रसिद्ध शिक्षण सस्था मे इसके लिए ग्यारह शिक्षका को कार्य मुक्त कर दिया गया था।

यह सब लिखने का हमारा उद्देश्य आज के युवका की आलोचना करना मात्र नहीं है, वरन् उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करना है कि वे एक महान देश के उत्तराधिकारी हैं इसलिए वे स्वय और उनका अचार व्यवहार जैसा होगा वैसा ही देश का रूप भी बनेगा।

यह भूख—यह अय्याशी

एक दिन मेरे बँगले के माली ने आकर कहा कि दूसरा माली कई दिनों से बीमार है, काम पर नहीं आता। उस समय बात आयी-गयी हो गयी। थोड़े दिन बाद जब फिर कानपुर आया तो देखा कि कई जगह पैवन्द लगी हुई मैली साड़ी में एक बीमार महिला कोने में खड़ी है। नौकर ने बताया कि माली ज्यादा बीमार है—यह उसकी पत्नी है। उसके सूने सूने चेहरे पर घबराहट, डर और दैन्यता की छाया स्पष्ट नजर आ रही थी। आयु शायद ३२-३३ की थी, परन्तु उसे ४५ से ५० की भी कह सकते थे।

बँगले के पीछे मालियों और नौकरों की कोठरियाँ थीं। वहाँ जाकर मैंने देखा कि माली और उसके तीन दुबले-पतले बच्चे, ८'×६' की एक कोठरी में फटी हुई टाट पर बैठे हुए थे। उन सबके ओढ़ने के लिये एक जीर्ण-शीर्ण पैवन्द लगी हुई गुदड़ी थी। उस चटाई और एक गुदड़ी में वे जनवरी की सर्दी को किस प्रकार सहन कर रहे थे—यह बात समझ से परे की थी। इससे भी ज्यादा आश्चर्य यह जानकर हुआ कि माली के ४२) मासिक वेतन में ही पाँचों के पेट भरने का, तन ढकने के कपड़ों का और दवा का बजट भी था।

दूसरे दिन हमारे अस्पताल के बड़े डाक्टर को बुलाकर माली और उसकी स्त्री को उसके सुपुर्द किया। कई प्रकार की जाँच-पड़ताल के बाद पता चला कि माली को तो पेट का यक्ष्मा है और लगातार खुराक की कमी के कारण स्त्री की भी जीवनी शक्ति बहुत कम रह गयी है। जैसे भी थोड़ा बहुत बना उसकी व्यवस्था की—सरकारी अस्पताल में भर्ती करा दिया। दवा और साधारण पथ्य से शायद उसकी जान भी बच जायगी। तब दो चार दिन काममें मन नहीं लगा। मालीके परिवार का चित्र आँखों और मन दोनों के सामने घूमने लगा। सोचने लगा कि इनकी प्रति व्यक्ति आय १००) रु० वार्षिक से भी कम है। जबकि देश की औसत आय ४६०) ह और किसी-किसी व्यक्ति की तो एक लाख तक है—कारण स्पष्ट है, चूँकि न तो इनका कोई लेबर यूनियन है और न वे किसी प्रकार का विरोध ही कर सकते हैं, इसलिए तिलतिल करके मौत के मुँह की ओर बढ़ते जा रहे हैं। मुझे स्वर्गीय डा० लोहिया के संसद में कहे हुए शब्द याद आ गये, जिन्होंने देश के कुछ व्यक्तियों की निम्नतम आय चार-पाँच आने बतायी थी।

उन्हीं दिनों एक धनी घराने में लड़की की शादी थी। बारात किसी दूसरे गाँव से आयी थी—मुझे भी एक-दो बार वहाँ जाना पड़ा। लोगों ने बताया कि विवाह पर तीन चार लाख खर्च होगा। खैर, अपनी लड़की को सामर्थ्य के अनुसार सभी देते हैं। परन्तु जो ऊपरी खर्च और तड़क-भड़क वहाँ देखने में

आयी—वह अभूतपूर्व थी। बगले के सहन मे बड सारे पडाल को फूलों से सजाया गया था। वृक्षो पर हजारों हरे-लाल जगमगाते बल्ब मसूर के वृन्दावन गार्डेन की याद दिला रहे थे। लखनऊ से शहनाई पार्टी बुलायी गयी थी। बाराती तथा अन्य आमन्त्रित व्यक्ति १०००-१२०० से कम नहीं थे। उनके लिए चाय, काफी, फलो के रस, सूखे मेवे और कई प्रकार की मिठाइयो पर भी बहुत खर्च किया गया था।

आजकल विवाह मे घुड़चढी के समय के सारे कार्य आमतौर पर २ घण्टे मे समाप्त हो जाते हैं, परन्तु वहाँ नाच गाने और कव्वाली गजलो का इन्तजाम था—इसलिए रात के १२ बज गये।

दूसरे दिन सज्जनगोठ की जीमनवार थी। बड़े-बड़े थालो मे नाना प्रकार के पकवान और ८ १० कटोरिया मे कई तरह की साग-सब्जी सजाकर रख दी गयी। ज्यादातर लोगों के लिए उतना सब खा पाना सम्भव नहीं था—इसलिए थाली मे जूठन रहना स्वाभाविक ही था। मुझे शिकागो के पामर्स हाउस नामके प्रसिद्ध रेस्तराँ मे अपने अमेरिकन मित्र द्वारा दिये गये भोज की याद आ गयी। बहुत प्रकार की मिठाइयाँ और फलोको सजाकर रख दिया गया था। जब हमने कहा कि इन सबका एक तिहाई कर दीजिये, तो हँसकर मिस्टर लेजी ने कहा था कि आप जितना चाहे खा लीजिये—बचा हुआ नष्ट कर दिया जायेगा—"अधिकता हमारी समस्या है।" परन्तु यह तो विश्व

के सबसे धनी देश अमरीका की बातें है, जहाँ चीजों के मूल्य का सन्तुलन रखने के लिए कभी कभी गल्ले और रुई को समुद्र में डुबो दिया जाता है—न कि हमारे भारत की, जहाँ कि हजारों-लाखो परिवार के बच्चों को फटे चिथड़े और आधा पेट खाना भी मय्यसर नहीं होता। सोचने लगा कि १०० वर्ष पहले मार्क्स ने भी शायद इसी तरह की विपरीत घटनाएँ देखी थी, जिससे उसे "कैपिटल" लिखना पड़ा। यह सच है कि विषमता सारे विश्व मे है—परन्तु यह भी सच है कि जब वह हमारे यहाँ की तरह सीमा से बढ़ जाती है तो फिर फ्रास, रूस और चीन की-सी राज्यक्रान्ति अवश्यम्भावी हो जाती है। उस समय वहाँ की भूखी नगी जनता उलट पड़ी तो वहाँ के सम्राटो का सर्वनाश तो हुआ ही—साथ ही उनके निरीह बच्चो तक को जान से हाथ धोना पडा था। इतिहास की पुनरावृत्ति तो होती ही है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि फ्रास, रूस और चीन में तो सर्व सत्तावान सम्राट, जार और राष्ट्रपति थे, जिनके पास फौजें तोपें और बन्दूकें थी, जब कि हम तो केवल रुपयो के जोर पर ये भौंडे प्रदर्शन और खर्च कर रहे है।

दीवार पर स्पष्ट लिखा है, परन्तु खेद है कि हम पढ नहीं पा रहे हैं, क्योंकि हमने जान-बूझकर अपनी आँखें बन्द कर रखी है।

❀

समाज की नयी पीढ़ी

बङ्गाल के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री विमल मित्र ने अपनी पुस्तक "साहब बीबी गुलाम" मे आजसे सौ सवासौ वर्ष पहले के धनी बङ्गाली व्यवसायी युवको के दैनिक जीवन की झाँकी उपस्थित की है।

उस समय का अधिकाश वाणिज्य व्यवसाय मल्लिक, सील, लाहा और बैसाक आदि बङ्गाली परिवारो मे बँटा हुआ था। उनके यहाँ पाट और गल्ले आदि की आढत के सिवाय जहाजों पर माल लादने उतारने के ठेके, फौज को रसद सप्लाई और विलायती आफिसो की बेनियनशिप थी। उनके पुत्रो ने जमे-जमाये व्यापार को सम्हालना छोड दिया और अधिकाश समय शराब और ऐय्याशी मे देने लगे। धीरे धीरे सारा का सारा कारबार नष्ट हो गया।

पूर्वजो ने समझदारी से काम लिया और अधिकाश सम्पत्ति को देवोत्तर कर दिया। इसलिए सब कुछ चले जाने पर भी परिवार के भूखे रहने की नौबत नहीं आयी।

उसके बाद सत्री समाज की बढोतरी हुई और विदेशी फर्मों की बेनियनशिप के सिवाय दूसरे कई प्रकार के व्यापार उनकी कोठियों मे होने लगे। कुछ दिनातक तो उनकी समृद्धिमे चार

चाँद रुगो रहे परन्तु आगे जाकर वही दशा इनकी भी हुई। प्रति शुक्रवार को चुने हुये मुसाहिबों को लेकर, हर प्रकार की विलास सामग्री के साथ लिलुआ या दमदम के बगीचों में जाते तथा सोमवार की सुबह अलसाये हुए मन और थके हुए तन के साथ वापस आते। बिना सम्हाल के धीरे-धीरे कारबार बिगड़ने लगा। आफिसों के बड़ साहबों द्वारा बार-बार चेतावनी देने का भी कोई असर नहीं हुआ। आखिरकार बेनियनशिप इन राजस्थानी युवकों को मिली जो इनकी आफिसों में पुरजा चुकान का या दलाली का काम करते थे। इन्होंने अपने पुराने मालिकों के चढ़ाव-उतार को देखा था इसलिए विलासिता से अलग रहकर कड़ी मेहनत और ईमानदारी से काम करने लगे। अतएव उनकी आफिसों का काम भी बहुत आगे बढ़ा और साथ ही समाज की प्रतिष्ठा भी।

इसी का फल है कि आज देश का अधिकांश वाणिज्य एवं उद्योग उनकी सन्तानों के हाथमें है। इतने बड़े औद्योगिक साम्राज्य के पीछे उस समाज का बहुत ही उज्ज्वल इतिहास है। आजसे सौ सवासौ वर्ष पहले जब न तो रेल थी और न पानी के जहाज ही, उस समय इनके पूर्वज बिना किसी सहारे के राजस्थान से बङ्गाल और असम की सुदूर यात्रा, अनेक प्रकार के कष्ट सहते हुए चार-पाँच महीने में पूरी करते थे और छः आठ वर्ष की लम्बी मुसाफिरी के बाद वापस घर लौटते थे।
हमें भी बहुतसे ऐसे महापुरुषों को देखने-सुनने का मौका

मिला है जो बहुत ही साधारण स्थिति से ऊँचे उठकर चोटी पर पहुँचे हैं।

सर्वप्रथम तो हमारे स्व० प्रधानमन्त्री श्री शास्त्रीजी का ही उदाहरण है जो यह कहने में कोई संकोच नहीं करते थे कि कई बार एक पैसा नाव के भाड़े का न होने के कारण उन्हें गंगा के उस पार से काशी में पढ़ने के लिए तैर कर जाना पड़ता था। इसी प्रकार इन्टूक के नेता—भूतपूर्व उपश्रममन्त्री और विशिष्ट संसद सदस्य—श्री आबिदअली भी एक कपड़े की मील में साधारण मजदूर थे।

व्यापारी समाजमें भी ऐसे कई उदाहरण मिल जायँगे। प्रसिद्ध चाय उत्पादक श्री हनुमानबक्स कनाई असम में आज से ६५ वर्ष पूर्व दर्जी का काम करते थे। उसके बाद उन्होंने एक छोटी सी मोदीखाने की दूकान की थी। कुछ वर्षों बाद थोड़ी सी जमीन में चाय की खेती की और मशीनों के अभाव में कड़ाहियों में ही चाय गर्म करके सुखाते थे। आज उनके फर्म का—कठिन परिश्रम और सच्चे व्यवहार के कारण—भारत के चाय उत्पादकों में विशिष्ट स्थान है। विदेशों से आये हुए चाय विशेषज्ञ भी उनके गणेशबाड़ी चाय बगीचे को देखने जाते हैं जिसमें प्रति एकड़ चाय का उत्पादन देश में सबसे ज्यादा है।

विश्व प्रसिद्ध डीजल और बिजली की मोटरों के एवं इञ्जिनों के निर्माता श्री किरलोस्कर भी एक साधारण कारखाने में मिस्त्री

थे और अनेक सुप्रसिद्ध कपड़े की मीलों के मालिक स्वर्गीय मफतलाल कपड़े की फेरी करते थे।

इन सब उदाहरणो से हमारा उद्देश्य नयी पीढ़ी के युवकों के बारे मे लिखना है। जिनके पास अपने पितामहों और पिताओं का अर्जित किया हुआ धन, यश और जमा-जमाया कारबार है, साथ ही विदेशों के अच्छे फर्मों से व्यापारिक एवं औद्योगिक सम्बन्ध भी। पर खेद की आजके अधिकांश धनी युवक पाँच दशक पहले के उन बगाली और खत्री समाज की चाल-ढाल अपनाते जा रहे है जिनके बारे मे हम पहले लिख चुके है। हाँ समय और साधन दोनों ही बदल गये हैं इसलिए ७०-८० वर्ष पहले के मौज शौक के तौर-तरीको मे फर्क जरूर आ गया है।

मैं नई दिल्ली मे विज्ञान भवन के सामने के फ्लैट मे रहता था। इस भवन मे जलसे और चेम्बरों की मीटिंगें होती रहती है। वहाँ प्राय ही देखता था कि कलकत्ते और बम्बई के युवक बहुत बडी-बडी फैसनेबुल मोटरो मे साथ मे एक दो पजाबी सजे-सजाये युवकों को लिये हुए (जो उनके फर्मों के दिल्ली रिप्रेजेंटेन्टिव होते है) उन मीटिंगों या जलसो मे शामिल होने को आते रहते थे। इनमे से कई जल्सो मे ससद सदस्यो को भी बुलाया जाता था इसलिए उन लोगों से वहाँ मिलना हो जाता था। इसके सिवाय ससद या राष्ट्रपति भवन देखने के पास के लिए या और किसी काम से भी उनसे मिलना होता रहता था।

वैसे दिल्ली मे प्राइवेट कारो का किराया ४५-५० रुपया प्रति दिन है परन्तु जिन बडी गाडियों को ये रखते है उनका ।८०-६० रुपया किराया है। अशोक होटल जिसमे ये लोग ठहरते हैं उसका भी १००-१२५ रुपया प्रतिदिन पड जाता है। इसके सिवाय क्लबो, थियेटरो तथा अनेक प्रकार के अन्य खर्च अलग। चार–पाँच दिन की दिल्ली की एक यात्रा मे, हवाई जहाज का किराया तथा अन्य सब खर्च मिलाकर दो-ढाई हजार तक लग जाते हैं। जिन मीटिंगो मे ये जाते है उनमे न तो इनमे से अधिकांश को कोई पूछता ही है और न इनको वहाँ कुछ सीखने-समझने की जिज्ञासा ही होती है। इसके सिवाय अनेक प्रकार की दूसरी बातें भी सुनने को मिलती हैं, जिनका वर्णन यहाँ न करना ही अच्छा होगा।

कलकत्ते का एक युवक मिला, जिसके पिताजी से मेरा अच्छा परिचय था। उसकी सूट के बारे मे बात हुई तो पता चला कि ऊँट के बालों (Camel's hair) की है और कीमत २२००), २३००), रुपया ! क्योंकि आयात पे प्रतिबन्ध के कारण ऐसा कपडा भारत मे बहुत कम आ पाता है। मैंने हिसाब लगाया कि उस समय एक सूट की लागत डेढ सौ धोती जनी और कुरतों के बराबर थी।

एक दिन एक युवक मित्र द्वारा ला-बला (La-belle) नाम के प्रसिद्ध रेस्तराँ मे निमन्त्रित हुआ। सब मिलाकर ८-१० व्यक्ति होंगे, जिनमे दो-तीन उसके विदेशी व्यापारी मित्र भी थे। यह

जानते हुए भी कि ऐसी जगह मे खाने पीने की चीजों के बारे में पूछना सभ्यता से परे माना जाता है, फिर भी मन नहीं मानता और आमिष निरामिष के बारे मे पूछ लेता हूँ। सूप के बारे में पूछा तो पता चला कि समुद्र के बीच मे किसी टापू की चिडिया के घोसले का है, जो इस रेस्तराँ की विशेष तैयारी मानी जाती है। यह घोसला आमिष है या निरामिष फिर से पूछना ठीक नहीं समझा और सूप नहीं लिया। खाने-पीने पर सारा खर्च करीब पाँच-सौ रुपया हुआ जिसमे आधा तो केवल चिडियो के घोंसले के सूप का ही था। मन मे अपने को भी दोषी अनुभव करने लगा कि मेरे ऊपर भी तो पचास रुपये का खर्च आ गया।

इस बाइस सौ रुपये की ऊँट के बालों की सूट पहनने वालो तथा ५०) रुपये के चिडियो के घोंसले का सूप पीने वाले युवकों से यह कहने का मन होता है कि इनकी सही कीमत तो उसी हालत मे आँकी जा सकती है जब कि वे अपने पूर्वजों की तरह या आजकल के दूसरे गरीब युवको की तरह अनजानी जगह मे जाकर कितना कमा पायेंगे।

मुझे इसी समाज का एक युवक कुछ दिनो पहले कलकत्ते की बेंटिक स्ट्रीट मे मिला। नौकरी छूटने के बाद तीन सौ रुपयो की पूँजी से पुराने लोहे के टुकड सियालदह, विधान सरणी या इन्टाली से ठेले पर लादकर ५-६ मील प्रतिदिन पैदल चलकर

हावडा के किसी कारखाने मे ले जाता है। वहाँ उनसे मोटरो के चक्के ढक्कन बनवा कर दूसरे कारखाने मे पालिश करवा कर यहाँ की दूकानो मे बिक्री करता है। इस कडी मेहनत से उसे २५०)-३००) रुपया मासिक मिल जाते है। जिनमे से एक सौ रुपया यहाँ रहने और खाने-खर्च के बाद देकर डेढ-दो सौ अपने गाँव भेज देता है, जहाँ उसकी स्त्री, माँ और तीन बच्चे है।

भारतीय जीवनका आदर्श सैकडो हजारों वर्षोंसे श्रम, सयम और सतोष का रहा है। साथ ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के लिए भी हमे बहुत प्रकार के बलिदान करने पड़े है। इसलिए हमारी सस्कृति और समाज के लिए साम्यवाद किसी भी प्रकार वाछनीय नहीं है, परन्तु हमारी आज की स्थिति भी ज्यादा दिन नहीं रह पायेगी। क्योंकि एक ओर तो नाना-प्रकार के व्यसनो मे पानी की तरह धन बहाया जाता है और दूसरी तरफ देश के करोडो बच्चे तथा बुड्ढो को भूखे पेट और नगे तन रहना पडता है।

विषमता सारे ससार मे ही है, परन्तु जब वह सीमा को लाँघ जाती है तो फिर या तो रूस और चीन की तरह साम्य-वाद आता है या अन्य अरब देशों और पाकिस्तान की तरह फौजी तानाशाही।

समय बदला पर हम नहीं

आज बम्बई और कलकत्ते मे आम-चर्चा है कि,उद्योग-व्यापार मन्दा है। जमीनो और मकानो की कीमतें,घट रही है—चीजों की बिक्री कम है, आदि आदि।

'अकाल मे अधिक मास' की कहावत के अनुसार इस मन्दी के साथ साथ राजस्थान के कुछ हिस्सों मे भयकर अकाल भी पड गया, जिससे हजारो पशु भूख और प्यास से मर जायँगे। भोजन की कमी के कारण मनुष्यों और बच्चों का शरीर घटकर ककाल सदृश्य रह जायगा।

विभिन्न सेवा-सस्थाओंने वहाँ राहत का कार्य शुरू किया है और इसके लिए धनी-वर्ग थोडा बहुत दान भी दे देते है। परन्तु खेद है कि आज भी उनकी अपनी मौज-शौक के खर्चे मे किसी प्रकार की कमी तो आयी ही नहीं—कुछ न-कुछ बढोतरी ही हुई है। अगर गॉव और पडोस के लोग पानी के बिना मर रहे हो तो तैरने के लिए पानी के तालाब को लोग किसी भी हालत मे नहीं रहने देंगे। हाँ, सन् १९४३ में कलकत्ते की सडको पर लाखों व्यक्ति भूख से मर गये थे—जब कि सामने की दूकानों पर सैकडों मन मिठाई सजी रहती थी, परन्तु आज १९६६ है—न कि १९४३।

मेरे एक मित्र जो प्रसिद्ध पत्र सचालक के सिवाय सब प्रकार के साधन सम्पन्न है—पिछले दिनो सपत्नीक दिल्ली आये। वे एक मित्र के फ्लैट मे ठहरे थे। सब तरह की सुविधाएँ और आराम उनके लिए वहाँ उपलब्ध थे। उसी समय फडरेशन की मीटिंग थी, जिसमे सम्मिलित होने के लिए कलकत्ते और बम्बई से बहुत से व्यक्ति आये थे। जिनमे कुछ तो सदस्य थे, अधिकाश तमाशबीन। वे भी अगर चाहते तो उनको भी दिल्ली मे इस तरहका आतिथ्य मिल जाता क्योंकि उनके बहुत से सम्बन्धी और परिचित मित्र वहाँ रहते है और उन दिनो तो ससद का अधिवेशन भी चालू था।

परन्तु उन सबको तो ओबेराय इन्टरनेशनल मे ही ठहरना था, जो इस समय भारत मे सबसे मँहगा होटल है और जहाँ केवल चाय का चार्ज लगता है—डेढ रुपया प्रति कप, टिप अलग! यह भी सुना गया कि वहाँ जगह की माँग इतनी थी कि रिजर्वेशन के लिए सिफारिश करनी पडती थी।

मैंने अपने मित्र से कहा कि जब साधारण स्थिति के नवयुवक भी ओबेराय या अशोक होटल मे ठहरते है, तो आप लोग वहाँ क्यों नहीं ठहरे? सबसे एक जगह ही मिलना-जुलना हो जाता और इन सब होटलों मे ठहरने से बडप्पन की शान भी है।

उनका जवाब था कि मिलना-जुलना तो कलकत्ते मे सार्वजनिक उत्सवों या विवाह शादियों मे इन लोगों से होता ही

रहता ह और जहाँ तक बडप्पन और शान का सवाल है—वह फिजूल खर्ची और दिखावे मे नहीं है। हाँ, इसमें एक प्रकार से स्वय की हीन भावना (Inferiority Complex) की पूर्ति जरूर हो जाती ह। मेरे यहाँ से ही उन्होने दो तीन भारत-प्रसिद्ध व्यक्तियोंको फोन करके मिलने का समय निश्चित किया। मुझे अपने प्रश्न का उत्तर स्वय मिल गया, क्योंकि उन बडी बडी मोटरो और आलीशान होटलो मे ठहरने वालों को तो सचिवो और उप सचिवो से मिलने के लिए भी दो-चार दिन पहले समय लेना पडता है। कारण स्पष्ट ह—वास्तव मे आज धन और दिखावे का मापदण्ड ही घट रहा ह। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण ह कि एक गरीब नाईके पुत्र श्री कर्पूरी ठाकुर का बिहार जैसे बडे प्रान्त का उप मुख्यमन्त्री और कई साधारण सावजनिक कार्यकर्त्ताओंका बङ्गाल प्रान्तमे मन्त्री बन जाना।

इस सन्दर्भ मे मुझे मेरे दो मित्रों की याद आ जाती है। प्रथम इस समय कैबिनेट मिनिस्टर के सिवाय देश के बडे नेता है। सात वर्ष पहले वे केवल सदस्य थे परन्तु उस समय भी ससद मे उनकी धाक थी। उन्होने मुझे एक दिन भोजन का निमन्त्रण दिया परन्तु घरमे शायद कहना भूल गये। जब आठ बजे रात मे पहुचा तो वे कुछ सकपका गये परन्तु उसी समय बात को सभाल कर बोले—आपके यहाँ का खाना तो कई बार खा चुका हूँ सोचा आज अपना खाना जो हम नित्य प्रति खाते है—आपको खिलाऊँ। काँसे की थालियों मे बिना घी की

रोटियाँ, दाल और तेल की एक सब्जी थी—जो थाली में स्वादिष्ट लगी। हँसकर कहने लगे, मैं पहले से कह देता तो आपके लिए शायद घी मँगाया जाता। खैर, आपको भारत के औसत आदमी का खाना खाने का अवसर तो मिला। सोचने लगा इतना बड़ा नाम, विद्वता और सम्मान की भी कमी नहीं, परन्तु रहन-सहन इतना सादा!

बिना पूछे उनके लड़के को एक फार्म में ३५०) रु० माहवार की नौकरी दिला दी। उन्हें पता चला तो वापस बुला लिया, बोले—यह लड़का दुर्भाग्य से बहुत पढ़-लिख नहीं पाया। इस लिए मेरे नाम से नहीं, बल्कि इसकी योग्यता से उचित वेतन मिले—वही वाजिब है।

द्वितीय मित्र यद्यपि मन्त्री तो नहीं हैं परन्तु सम्मान, विद्वता और सूझ-बूझ में बहुत से मन्त्रियों से बड़े हैं। कई बार बड़े से बड़े पद और काम सम्भालने के लिए कहा गया, परन्तु नम्रता-पूर्वक बराबर टाल देते रहे। हाँ दूसरे योग्य मित्रों को जरूर वैसे कामों पर लगा देते हैं। मैं एक दिन सुबह उनके यहाँ बैठा था, प्रधान मन्त्री के सचिव का फोन आया कि एक बहुत जरूरी काम से प्रधान मन्त्री आपसे अभी मिलना चाहती हैं। उन्होंने कहा कि मैं ६ बजेसे पहले नहीं आ सकूँगा। थोड़ी देर बाद ही फिर फोन आया कि आप नौ बजे आ जायँ।

मुझे भी प्रधान मन्त्री के यहाँ से बहुत कम—परन्तु दूसरे मन्त्रियों के यहाँ से फोन आते रहते हैं। मैं अन्य प्रोग्रामों में

रद्दोबदल करके भी वहाँ जाना जरूरी समझता हूँ और इसमे अपनी बडाई और प्रभाव की वृद्धि समझते हुए दूसरे मित्रो को भी कह देता हूँ कि फलाँ मन्त्री ने बुलाया था—इस तरह की बातें हुई आदि। शाम को मैंने उनसे प्रधान मन्त्री की भेंट के बारे मे पूछा तो बोले अमुक काम की सलाह के लिए बुलाया था और भी बातें करना चाहती थीं, परन्तु एक कैबिनेट मिनिस्टर और एक प्रसिद्ध उद्योग पति नौ बजे से विजिटिंग रूम मे बैठे थे। शायद उनको नौ और साढे नौ बजे का समय दिया हुआ था। प्रधान मन्त्री ने अपने सचिव से कहा कि मुझे इनसे बातें करने मे समय लगेगा तुम उन्हे दूसरा समय दे दो। मेरे मित्र ने नम्रता पूवक उनको कहा कि गलती मेरी थी कि दूसरो का दिया हुआ समय ले लिया, मैं कल फिर मिल लूँगा आप उनको बुला लें। प्रधान मन्त्री जब उन्हे बाहर तक पहुँचाने के लिये आयीं तो उन दोनो ने देख लिया। दो-तीन दिन बाद उद्योग-पति के यहाँ से मेरे पास फोन आया कि फलाँ व्यक्ति से तुम्हारी मित्रता है। मैं उनको एक दिन भोजन के लिए बुलाना चाहता हूँ। अगर वे मजूर करें तो उन्हें फोन कर दूँ। मैंने मित्र से कहा तो उन्होने हँसकर कहा कि वैसे उनसे मेरी जान पहचान तो है परन्तु मैं इन दिनो कुछ व्यस्त हूँ इसलिए फिर कभी चलेंगे।

यह सब लिखने का तात्पय अपने धनी युवको को यह बतलाना है कि शान शौकत और दिखावे मात्र से ही प्रभाव बढता है—यह धारणा नितान्त भ्रमपूर्ण है।

हमारे भारत मे तो ऊँचे विचार और सादे जीवन का महत्व बराबर रहा है और आज भी है। आज देश की दशा खराब है—खास करके बङ्गाल तो एक प्रकार से ज्वालामुखी के मुँह पर है, जहाँ किसी समय भी भूकम्प आ सकता है। परन्तु खेद है कि वे यह नहीं लक्ष्य करते कि पूँजी भी श्रम की तरह उत्पादन का एक अङ्ग मात्र है। अतएव मेहनतकश जब उनके और अपने बीच सुख साधन का विराट अन्तर पाता है तो उसमे विद्वेष और विद्रोह की आग धधक उठती है। बदले हुए समय का यह सुस्पष्ट सकेत है किन्तु विडम्बना यही है कि "समय बदला पर हम नहीं' बदले।

ॐ

ये विदेशी पुतले

हमने मास्को के क्रेमलीन में देखा था कि जारों के समय के जो भी चिह्न थे उन्हें बिना यह परवाह किये कि इनका कितना ऐतिहासिक महत्व है, पूरी तरह से मिटा दिया गया है।

यही बात दूसरे स्वतंत्र देशों में देखी और सुनी गयी है। ब्रिटिश फौजों को हटाने के बाद अमरीका के प्रथम प्रेसिडेन्ट जार्ज वाशिंगटन ने पहला काम यह किया था कि अंग्रेजों द्वारा छोड़े हुए स्मारकों को समाप्त कर दिया। उनकी मान्यता थी कि दुश्मनों के इस प्रकार के चिह्नों से देश के बच्चों के मन में हीन-भावना पैदा होती है, वे अपने को दूसरों से छोटा समझने लगते हैं।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के समय सम्राज्ञी मेरी अन्तोनिता ने विद्रोहियों को कहा था कि "मेरे निरीह बच्चों की जान बख्श दो, भला इन सबका क्या कसूर है?' परन्तु जनता ये सब दलीलें सुनने को तैयार नहीं थी, उनका कहना था कि दुश्मनों के जिन्दे या मुर्दे किसी प्रकार के चिह्नों को हमें नहीं रखना है।

हमारे भारत में सदा से ही दया, क्षमा और सहिष्णुता को प्रधानता दी गयी है। हमारे धर्म ग्रंथों में भी कहा गया है कि बदले की भावना से घृणा उत्पन्न होती है जो किसी हालत में भी वाञ्छनीय नहीं है। परन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि जिन

हैं। जिस स्थान से इस प्रान्त का शासन सचालन होता है उस जगह का नाम डलहौजी स्क्वायर है।

मुझे पता नहीं है कि जालियाँवाले बाग के हत्याकाण्ड के सूत्रधार डायर के नाम पर भी कोई स्मारक देश मे है या नहीं ? परन्तु उस समय के वाइसराय और पजाब के गवर्नर के नाम से तो जरूर कुछ यादगार होगी ही।

यद्यपि स्वर्गीय डा० लोहिया ने इस सन्दर्भ मे बहुत कुछ कहा और लिखा था। परन्तु खेद की बात है कि सिवाय कुछ सडको के नाम बदल देने के आजतक किसी प्रकार के सामूहिक प्रयत्न इसके लिये नहीं किये गये।

इतने वर्षों के बाद भी भारत मे विदेशी पुतले खडे हुए हमारी सस्कृति, सभ्यता और ऐतिहासिक तथ्यों को झूठा साबित कर रहे है। इनमे से कुछ तो ऐसे व्यक्तियो के है, जिन्होने घिनौने तरीको से मरहठों और सिक्खो की देश-भक्त फौजो को कुचला था।

लार्ड मकाले ने कहा था कि भारतीयो के रग के सिवाय उनकी भाषा और वेष अगर अग्रेजी कर सकेंगे तो, हमे भारत मे अपने आप सफलता मिल जायगी।

२७ वर्षों से अग्रेजी शासन समाप्त हो गया, परन्तु मकाले का नुस्खा आज भी अपना काम कर रहा है। स्वतन्त्र भारत के नेता अपने बच्चो को अग्रेजी लिबास मे मिशनरी स्कूलों मे भेजने मे अपनी इज्जत और मान बडाई समझते है। कहते हैं—

इनमे से कइयो के दाखिले के लिए १० १२ वर्षों तक राह देखनी पडती ह।

उन सब स्कूलों में अभी तक विंसेन्ट स्मिथ और मार्स हन के भारतीय इतिहास पढाये जाते है, जिनमे झाँसी की रानी को कुचक्री, ताँत्या टोपे को बागी और बहादुर शाह जफर को सनकी बताया गया ह—साथ ही क्लाइव, हेस्टिंग्स और डलहौजी को वीर, चरित्रवान और उदार कहा गया है। इस प्रकारके ऐतिहासिक ग्रन्थो को पढकर हमारे भावी नाग रिको के मन मे जिस प्रकार के उद्गार उत्पन्न होंगे, उसमे शायद दो राय नहीं होगी।

वैसे हर जलसे मे हम वन्देमातरम् और जन-मन-गण अधिनायक का गान करते है। परन्तु हमे सोचना है कि क्या वास्तव मे ही हम इसके अधिकारी है ? क्याकि जिन वीरो ने मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए अपना आत्मोत्सर्ग किया है, स्मारक तो उन शहीदो के होने चाहिए, परन्तु आज शायद ही कहीं भगत सिंह, सुखदेव खुदीराम और चन्द्रशेखर आजाद के स्टेच्यू देश के विशिष्ट स्थानो मे नजर आयेंगे।

खेद की बात है कि इस समय तक भी हमारी इस स्वत न्त्रता की भूमि पर ये सब विदशी पुतले सिर उठाये गर्व से हमे हिकारत की नजर स देख रहे है और हमारे स्वाभिमान को चुनौती द रह है।

❀

अंग्रेज गये पर अंग्रेजियत नहीं

मुझे अपने लेखो के बारे मे कुछ मित्र सलाह देते है कि उन्हें अंग्रेजी पत्रो मे भी भेजा करूँ। मैं स्वय भी कभी कभी इस बारे मे सोचता हूँ—परन्तु मेरे अधिकाश लेख एक प्रकार से हिन्दी भाषियोंके और एक विशेष वर्ग के लोगो के उपयुक्त ही होते है। जहाँ तक आर्थिक विषय के लेखो का प्रश्न है उन्हें अंग्रेजी पत्रो मे देने से शायद ज्यादा पाठको को पढने का मौका मिले—परन्तु वे सब मुझे दूसरे किसी व्यक्ति से अनुवाद कराकर भेजने पडते है। उनमे कभी कभी मेरे विचारो को पूरा प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता। इनमे से कई लेखो का गुजराती और मराठी पत्रो ने अनुवाद किया भी हे।

मैंने यह भी अनुभव किया है कि उत्तर भारत मे हिन्दी समाचार पत्रों के पाठक, अंग्रेजी पत्रों से कहीं अधिक है। एक समाचार-पत्र को सारे दिन मे औसत ५-६ व्यक्ति पढ लेते हैं, जब कि अंग्रेजी के पत्र खरीदते तो बहुत से लोग है परन्तु उनमे से अधिकाश शेयरो और जोरे-पाट के भाव देखकर ही सतोष कर लेते है। उनमे से ज्यादातर को दूसरे समाचारो को समझने के लिए हिन्दी समाचार पत्र पढना जरूरी हो जाता है। खेद तो इस बात का है कि हिन्दी के हिमायती, बात तो ज्यादा करते है, परन्तु व्यवहार मे कम लाते हैं। आज भी बँगला और अन्य दक्षिणी भाषाओं के कई समाचार पत्र डेढ-दो लाख निकते है।

मुझे कई बार विदेशो मे जाने का मौका मिला है। जापान, हालैण्ड, स्वीडेन, फ्रास या इटली—कहीं भी यह देखने मे नहीं आया कि अपनी भाषा की जगह किसी दूसरे देश की भाषा का प्रयोग होता हो। न्यूयार्क की एक बहुत बडी पुस्तको की दुकान मे गया। भारत के बारे मे कुछ किताबें देखीं। जब हिन्दी पुस्तकों के बारेमे पूछा तो कहा गया कि हिन्दुस्तानी तो अग्रेजी पुस्तकें ही खरीदतें है, इसलिए हिन्दी की तो कोई किताब हमारे यहाँ नहीं है। मैंने देखा कि उनके यहाँ दूसरी भाषाओ की बहुत सी पुस्तकें थीं।

लार्ड मेकाले ने भारत से अवकाश लेते समय अपने अग्रेज आफिसरों को गुप्त हिदायत दी थी कि भारतीयों के दिल और दिमाग इस प्रकार के बना दो कि वे अपनी सस्कृति और भाषा को भूलकर ब्रिटेन की सस्कृति और भाषा ग्रहण कर लें। इससे हमारे उद्देश्य की पूर्ति अपने-आप हो जायगी।

सयोग से हमे स्वतत्रता तो मिल गयी—परन्तु बाइस वर्षों के लम्बे समय के बावजूद मेकाले के नुस्खे का प्रभाव अभी तक ज्यो का त्यो कायम है, शायद कुछ बढा ही है। आम-जनता की तो बात ही क्या, भारतीय ससद मे भी अधिकाश सदस्य अधकचरी अग्रेजी बोलने मे ज्यादा शान समझते है जब कि वे अच्छी हिन्दी बोल सकते हैं। इसको हम हीन भावना कह सकते है। वैसे मत्री गङ्गाशरण, प्रकाशवीर शास्त्री, अटलबिहारी वाजपेयी, मधु लिमये आदि पार्टी के सदस्य सदा हिन्दी मे

बोलते हैं और उसको सब भाषाओंके समाचार-पत्रों से बराबर सहयोग मिलता है।

भाषा के सिवाय खान-पान और पहनावे मे भी इन वर्षों मे विदेशी प्रभाव बढा है। खास करके पजाबी और मारवाडी समाज मे। सुना जाता है कि इन दिनो कलकत्ते के पार्क स्ट्रीट के आस-पास पचीसो रेस्तराँ और नाइट-क्लब खुल गये हैं, जहाँ एक बार के खाने पीने का चार्ज लगता है ३५-४० रुपये! इसमे खाने के समय के नाच-गाने का चार्ज भी शामिल है। जान-कार लोग कहते हैं कि इनके ग्राहकों मे ७५ प्रतिशत से ज्यादा पजाबी और राजस्थानी युवक युवतियाँ ही रहती हैं।

दिल्ली मे एक बगाली मन्त्री के पुत्र के विवाह मे गया था। वहाँ देखा कि जितने भी बगाली मेहमान थे, वे सब धोती-कुर्ते और चादर मे थे। इनमे ५-७ तो सुप्रीम कोर्ट के जज या एडवोकेट थे, परन्तु वे घर जाकर पोशाक बदल कर आये थे। इस बार कलकत्ते के कई राजस्थानी समाज के विवाहों मे जाने का मौका मिला। वहाँ देखा कि दो-चार व्यक्ति ही धोती कुर्ते वाले थे—बाकी सब कोट, पतलून और टाई मे थे। यही नहीं आजकल तो मुर्दनी (श्मशान यात्रा) मे भी कोट पैण्ट और टाई लगाये हुए व्यक्ति दिखाई देते हैं।

सुविधा के लिए अगर कोट-पैण्ट पहनें या अग्रेजी मे बात करें तो कोई एतराज की बात नहीं है, परन्तु भारतीय वेश भूषा या भाषा को मागलिक और सामाजिक कामों मे भी तिलाजलि दे दी जाय—यह कहाँ तक न्यायसगत होगा ?

अभी थोड़े दिना पहले की ही बात है—एक भारत प्रसिद्ध व्यक्ति के पास बैठा हुआ था। उनके सचिव ने एक साधारण से कागज पर हिन्दी मे लिखा हुआ एक नाम दिया। वे स्वय जाकर उनका लिवा लाये। चार पाँच दिनों की बढ़ी हुई दाढी, खादी की ऊँची धोती, हाथ से धोये हुये कुर्त्ता टोपी मे एक वयोवृद्ध दुबले-पतले से सज्जन थे। बहुत ही सक्षेप मे उन्होने गुजरात और राजस्थान के अकाल के बारे मे कुछ बातें की। ऐसा लगा कि कपड़ा की तरह वे बात चीत मे भी मितव्ययी है। नाम पूछने की जिज्ञासा स्वाभाविक ही थी। वे थे—गुजरात के प्रसिद्ध सत रविशकर महाराज। वैसे उनकी जीवनी और भाव-प्रसङ्ग पढा हुआ था कि किस प्रकार उन्होंने देश के उपेक्षित और अछूत जातियो के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। बिहार के पिछले अकाल मे लाखो भूखे नगो के लिए अन्न वस्त्र की व्यवस्था की—यह बात सर्वविदित है।

म इस ठेठ देहाती व्यक्ति की, उन साहबी ठाठ बाट वाले लोगो से तुलना कर रहा था, जो अपनी फराटेदार अग्रेजी के माध्यम से उनके निजी सचिव से मिलने का समय लेने की प्रार्थना कर रहे थे। उपर्युक्त घटना लिखने का उद्देश्य यह है मनुष्य मे अगर चारित्रिक बल हो तो उसे साधारण वेष भूषा मे भी सम्मान मिल सकता है। इसमे अग्रेजी भाषा या वेश-भूषा का प्रयोग जरूरी नहीं है